

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180467

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83
M49D

Accession No. G. H1630

Author
Title 29d¹ H1630 1954

This book should be returned on or before the date last marked below.

ट्रेन चलने में कुछ भी देरी नहीं है। मैंने तेज़ी से अपना सामान उतारा है। टिकिट लौटा कर चारबाग स्टेशन से बाहर आया हूँ— “ए, तांगा ! नार्थ एवेन्यू चलो।”

बादल छँट चुके हैं—

प्रत्यूष बेला की हल्की प्रजनन लालिमा, आकाश के नील सीवरों में फूटी पड़ रही है। शेष तारे बहुत पूर्व ही डूब चुके हैं। शुक्र का नील उज्ज्वल अशेष नक्षत्र—योगी आकाश की आत्मा की भाँति अपने में लीन है। अप्रपञ्चमती चिड़ियों सी भोर की मंदार रंजित हवाएँ, चंदन वनों में फुनगियों के छत्तों पर उड़ रही हैं। कदाचित उषा, सूर्यपुत्र की माता बन रही है। आकाश, इस जन्म की प्रतीक्षा कर रहा है। जन्म होकर रहेगा।

नव दिल्ली

डूबते मस्तूल

श्री नरेश मेहता

सादर सनातनीयनार्थ

१९५४

आत्माराम एण्ड सन्स

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली-६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड सन्स
काश्मीरी गेट, बिल्ली-६

मूल्य : साढ़े चार रुपये

मुद्रक
न्यू इण्डिया प्रेस
कनाट सरकस
नयी दिल्ली

उस मुख को
जो स्मरण कगारे
छोड़ गया है अग्नि-वाक्य यह,

ऽ यातना माँ है
जननि है सत्य की—

ओ अस्तंगामी मृगमुख !
यही वेदना तिलक हमारी !!

चार विद्यार्थी गुरुकुल से विद्याध्ययन समाप्त कर अपन-अपने घर वापस जा रहे थे। विश्राम के लिए वे एक निर्जन वन में ठहरे। भोजन की तैयारी के लिए चारों ने काम बाँट लिया—एक ने स्थान साफ करने का, दूसरे ने जंगल से लकड़ियाँ बटोर लाने का और शेष दो ने निकटवर्ती ग्राम से सामग्री लाने का भार सम्हाला।

स्थान बुहारते विद्यार्थी को किसी जीव की एक हड्डी मिली। उसने अपनी विद्या परीक्षार्थ मंत्र द्वारा उस जीव की सारी हड्डियाँ उस स्थान पर एकत्र कर डालीं। लकड़ियाँ लेकर जब दूसरा विद्यार्थी लौटा तो हड्डियों का ढेर देखकर उसे आश्चर्य हुआ। जब प्रथम विद्यार्थी ने अपने मंत्रबल का प्रभाव दूसरे को बतलाया तो दूसरे मेधावी ने कहा—मैं चाहूँ तो इन अस्थियों को आकार प्रदान कर सकता हूँ—और दूसरे की मंत्र-शक्ति ने उन अस्थियों को रूप दे दिया।

शेष दोनों विद्यार्थी जब हाट करके लौटे तो इन दोनों की मंत्र-शक्तियों को देखकर उनका अपना स्वत्व जागा। तीसरा बोला—मैं चाहूँ तो इस आकार को मांस-मज्जा प्रदान कर सकता हूँ—और देखते-देखते वह अस्थि ढेर एक सिंह का शव बन गया। चौथे ने अपनी विद्या के घमण्ड में कहा—बस ? मैं इस मृतक को प्राण प्रदान कर सकता हूँ—और वह मृतक सिंह मंत्रबल के प्रभाव से जी उठा।

और कथा कहती है कि अंत में वह सिंह उन चारों 'मेधावियों' को खा गया।

यह तो हुई कथा, इस से आप तात्पर्य क्या निकालेंगे इससे मुझे प्रयोजन नहीं। मेरे कथा कहो, निष्कर्ष आप निकालें।

एक शब्द भाषा के बारे में कह दूँ कि उत्तरार्द्ध में 'सप्तमी' के प्रयोग किये गये हैं। संस्कृतप्रियता के कारण नहीं बल्कि बोलियों में सप्तमी, नामधातु आदि होते हैं और हिन्दी में अनेक प्रभावों के कारण यह प्रक्रिया लुप्त-सी हो गयी है। अवधी में जैसे—अवधेस के द्वारे सकारे गयी—या मालवी में, 'शनीवारे राते' आदि के रूप मिलते हैं इसलिए हिन्दी, बोलियों के अधिक निकट इसी प्रकार के प्रयोगों द्वारा जा सकती है। यह न माना जाये कि चौंका देने के लिए ऐसा कुछ किया गया है, अस्तु—

अनेक मित्रों का आभारी हूँ; और विशेषकर श्री वेदव्रतजी का।

अगत्या कृति सम्मुख है, कृतिकार बिदा लेता है।

२३ मार्च मन् १९५१,

लखनऊ शहर के चारबाग रेलवे स्टेशन पर अभी उतरा हूँ। कैसा खूबसूरत स्टेशन है ! स्टेशन की गोल घड़ी में दोपहर के १२-३० बज रहे हैं।

आज होली है, इसलिए ट्रेन में ज्यादा भीड़भाड़ नहीं थी, वर्ना लोगबाग फुटबोर्डों तक पर खड़े-खड़े आते हैं।

इधर उत्तर भारत के लोगों में होली काफी उत्साह से मनाने का रिवाज है, यह मैंने रास्ते भर कानपुर में आते हुए अनुभव किया है।

कुली लोग दौड़-दौड़कर लोगों का सामान ठीक-ठाक करने में मशगूल हैं— अपनी ऊँची-ऊँची धोतियाँ पहने, रेलवे की लाल कमीजों पर नम्वरों की सफेद पट्टियाँ लगाये, और मिर पर नीला साफ़ा बाँधे हुए,—कम्पार्टमेंट की खिड़कियों में से ही लोगों की मुराहियों, अटैची बाक्स, विस्तर, रंगीन टोकरियाँ उतारने में लगे हुए हैं। उनकी बड़ी हुई दाढ़ियों पर थोड़ी देर पहले का खेला गया रंग कई रंग-विरंगी धारियों में सूख गया है और मुँह पर अबीर-गुलाल लपेटे उनकी शक्लें अजीब हो रही हैं। प्लेटफार्म की वह बड़ी सी गोल घड़ी, जिस पर किसी के द्वारा फेंके गये गुलाबी रंग की धारियाँ शीशे पर जमी हुई-सी लग रही हैं, और जिस पर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। सहमे-सहमे से लाल गुलाबी सेव से बच्चे, सामान के पास खड़े हुए कुलियों से मोलभाव करते हुए अपने माता-पिताओं की ओर निरीह दृष्टियों में देख रहे हैं। प्लेटफार्म पर कोई फेरीवाला नजर नहीं आ रहा है। सामान का ह्वीलर का बुकस्टाल भी बंद है।

सुबह में ही मौसम उमम वाला हो रहा है। पानी बराबर फुहारों की तरह बरस रहा है, लेकिन गरमी हल्की-हल्की आ चली है, और पमीने की हल्की चिपचिपाहट भी जहर ही अनुभव की जा सकती है।

अपने हाथ का अखबार और रेलवे टाइम टेबल दाँ-नीन बार पाजामे पर वजाते हुए मैं तय कर रहा हूँ कि मुझे अब यहाँ से सीधे अपने मित्र पुरी के पास जाना है और रास्ते की थकान, और ट्रेन लेट हो जाने के कारण मन की थकान सब दूर करनी है। मैं अब अपने जेब से पुरी का पत्र निकालूँगा जो कि मेरे जलगाँव वाले पत्र का उत्तर है, क्योंकि उस पत्र में पुरी का पूरा पता दिया हुआ है।

मैं उत्तर भारत में पहली बार आ रहा हूँ। बिजगापट्टम में पैदा होकर भी पढ़ने अवश्य ही अकोला तथा नागपुर तक गया हूँ क्योंकि एक मेरे चाचा अकोला में तार बाबू और नागपुर में मेरे मामा संस्कृत की पुस्तकों की तथा सतारी पेड़े की दुकान सीताबर्डी में किया करते थे। इतवार के दिन उस महाल वाली जुम्मा झील में हम लोग जलमुर्गाबियों

की तरह तैरा करते थे और साँझ को एम्प्रेस मिल के भोंपू की गिरती हुई परछाईं तथा सूर्यास्त देखा करते थे। पढ़ने-लिखने के बाद बनियान और मौजों की हौजरी में काम करनेवाले के पास अवकाश क्या ! आवश्यक वक्त ही कहाँ होता है कि वह यहाँ-वहाँ घूमें, और फिर वह भी शौकिया घूमना ! शौक एक कीमती नाजुक चीज है। पुरी का पिता, जब हम बच्चे थे तब, हमारे विजगापट्टम में लकड़ी का पीठा और टाल चलाया करता था और उस समय यह पुरी वहीं हमारे साथ पढ़ा करता था।

रेलवे अहाते के बाहर अब ताँगा निकल आया है और वह अब दाहिने हाथ की मोड़वाली खुली लम्बी मड़क पर अपना घोड़ा मोड़ रहा है। मड़कें एकदम मुनमान लग रही हैं। बायें हाथ की खुली जगह में हजारों छोटे-छोटे भूरे-नीले-खाकी रंग के तम्बू तने हुए हैं, जिनमें के रहनेवाले काफ़ी हट्टे-कट्टे गंगरे चिकने बनलाने हैं कि वे पजाबी हैं और शरणार्थी हैं। दाहिने हाथ पर रेलवे के कर्मचारियों के क्वार्टर बने हुए हैं, जिनके पिछवाड़ों की खिड़कियाँ मड़क की ओर दिखायी पड़ रही हैं। इन क्वार्टरों की चिमनियों में से हल्का धुआँ निकल रहा है। इन क्वार्टरों की बगल में बड़ा-सा टिन का घेरा बना हुआ है जिसके भीतर या तो गोदाम होगा या फिर मैदान। बायें हाथ पर मैदान के पार बहुत-सी इमारतों की दीवारों पर 'डोंगरे का बालामून' या फिर 'धूतपापेम्बर' के विज्ञापन मोटे-मोटे शब्दों में दिखायी पड़ रहे हैं।

आमपाम के पेड़ लगभग सभी नगे हो चले हैं, जो बताने हैं कि उत्तर में दक्षिण की अपेक्षा पतझर पहले आता है, क्योंकि जब मैं घर से चला था तो घर की इमली, सामने के शिवाले का बिल्व-वृक्ष और मुपारी के पेड़ पतझर की प्रतीक्षा कर रहे थे ; पर यहाँ तो जैसे पेड़ों की हड्डियाँ ही हड्डियाँ निकल आयी हों। इन पेड़ों के पास ढेर सारे पीले पत्ते पड़े हुए हैं। सड़क के दोनों ओर के गड्ढे बताने हैं कि पिछली रात यहाँ काफ़ी पानी गिरा है। घास के पीले तिनके कैसे धुले हुए चमक रहे हैं ! पर वातावरण में फिर भी एक उदासी-सी लग रही है।

और यह शायद मालगोदाम के मैदान का घेरा खत्म हो रहा है, और उस पार कोई गाड़ी चली आ रही है। रेलवे क्वार्टरों में लोग होली खेल् चुके मालूम होते हैं क्योंकि तारों पर गीली रंगीन साड़ियाँ, बच्चों के हाफ़ पेट, फ्रांक, बड़ों की कमीजे और पाजामे सब मुखाये जा रहे हैं।

पुरी और मैं एक साथ ईमाई स्कूल में पढ़ा करते थे। बेचारे पुरी को उन दिनों हम लोगों से बातें करने में कितनी कठिनाई हुआ करती थी और उसकी बोली की नकल मेरी शैतान बहन किस तरह उतारा करती थी कि बस ! वह हमें टूटे-फूटे तरीके पर अपने बचपन की बातें सुनाया करता था। इन बातों में शिमला, लाहौर, रावलपिंडी सभी हुआ करते थे। पुरी की बातों में लस्सी और कुत्तियों का जिक्र बहुत होता था। वह अपने माता-पिता से सदा इस बात पर झगड़ा किया करता था कि वे लोग उसे लाहौर में उसके चाचा

के पाम क्यों नहीं भेज देते जहाँ दूसरे भाई-बहन भी तो हैं । पुरी को हम लोगों की बोली, खाना—सभी से बड़ी चिढ़ रही थी, मगर जब वह हाई स्कूल का इम्तहान देकर हमेशा के लिए पंजाब जा रहा था तब उसे ममालदोमा, मांभर, इडली बहुत अच्छे लगने लगे थे । इमली की खट्टी-खट्टी कोटर्गों के लिए तब तक भी हम लोगों में बहुत झगड़े हो जाया करते थे पर कुल मिलाकर हम दोनों गहरे दोस्त थे और जिस दिन वह जा रहा था मैंने उसे स्टेशन पर कैसे अपने हुए एक मिल्क का रूमाल भेंट किया था और फिर हम दोनों हँस पड़े थे ।

मगर मैं बहुत व्यर्थ का, और जाने क्या-क्या अपने मित्र के बारे में सोच रहा हूँ । इस ताँगेवाले की बीड़ी का कड़वा धुआँ मेरे गले में जैसे चुभना-सा लग रहा है, फिर भी मैं अपना सोचना बद नहीं कर पा रहा हूँ । घोंडा बीच-बीच में मुँह से थूक उड़ाने वक्त की आवाज करना हुआ बहुत ही मरियल चाल में चल रहा है । जैसे-जैसे दोनों ओर मकानों की संख्या बढ़ती जा रही है मैं अब उम्मीद कर रहा हूँ कि कोई मुझे साफ कपड़ों में देखकर जरूर ही रंग डालेगा और तब मैं जरूर ही गीला हो जाऊँगा । मुझे अपने गीले होने का उतना डर नहीं जितना कि इस आज के अखबार और अखबार से ज्यादा कीमती तथा काम की चीज इस रेलवे टाइमटेबल के खराब हो जाने का है, क्योंकि इसमें मैंने विजगापट्टम से चलते समय पत्नी के सामने गाड़ियों की तथा अपने ठहरने की तारीख तक डाल रखी है, और इसमें मैंने वह पत्र भी रख दिया है जो कि पुरी का है, जिसमें उसने मुझे होली पर बुलाया है ।

मैं दोनों ओर की उन गलियों की ओर भी देख रहा हूँ जहाँ कि इस समय छोटे-छोटे बच्चे अपनी पिचकारियाँ लिये हुए आने-जाने वालों पर रंग डाल रहे हैं । रंग में नहाये हुए आवाग कुत्ते उन तरकारियों के डठलों में मुँह डालते फिर रहे हैं जो घरों के सामने ढेरों में पड़े हैं । मैं जल्दी से पुरी का पता फिर से याद कर लेना चाहता हूँ जिससे कि कभी किसी ने यदि मुझ पर रंग डाल भी दिया और पत्र भीग भी जाये तो मुझे पते के लिए परेशान न होना पड़े । मैंने इतनी समझदारी जरूर की है कि ताँगेवाले से साफ़-साफ़ कह दिया है कि “मियाँ ! मेरे लिए तुम्हारे नवाबों का यह नफीस लखनऊ बिल्कुल नयी जगह है और मुझे ठीक ११ नाथ एवेन्यू वाले बंगले पर ही छोड़ना होगा ।” हालाँकि इस तरह इन ताँगेवालों से साफ़-साफ़ नहीं कहना चाहिए—यह मेरी पत्नी ने चलते वक्त भी कहा था, क्योंकि वे अजनबी समझकर फिर ऊल-जुलूल माँगने लगते हैं—पर मैं इसमें कोई हानि नहीं देखता ।

मेरे पाजामे पर अब तक तीन पिचकारियाँ चल चुकी हैं । रंग डालनेवाले बच्चों ने किम कदर शैतानी खुशी के साथ रंग डाला है और—‘होली है’—कहकर कैसे गहरे खुश हुए थे । मेरी चप्पलें भी गीली हो गयी हैं । सड़क पर अकेला ताँगा चला जा रहा है और लोगों की शरारती निगाहें मुझसे अधिक अब इस समय मेरे इस सफ़ेद कुर्ते पर लगी

हुई हैं और मैं किसी भी क्षण उनके हमले की उम्मीद में बैठा हुआ, ताँगे के घोड़े की चाल के कारण हिलते हुए ताँगे में बैठा-बैठा हिल रहा हूँ ।

मुझे अपने आप पर हमेशा चिढ़ हुई है । क्योंकि अपनी लापरवाही खुद को तकलीफ़ देह तो होती ही है, पर दूसरों को भी कम कष्ट नहीं पहुँचाती । इस समय मैं सोच रहा हूँ कि यदि एक जोड़ी कपड़ा और लेकर चलता तो कितना अच्छा था —फिर भले ही कितना हीरंग क्यों न फेंका जाता, मुझे कुछ भी उलझन तब न होती—मगर यह सब आदत का सवाल है ।

मुझ पर अब चारों ओर से रंग फेंका जा रहा है और मेरे साथ यह बेचारा मुसलमान ताँगेवाला भी भीगता चला जा रहा है, जिसकी दाढ़ी बराबर कई रंगों में भीगती जा रही है । मेरी बनियान तक शायद अंदर भीग गयी है, तभी तो वह बराबर मेरे शरीर से चिपकती-सी लग रही है । मेरे हाथ के रेलवे टाइमटेबल पर बनी साड़ी के विज्ञापन वाली औरत भी पूरी तरह रंगों में खो गयी है, भीग गयी है । कितनी खूबसूरत साड़ी उसकी—और वह भी कीमती—खराब हो गयी है—क्या कीमत होगी उसकी ? मैं कितना मूर्ख हूँ, व्यर्थ—अपनी घड़ी की ओर तो मेरा ख्याल ही नहीं गया है । घड़ी का चमड़े का पट्टा पूरा गीला हो गया है, उसका शीशा एकदम रंगीन हो उठा है । मुझे उसे अब रूमाल से पोंछकर अंदर की जेब में जरूर रख लेना चाहिए वर्ना, घड़ी खराब हो सकती है ।

मेरे मुँह पर जरूर ही रंग सूख गया होगा और मैं निश्चित रूप से बदमूरत भी लग रहा हूँगा । हो सकता है कि मेरा मित्र पुरी दूर से शायद पहचान ही न सके और उसकी पत्नी—जिसे मैंने अभी तक नहीं देखा है—मुझे इस अवस्था में देखकर कहीं फूहड़ न समझ बैठे, क्योंकि कहीं आश्चर्य में वह ओटो पर अँगुली रखकर या आँखें फाड़ते हुए कह उटे—“अच्छा, तो ये ही है वो आपके मित्र—मनलव कि इन्हीं फूहड़राज का तुम अपना मित्र कहते हो, मुझे तो भई मिनलान छूटनी है; छि: छि: ! !”—मगर वह मेरे दोस्त की पत्नी है । वह कदाचित् दूसरी महिलाओं की तरह ऐसा सब कुछ पति के मित्र के लिए कहकर हल्का न बनेगी ।

पुरी ने एम. कॉम. करने के बाद शादी की थी । हाँ, विवाह का निमंत्रण भी आया था, मगर मैं इतना बीमार हो गया था कि जाना सम्भव न हो सका था । उसके विवाह को दो साल हुए हैं क्योंकि ४९ के दिसम्बर में—नहीं नवम्बर में शादी हुई है—दो साल से कुछ ज्यादा नहीं हुए हैं, तो जरूर ही उसकी बीबी खूबसूरत होगी अभी तो, और फिर पंजाबी तो यों भी गोरे-चिट्ठे होते हैं । पुरी ने शायद अपने लिए बीबी बहुत खोजकर निकाली होगी—या, हाँ सकता है—क्लाम-फेलो रही हो । निश्चय ही, मेरे इस मित्र की पत्नी सुसंस्कृत होगी ही ।

मेरे सामने इस समय ट्रकों पर लदे हुए लोग होली मनाते हुए जा रहे हैं । औरतों के मोटे-मोटे स्तन और पेट इनकी गीली कमीजों में कैसे सटकर दिखायी दे रहे हैं;

किस बदसूरती से ट्रक के हिलने के साथ ही हिलते जा रहे हैं ! और ये लोग किस क्रूर शोर करते जा रहे हैं, शायद बहुत ज्यादा खुश नज़र आ रहे हैं । इनके वालों में रंग की परतें पड़ी हुई हैं ।

बिजली के खंभों के तार धीरे-धीरे हवा में झूल रहे हैं । इन हरे और राख रंगों के खंभों पर लगे हुए सिनेमा के पोस्टरों में बनी हुई सुरैया हर खम्भे पर ठीक उसी तरह हँसती हुई मिलेगी जैसी कि वह पहले खम्भे पर होगी । मेरे अब तक चुपचाप बैठा हुआ ताँगे में चल रहा था पर मुझे एकदम हँसने हुए देखकर ताँगेवाले ने भौंचक होकर अपनी नज़र मेरी ओर घुमायी है; और जिधर मैं देख रहा हूँ उधर ही वह हँसी के कारण को जान जाने के लिए देखने लगा है, और वह भी अब कितना खुलकर हँसा है कि बस !! हम दोनों जिस बात पर बेवकूफों-मे हँस रहे हैं उसमें कोई भी विशेष बात नहीं है; लेकिन फिर भी हम कई बार छोटी सी बात को लेकर ही खूब मारा हँस दिया करते हैं, फ़िज़ूल ही । तो, इस समय मैं जिस बात पर हँस रहा हूँ वह भी बहुत कुछ ऐसी ही छोटी-सी बात है और बान सिर्फ यही है कि एक खम्भे पर पोस्टर में बनी सुरैया के चेहरे पर किसी मनचले ने खीझकर दाढ़ी-मूँछ बना दी है और साथ ही तुर्की टोपी भी पहना दी है । औरत के चेहरे पर दाढ़ी-मूँछ !! —वैसे बात कही मे भी, किसी भी रूप में अजीब नहीं लगनी चाहिए; क्योंकि यदि इस तरह की घटना शरीर-विज्ञान में हो भी गयी होती तो क्या हो जाता ? कुछ भी नहीं होता । अगर कोई भी दूसरा इस तरह की बात पर यों ही हँसता, जिन तरह अभी मैं हँसा हूँ, तो मैं इसी प्रकार के न जाने कितने तर्क दे डालता, मगर मैं खुद जो इस समय हँस रहा हूँ । यह बात दूसरी है कि इसका मतलब खुद जानता हूँ कि मैं इस तरह क्यों हँस रहा हूँ । एक बात तो यही है कि रास्ते भर किसी से बोला नहीं हूँ इसलिए घबरा उठा हूँ, यहाँ तक कि अखबार की एक-एक खबर और पंक्ति को इतनी बार पढ़ चुका हूँ कि मैं आँखें बंद करके पूरे अखबार को बोलकर कम्पोज़ीटर से कम्पोज़ करवा सकता हूँ । रेलवे टाइम टेबल में मैंने हर बड़े और हर छोटे के सब स्टेशन खोज निकाले हैं जो रास्ते में मुझे अभी तक मिलते आये हैं और जो आगे मिलने को हैं ।

मैं इस समय ताँगे की पीतल की छड़ पकड़कर अपने दोस्त पुरी के बारे में मोचने का इरादा कर रहा हूँ । मेरा दोस्त अपनी पत्नी के साथ बैठा हुआ मेरे आने की प्रतीक्षा कर रहा होगा । दिन भर वे लोग भी रंग खेले होंगे और मेरे दोस्त की पत्नी की आँखें धुली हुई सीप-सीप लग रही होंगी । वे लोग जरूर ही मुझे लेने स्टेशन आना चाहते रहे होंगे मगर रंग के डर में शायद नहीं आये । मैं अब थोड़ी देर बाद ही एक आरामकुर्सी पर पैर पसारकर बैठा हूँगा । उजली सफ़ेद कमीज़ और भट्ठी का धुला हुआ पाजामा !! मगर मुझे अपनी डायरी में यह नोट कर लेना चाहिए, कि मैं निश्चित ही एक लापरवाह व्यक्ति हूँ और आइन्दा कभी भी बिना जरूरी सामान लिये हुए नहीं जाऊँगा । ठीक है, दोस्त नहीं भी सोच सकता है मेरी इस लापरवाही पर—लेकिन वह, उसकी बीबी क्या सोचेगी कि यही है वह

दांमन जो अपने साथ एक जोड़ी कपड़ा तक लेकर नहीं आया ! शायद औरतों का ध्यान इन छोटी-छोटी बातों की ओर ही ज्यादा जाता है ।

रास्ते में मुझे जो भी मार्गमूचक पत्थर मिले हैं उन्हें खूब आँखें फाड़-फाड़कर पढ़ता आया हूँ । मैं उम्मीद कर रहा हूँ कि अचानक इस तरह किसी पतली खूबसूरत सड़क पर 'नॉर्थ एवेन्यू' लिखा मिलेगा और फिर यह तांगा उम ओर मूड जायगा—तब जल्दी-जल्दी बँगले गिनते-गिनते वह ११ नम्बर दिखायी देगा जिम पर पीतल की नेम-प्लेट पर पुरी का नाम होगा—श्री हसराम पुरी एम. कॉम !

मगर मैं देख रहा हूँ, यह लम्बी सड़क तो लम्बी ही होती चली जा रही है । यह बायें हाथ पर शायद कोई होटल है, इसके बाहर लॉन में धूप की छतरियाँ अभी तक भी लगी हुई हैं जिनके नीचे कुछ कुर्सियाँ और टेबलें पड़ी हुई हैं । तांगेवाले ने अपने दाहिने हाथ को, जिसमें चाबुक है, उठाकर बताया है कि यहाँ एम. एल. ए. रहते हैं । कौन्सिल के मेम्बरों के घरों में होली काफी देर पहले खत्म हो चुकी है, यह मैं साफ देख पा रहा हूँ, क्योंकि इस इकहरी विल्डिंग के सामने के हरे लॉन में बने हुए वृक्षों के खेलनेवाले झूले फिसलनेवाली चिकनी सीढ़ियाँ—सब पर उजले कपड़े पहने हुए बच्चे खेल रहे हैं । फव्वारे का जल हवा के कारण इधर-उधर उड़ता हुआ गिर रहा है । 'यहाँ फिल्म बनती है जनाव'—और यह कहते हुए तांगेवाले ने अपना पीला-पीला कफ़ उम चिकनी सड़क पर गिरा दिया जिस पर कहीं-कहीं गोबर पड़ा हुआ है, और काँवे आसपास के पेड़ों में कभी-कभी आकर उस गोबर में किसी दाने के लिए चोंच मार जाया करते हैं । स्टूडियो के लोहे के दरवाजे के पार एकदम खुला-खुला-सा लग रहा है । मद्रास के स्टूडियो मुझे याद आ रहे थे । मैं खूब अच्छी तरह समझ सकता हूँ कि यहाँ पर 'इन-डोर शूटिंग' ही होती होगी, क्योंकि पहाड़, समुद्र वगैरह मुझे कहीं भी नहीं दिखायी दे रहे हैं । यह मामने दैनिक अखबार का साइन बोर्ड लगा हुआ है । बाहर की दीवार में पतली जालियोंवाली लम्बी आलमारी-सी बनी हुई जगह में मुवह का अखबार लगा हुआ है जो आज तो इस समय पूरा रँग उठा है, पर, रोज जब ऐसा न होता होगा, तब इस मामने के स्टूडियो के मेक-अप-मैन, कैमरा-मैन, और दपतर के बाबू जरूर ही पैमे की वचन करने के ब्याल में पढ़ने आने होंगे ।

मैं बहुत ही झुंझला उठा हूँ । कितने मरियल तरीके से यह धोड़ा चल रहा है—टप् टप्, टिप् टिप् ! मैं इस तांगेवाले को कैसे बताऊँ कि यदि एक वजे तक नहीं पहुँच पाता हूँ तो मेरा दोस्त जरूर ही समझ लेगा कि 'अब कौन आयेगा'—और फिर जाने क्या हो ? मैं अब किस कदर अपनी घड़ी देखना चाह रहा हूँ कि आखिर मुझे चले कितने घंटे हो गये । ओह ! मैंने अपनी घड़ी कितने झुंझलाकर वापस जेब में डाल ली है क्योंकि अभी भी एक वजने में पन्द्रह मिनट बाकी हैं । मेरा दम घुटने सा लगा है, जरूर ही यह घड़ी रंग से भीगकर बेकार हो गयी है और अब मुझे इस घड़ी को किसी घड़ीमाज को दिखाना पड़ेगा, और फिर तो घड़ी गयी समझो । मैं जान रहा हूँ कि तांगेवाला इस पीली विल्डिंग को, जो

दाहिनी और है और जिसके सामने से होकर इस समय मेरा तांगा गुजर रहा है, 'रेडियो' कहकर मुझे दिखाना चाहता है। मैं डर रहा हूँ कि यह पागल तांगेवाला कहीं इस सीमा तक तो सीधा नहीं है कि इसने मुझे लखनऊ दिखाने का भी काम अपने मिर पर ले लिया हो। किस खरामाँ तरीके से वह तांगा हाँक रहा है, जैसे आज दिन भर उसे सिर्फ़ यही सवारी पहुँचानी है और इस सवारी को भी जैसे दिन भर इसी तांगे में बैठे रहना है।

• कोई कार बार-बार हॉर्न दे रही है। तांगेवाला अपनी ही धुन में वड़वड़ा रहा है—“क्विला ! वगल मे क्यों नही निकल जाने ? क्या किमी के मिर पर मे होकर जाइयेगा ? क्या जमाना आ गया है जनाव ! कहाँ वे पहले की सवारियाँ, और कहाँ ये आज की सवारियाँ—नौबत, न बैठनवाला ही खतरे में खाली, और न रास्ता चलनेवाला ही। अब भला इन्हें कौन समझाये ?”

मैं सड़क पर जाने हुए हर व्यक्ति को अब पूरी समझ रहा हूँ और इसी गलती में हर आदमी मेरे तांगे के पास से धीमे-धीमे पीछे छूट जाता है। जाने कितने लोग उधर ही चले जा रहे हैं जिधर मैं जा रहा हूँ, मगर मैंने उन्हें बिना चले ही पीछे छोड़ दिया है और वे लोग दूर से दूरतर होते जा रहे हैं। सड़क पर चलनेवालों के चेहरे पहले धुँधले पड़ते हैं, और फिर एक सीमा तो वह आ जाती है जब कि लगता है जैसे सड़क पर सिर्फ़ पैट्स और फ्रॉक, घोती और माडियाँ ही चल रही हों। ईसाई औरतें लाल-पीली चैक के ऊँचे-ऊँचे फ्रॉक और ऊपर से सफेद खुले गले की कॉलरवाली ब्लाउजों में बड़ी खूबसूरत लग रही है और मुझे अपने आफिस की वह स्टेनोग्राफर याद आ रही है जो हालीवुड की हर एक्ट्रेस की तरह बाल रखने के शौक में कई बार बहुत उजबक-सी लगती रही है।

लंच के बाद मैं अक्सर अपना थर्मस उठा हौजरी के अहाते में लगे सुपारी और नारियल के पड़ों के नीचे बैठकर उसके साथ कॉफी पीना कभी नहीं भूलता हूँ।

मगर मैं इस समय सचमुच इतना भूखा हूँ कि अगर मेरा दोस्त मुझे कपड़े बदलने और नहाने पर जोर नहीं देगा तो मैं जरूर ही खूब सारा पहले खा लेना चाहूँगा।

बिल्कुल भी धूप नहीं है, पर फटे दूध का-सा सफेद छिछला प्रकाश आसमान से इस समय गिर रहा है और आमपाम की ये सारी बिल्डिंगें, जो पानी से भीगी हुई हैं, जो उवा देने वाली सफेदी में खड़ी हुई है।

अन्दर की बिनियान थोड़ी-थोड़ी सूख चली है और मुझे फिर से पिचकारी चलानेवाले उस लड़के पर गुस्सा आ रहा है जिम्मे मेरे कान के पास आकर कितने ज़ोरों से रंग फेंका था कि वह तो कान का पर्दा फट ही जाता अगर मैं तेज़ी से अखबार की आड़ नहीं कर लेता तो। सड़क पर जानेवाले अजीब रंगों में पुने हुए आदमियों को देखकर दिल में हल्की-सी मतली छूटती है कि क्या शकल है आपकी ! वस, बहुत कुछ इसी तरह मैं भी बदसूरत लग रहा हूँगा। इसी बदसूरत शकल को लेकर मैं पूरी और उसकी उस पत्नी से मिलूँगा जिसे पहली बार देखना है। मुझे अपने पर झल्लाहट आनी स्वाभाविक है, क्योंकि

मैं आज के बजाय कल भी तो आ सकता था। कल क्यों? कानपुर कौन दूर है यहाँ से, शाम को यहाँ पहुँचनेवाली गाड़ी भी तो पकड़ी जा सकती थी।

मेरा ध्यान अब उस बिल्डिंग की ओर जा रहा है जो बहुत बड़ी है। दिल्ली, बम्बई, मद्रास गया हूँ इसलिए यह समझने में देरी नहीं लग रही है कि यह बिल्डिंग यहाँ का काउन्सिल हाउस है। राष्ट्रीय झंडा कैसा गुमसुम डंडे से लिपटा हुआ मौन है! मैं इस ताँगेवाले के बारे में बहुत ही ईमानदारी से कह सकता हूँ कि अगर कहीं ये विगड़े नवाब-जादे साहब गाइड का काम शुरू कर दें तो ज़्यादा अच्छा हो। वह जिस तरह चारों ओर देखता है और रह-रहकर मुझे कनखियों से देखता है उसमे मैं साफ़ ममज़ बैठा हूँ कि यह मुझे 'मनहूस' या 'अहमक' कह रहा होगा दिल में। क्योंकि इसमें और चाहे जितने भी दुर्गुण होंगे मगर इसके बारे में मेरी पक्की धारणा है कि हज़रत की नवाबी तो चली गयी, पर तबियत में, अंदाज़ में ऐंट वही है अभी, और दूसरे मुसाहिबियत का चस्का। किसी चीज़ के बारे में कहने पर उतर आयेंगे तब लीज़िए फिर उसका ऐतिहासिक संबंध बता जायेंगे, साथ ही किस छोटे लाट ने कहाँ पर अपना वावर्न्शिपाना बनाया....फिर खानों की किस्में, मुगियों के अंडे देने के तरीकों पर मौमम के लिहाज़ में तफसील बयान—नीतरों का अंदाज़, बटेरों के जोड़, वज़ीर क्यों नहीं घोड़े की चाल चल सकता है—गरज़ कि गिलौरियाँ ओठों पर अपना रंग दिखाती हैं और मियाँ कबूतरों की-मी आँखें बनाने हुए मवारी का मनबहलाव करते जाने हैं।

वह हर बिल्डिंग के लिए कुछ न कुछ कहकर फिर न जाने कितनी देर तक बड़बड़ाता रहता है। शायद मेरी शकल और कम बोलने में वह यह समझ गया है कि मैं इधर की बोली या तो बिल्कुल ही नहीं समझता या फिर कामचलाऊ ही जानता हूँ। मगर बात ऐसी नहीं है क्योंकि मैं पुरी को बराबर हिन्दी में पत्र लिखता आया हूँ। अगर इस समय यह ताँगेवाला मुझे बेवकूफ़ समझ भी लेता है कि मैं लखनऊ की तहजीब और ज़बान नहीं जानता हूँ, तो कोई हानि नहीं देखता हूँ। हालाँकि कोई भी आदमी यह बर्दाश्त नहीं कर सकता है कि आप उमे मरेआम बेवकूफ़ मानकर चल रहे हों और वह बिना किसी प्रतिकार के आपके साथ-साथ मौन धारण किये हुए चलता रहे!

अच्छा, तो अभी सामने के घंटाघर में १ बजने में १० मिनट बाकी है? और अब मुझे अपनी उस घड़ी पर जाने कितना प्यार उमड़ आया है जिसे मैंने गलत समझकर किस बुरी तरह झूँझलाकर जेब में फेंक दिया था। मैं अब उमे अपनी कलाई पर ज़रूर बाँधूंगा, क्योंकि उसका फ़ीता मेरी अंदर की जेब से रगड़ खाकर सूख तो नहीं गया है, क्योंकि अभी तक लिचलिचा हो रहा है, फिर भी बाँधने के काबिल ज़रूर हो गया है। अखबार पर जहाँ-जहाँ रंग गिरा था वह कैसा सिकुड़ गया है और कई खबरें तो पिघल गयी-सी लग रही हैं। सुबह के वक़्त जिस अखबार और टाइम टेबल को लेकर मैं शान से कानपुर के स्टेशन पर धूम रहा था, वही इस समय धिनौना लग रहा है, लेकिन टाइम टेबल

पर मेरे आफ्रिस की मोहर जो लगी हुई है और आफ्रिस की चीज को यों ही फेंका नहीं जा सकता, दूसरी चीजों की तरह। फिर किसी चीज पर रंग गिर जाने से क्या हो जाता है ? ऐसे तो मेरे चेहरे पर, वालों पर—मब पर रंग होगा, मगर क्या मैं इन्हें फेंक दूंगा ? नहीं !

यह सिनेमा 'केपीटल' है, जहाँ दिन में मक्खियाँ भिनभिना रही हैं मगर रात में चमकती हुई सलवारें, नीली फ्रॉकें, रेशमी साड़ियाँ और खुशबू की लहरें दौड़ती होंगी। और वह पोस्टर की औरत, जिसके नीचे लिखा है—'मेरी गेट युवर गन'—अपनी बंदूक ताने जाने किस का दूर पर निशाना ताक रही है, उसकी बंदूक की नली के सामने मेरी आँख अब आ गयी होगी—और फिर फायर ! ! पोस्टर की औरत और पोस्टर की बंदूक ! !

मुझे ऐसा लग रहा है कि अब यह लम्बी सड़क जरूर ही खत्म होगी और मुझे तब बहुत भारी प्रसन्नता होगी। मैं इस पर अगर पैदल चलना होता तो चलता-चलता जरूर ही थक जाता। मुझे पेट्रोल की ये लाल, पीली टंकियाँ वहन खूबसूरत लगती रही हैं,—बड़ी ही स्मार्ट किस्म की छोटी-छोटी दूकानें होती हैं इनकी, एकदम अप-टू-डेट, विलकुल टाई की नाट की तरह चुस्त ! मेरे दाहिने हाथ पर एक लम्बी मगर बहुत खूबसूरत सड़क, जिस पर बड़ी-बड़ी दूकानें हैं, जो कि इस समय बंद हैं, गुजर रही हैं। नांगेवाला इस बार आती-जाती हुई मोटरों में उलझा था और वह अपनी सवारी को यह बताना भूला था कि इस बाज़ार का क्या नाम है ! मैंने जब उससे पूछा तो उसने 'हजरत गंज' कहकर फिर बड़-बड़ाना शुरू कर दिया। मगर इस बार वह बहुत झंझलाया-मा लग रहा था क्योंकि अब वह बहुत बेरहमी से अपने घोड़े को चाबुक से मार रहा था।

दूर होते हुए पार्क की उम मंगमरमर की छत्री के ऊपर के उस ताज को मैं देखने में लगा हूँ जो कि आसमान के बादलों के पाम दिखायी दे रहा है। बादल, अपने पार की रोशनी में बहुत नेज उजले वैसे ही लग रहे थे जैसे ग्राउन्डग्लाम आसमान में किसी फोटोग्राफर ने लगा रखे हों। एक-एक साइन बोर्ड पढ़ते-पढ़ते मेरा दिमाग इतना चकराया-मा हो रहा है कि मैं बिजली का तार तक पकड़ सकता हूँ, और बार-बार तांगे की पीतल की छड़ कम लेता हूँ अपनी मुट्ठियों में। 'बेनबो' के साइन बोर्ड में बिस्कुट कितने अच्छे बने हुए हैं—कदाचित् सोधे भी हों।

ट्रैक्टर कम्पनी का एक बहुत बड़ा-सा ट्रैक्टर लाल रंग का पुता हुआ बाहर दालान में 'शो' के लिए रखा है, जिस पर एक गंदा-सा लड़का बैठा रो रहा है, जो बीच-बीच में रुक भी जाता है। मैं इस तरह के बच्चों को बहुत शैतान मानता हूँ क्योंकि वे रोते इसलिए नहीं हैं कि उन्हें किसी बात से या मार से पीड़ा पहुँची है, बल्कि वे देखनेवालों की या घरवालों की सहानुभूति उपजा लें अपने लिए, इसलिए रोते हैं। जब यह सब नहीं होता तो, तो वे रह-रहकर बीच में देखने लगते हैं कि कोई सहानुभूति के लिए आ भी रहा है या नहीं और उसी आधार पर वे रोने को लम्बा और छोटा, तथा इन्टरवल के साथ जारी रखने में विश्वास करते हैं।

मैं देख रहा हूँ कि ताँगे ने मोड़ लिया है—अरे, यह तो नॉर्थ एवेन्यू ही आ गयी और अब मुझे एक क्षण भी इस मरियल ताँगे में बैठना अच्छा नहीं लग रहा है। अब दो-तीन मिनट की बात और रह गयी है, मैं अपने बचपन के गहरे दोस्त के साथ बैठा हूँगा थोड़ी देर में—गर्म कॉफ़ी होगी और होगा मेरा दोस्त अपनी पत्नी के साथ ; उस दोस्त की पत्नी की वे धुली-धुली सीप जैसी आँखें, जिन्हें मैं अपनी कॉफ़ी के कप में अवश्य देखना चाहूँगा। पत्नी बन जाने पर औरतों की आँखों में रहस्य का नीलापन आ जाता है। दोनों ओर के बँगलों के सामने आदमी और औरतें हँसते हुए उजले कपड़ों में खड़े हुए हैं। उन लोगों के कुत्ते लॉन की घास में अपनी नाक में मूँघने हुए घूम रहे हैं। यह पाँच नम्बर का बँगला है, वहाँ किसी सरकारी रीजनल आफ़िस का बोर्ड टंगा हुआ है। मोटर सर्विस कम्पनी का कितना बड़ा अहाता है जो अभी तक खत्म ही नहीं हुआ है। यह मामने इंडियन टैरीटोरियल आर्मी का बहुत बड़ा-सा बोर्ड टंगा हुआ है जिस पर नीले शब्दों में 'जाइन दि आर्मी' लिखा है, और मुझे बंगलोर, उत्कलंड याद आ रहे हैं। बोर्ड में वन हुए इस आर्मी मैन की मूँछें कितनी काली और घनी लग रही हैं। मगर मैं जानता हूँ कि यह सब इस नेशनल गवर्नमेंट का प्रोपैगन्डा है, बड़ी थकान की ज़िदगी आर्मी की होती है।

और ताँगेवाला एक बँगले के सामने आकर रुका है। मैं समझ रहा हूँ कि ग्यारह नम्बर नॉर्थ एवेन्यू ही है, क्योंकि यह बगलवाला नौ नम्बर का बँगला है; इस नौ के सामने दस होगा ही। बँगले के अहाते का दरवाज़ा खोलकर अब मेरा ताँगा अंदर आ गया है। लकड़ी के इस दरवाज़े पर पुगि की नेम-प्लेट ज़रूर है, मगर पीतल की नहीं—काली दफ़्ती पर सफ़ेदी से लिखा हुआ नाम जो कि बहुत पुराना पड़ चुका है। अहाते का दरवाज़ा ज़रूर ही पुराना है हालाँकि तारकोल पोतकर चमचमा दिया गया है। लेकिन खुलते वक़्त 'चूँ-चूँ' की आवाज़ की थी।

मैं अहाते में लगी चमेली के सफ़ेद फूलों के पाम कल्पना कर रहा हूँ अपने दोस्त पुरी और उसकी पत्नी की, कि वे लोग खड़े हुए मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। स्त्रियों की पतली लम्बी उँगलियों की तरह कनेर की पत्तियों पर पीली कंमरिया तिनलियाँ उड़ रही हैं। मेरा दोस्त लाहौर का है और उस नरगिस के फूलों में मुहब्बत है। शायद पुगि की पत्नी को भी नरगिस ही प्रिय हो। ताँगे के पहिये के खड़ के पाम रंग-बिरंगे फूलों की क्या रियाँ लहरा रही हैं—और मैं हिल रहा हूँ।

मैं बँगले की बरसाती में आ गया हूँ। बरसाती पर बेगमबेलिया के लाल फूलों की लताएँ खूब सारी घनी हरी होकर फैली हुई हैं; किन्तु मुझे इस अहाते में जो सबसे ज्यादा नफ़रत पैदा कर देनेवाली चीज़ लग रही है वह है—इसकी गंजी सड़क। सोच रहा हूँ कि गिट्टियों की तेज़ नोकें पैरों में, जब कि विशेष कर वे नंगे हों, कितनी बेरहमी से चुभ सकती हैं, इसका अंदाज़ा लगाया जा सकता है। मैं ज्यामिति की थ्योरम की तरह मानकर चल सकता हूँ कि मेरे दोस्त की पत्नी कभी इच्छा हो आने पर भी नंगे कदमों से

इस लॉन पर न आती होगी, इस गंजी मड़क के कारण । मेरे दिमाग में यह शकल विलकुल फैलती ही जा रही है—एक नहाया हुआ, एकदम गोरा, नर्म, रबर की तरह मुलायम और साँप की तरह फैल जानेवाला, वच्चों के पैरों से बहुत कुछ मिलता-जुलता उजला चरण और उसके ठीक नीचे चाकू की धार की तरह दो गिट्टियाँ—पैर यदि जल्दी से नहीं हटाया गया तो—मैं आगे भी सोच सकता हूँ, मगर सोचूँगा नहीं; क्योंकि ऐसा सोचकर मैं अपने दोस्त की उम बीबी का वह खूबसूरत पैर बिगाड़ दूँगा कि जिसकी आँखें सीप जैसी धुली हुई होंगी ।

मैं ताँगे से उतरकर सीढ़ियाँ चढ़ चुका हूँ । ताँगेवाला पैसा लेकर कान में खुँसी हुई बीड़ी निकालकर मूँलगाने में लगा है । कुछ ही देर में यह ताँगेवाला इस अहाते से निकलकर इस नॉर्थ एवेन्यू में होता हुआ पहले तो बड़ी सड़कों पर और फिर जाने कहाँ आदमियों के समूह में खो जायेगा, और तब मैं चाहूँगा तो भी यह चेहरा मुझे देखने को नहीं मिलेगा । दो-चार चिड़ियों की चहचहाट के अलावा बँगले में शांति है । मगर अब ताँगे के जाते हुए पहियो और घोड़े की ढीली नालों की आवाजें शुरू हो गयी हैं । किन्तु इस ताँगे के चले जाने के बाद तो फिर चिड़ियाँ होंगी, मैं हूँगा, और होगा मेरा दोस्त तथा उसकी वह पत्नी जिसे मैंने अभी नहीं देखा है ।

मैं उम्मीद कर रहा हूँ कि मेरे दोस्त को मेरे आने की सूचना हो गयी होगी और अभी वह हँसता हुआ आ रहा होगा । आप सच मानें, मैं अपने इस दोस्त को बहुत प्यार करता हूँ । इस प्यार के पीछे हमारे वचपन की बेवकूफियाँ ज्यादा हैं । मैं समझता हूँ कि यदि बेवकूफियाँ प्यार को जन्म देती हैं, तो मूर्खता प्रेम को ।—हम दोनों आज चाहें तो कॉफी की चुस्कियाँ लेते हुए इन बेवकूफियों को याद करते हुए बहुत मारा हँस भी सकते हैं मगर उन दिनों हमने ये बेवकूफियाँ कितनी लगन और ईमानदारी से की थी । मगर अब मैं ज्यादा देर बिना आवाज दिये खड़ा नहीं रह सकूँगा । आखिर मेरा दोस्त अन्दर होगा ही; उसे क्या मालूम हो पायेगा कि उसका दोस्त, मैं आगया हूँ और उसके बँगले की छत के नीचे रंग में नहाया हुआ खड़ा हूँ । मैंने आवाज देने की पूरी तैयारी कर ली है; गले में दो-तीन बार थूक घोंटकर उसे गीला भी कर लिया है और मैंने नाक में मांस लेकर यह भी देख लिया है कि मैं पूरी तरह बहुत ही शरीफाना तौर से आवाज लगा सकूँगा । हो सकता है मेरा दोस्त किसी जरूरी काम से कही गया हो, तो उसकी पत्नी इस आवाज को सुनकर बाहर आये तो मेरे पुकारने के ढंग पर यह समझ सके कि मैं ही वह दोस्त हूँ जिसका रास्ता उसका पति देख रहा है और उसके पति ने उससे जरूर ही चर्चा की होगी । मगर मैं देख रहा हूँ कि दरवाजे सब अंदर से बंद किये हुए लग रहे हैं । दरवाजों के शीशे हल्के चमक रहे हैं । बीच-बीच में लकड़ियों के टुकड़े आ जाने से उन दरवाजों के शीशों में अहाते का लॉन, चमेली, कनेर, लताएँ—सबकी छायाएँ गिर रही हैं । मगर शीशे में वे छायाएँ टूटे बेंत की तरह लग रही हैं ।

नहीं, मैं निश्चय कर रहा हूँ कि आवाज़ नहीं दूँगा। क्योंकि इन बंद शीशों के दरवाज़ों के पार बैठा हुआ मेरा दोस्त आवाज़ सुनने के बाद समझ जायगा कि मैं आ गया हूँ, और मेरा पुकारना उसकी प्रतीक्षा या उत्सुकता पर पानी फेर देगा। मैं इन दो हरे-हरे पुते हुए बेंत के मोढ़ों में से किसी एक पर टाँग पर टाँग रखकर चुपचाप बैठ जाऊँगा। और बाहर की सड़क, सामने के बँगले के उन चमकते हुए पीतल के गमलों को देखते हुए प्रतीक्षा करूँगा कि मेरा दोस्त बाहर आये और मुझे बैठा देखकर एकदम चीख पड़े—अरे, तुम कब आये ? अजीब आदमी हो !! कब से राह देख रहे हैं हम; चलो, चलो, अंदर चलो—और फिर वह अपनी पत्नी को पुकारेगा—क्या नाम होगा उसका?—यही कोई अमृत, संतोष !—और मैं सचमुच एक हरे मोढ़े पर बैठा हूँ। मोढ़ा, जब मैं बैठा हल्की चड़-चड़ की आवाज़ कर रहा था और मैं अब दोस्त के बँगले के मोढ़े पर बैठा सामने के लॉन, कनेर, चमेली और पानी की तरह मीठी हरी दूब, मेंहदी की झाड़ियाँ देख रहा हूँ।

तीन-चार पीली-पीली कागज़ की तरह हल्की तितलियाँ फूलों पर उड़ रही हैं। एक खूबसूरत कुत्ता उन तितलियों को मुँह में भर लेने के लिए क्यारियों में गिरता-पड़ता दौड़ रहा है। आज के इस उत्सव की दापहरी में भी दूर से आती हुई किसी कौवे की फटी हुई आवाज़ एक अजीब उदामी-सी भर रही है। मगर मैं इस तरह चुप बैठकर अधिक बेवकूफ नहीं बन सकूँगा। मैं अब अपनी गीली चप्पलों की भेदी आवाज़ दालान में करता हुआ बरसाती में खड़ा होकर फिर से किसी नये निर्णय को कर लेना चाहने लगा हूँ। सामने के उस बँगले में कोई बंगालिन मुझे धर-धरकर देख रही है। उसके लम्बे बाल पीठ पर फैले हुए सूख रहे हैं, शायद वह बहुत देर पहले के नहाये बालों की नमी अंतिम रूप से दूर कर लेना चाह रही होगी ताकि फिर उनमें नेल डालकर जूड़ा बांधा जा सके। मगर मुझे किसी दूसरे के जूड़े से कोई मतलब नहीं।

मेरे सामने इस समय एक आदमी क्यारियों की ओर मुँह करके मिट्टी खोद रहा है। ज़रूर ही यह माली होगा, क्यारियों में गड्ढा करना हुआ फिर रहा है। मैं ज़िम समय बँगले में आया था यह आदमी तब पीछे रहा होगा। बँगले के पीछे ज़रूर ही टमाटर, गोभी लगी होगी और यह उधर का काम समाप्त कर अब इधर आया है।

जब मैंने माली को पुकारा, वह अपने हाथवाली खुरी जिसमें मिट्टी लगी हुई थी कमर में खोसता हुआ बोला कि 'मालिक आज सुबह तार पाकर वरेली चले गये हैं।' मैं बहुत अधिक झुंझला गया हूँ। मैं इस दो पैमे पानेवाले माली का ज़रूर ही गला घोट सकता हूँ जो झूठ बोल रहा है। मगर मैं फिर सोचता हूँ कि वह क्यों झूठ बोलेगा ?—तो, मुझे यहाँ से एकदम चल देना होगा ? मुझे अपनी धुंधली पड़ी हुई दृष्टि में ताँगेवाला याद आ रहा है ज़िमसे थोड़ी जान-पहचान हुई थी और किसी कदर अब तो मैं इस पूरे लखनऊ में उसी को जान-पहिचानी कह सकता हूँ। वह चला गया है और मुझे भी अब चल देना होगा। टाइम टेबल पर सिकुड़न पड़ी हुई साड़ियों के इस्तहारवाली औरत इस समय

बहुत बुरी लग रही है, क्योंकि उसके हँसते हुए चेहरे को मूर्खतावश मान रहा हूँ कि वह मेरी परेशानी पर हँस रही है। जल्दी से एक उँगली को ओंठ से थोड़ा गीला कर टाइम टेबल के पन्ने पर पन्ने पलटता जा रहा हूँ। मैं एकवारगी ही जान लेना चाहता हूँ कि वह कौन सी गाड़ी है जो मुझे कानपुर के लिए इस समय मिल सकती है। मैं दिन भर चुप रहा हूँ, अब मेरी तबियत चीख पड़ने को हो रही है। लौटते में इस बार खिड़की के बाहर सर निकालकर जरूर गाऊँगा, चाहे मेरी आँखों में कितनी ही बार रेल का कोयला गिरे। इस चुप रहने से ज्यादा कड़वा अनुभव वह नहीं होगा।

मैं अब बरसाती के बाहर निकल आया हूँ। पुरी के बँगले की यह बाहर निकली बड़ी-सी फ्रेंच खिड़की जो कि बंद है, मैं समझ सकता हूँ कि इसी खिड़की के पास दोपहरी में पुरी की पत्नी खड़ी रहती होगी और यही कमरा इस दम्पति का ड्राइंग रूम होगा। इसी ड्राइंग रूम में फ्रेम किया हुआ वह हँसता हुआ फोटोग्राफ भी होगा जो कि ठीक विवाह के समय लिया गया होगा। . . . शादी के बाद फोटो लेना भी एक प्रथा है। . . . कुसियाँ होंगी, सोफा होगा और पुरी का सबसे प्रिय वह अबबार 'माडर्न रिब्यू' भी कई फ्राइल्स में होगा, जिसके बल पर उसके जैसा व्यापारी आदमी भी कला और साहित्य पर बोल-बोलकर बलबों में रीब झाड़ा करता है। मगर मैं अब इस अहाते के बाहर के दरवाजे पर पहुँच रहा हूँ। रेलवे टाइम टेबल ने मुझे कोरा जवाब दे दिया है कि चाहे कुछ भी हो, ६ बजे के पहले कोई गाड़ी नहीं मिल सकती है। और मैं पाँच घंटे तक अपने ये बदतमीज कपड़े और रंगों-भरा बदसूरत चेहरा लिये लखनऊ की इन साफ-सुथरी सड़कों पर मारा-मारा फिरेगा। मैं बहुत थक चुका हूँ। किसी पार्क में पैर फैलाकर सोने का इरादा मैं करना चाहता हूँ। और इस भीगी उदास दोपहरी की नींद में मैं जरूर ही धोबियों को स्वप्न में देखना पसंद करूँगा कि वे एक साथ हजारों पाजामे, बनियानें सुखा रहे हैं— साथ ही मेरे चारों ओर साबुन की मफ़ेद खूबसूरत टिकियाएँ होंगी। दो फ़र्लांग लम्बी रम्सी पर बरेठे बहुत सारे उजले धुले कपड़े सुखा रहे होंगे, हवा में जो कि उल्टी टँगो हुई फूली बतखों जैसे लगेंगे। मेरे चारों ओर स्वप्न में तब उजले कपड़ों का वरदान होगा।

मैं अब बहुत तमीज के साथ दोस्त के इस अहाते के दरवाजे को बंद करूँगा पहले और फिर सोच सकूँगा कि किधर चलना शुरू करूँ जिसमें पहले किसी म्युनिसिपैलिटी के बम्बे में पेट भर पानी पी सकूँ, और तब पार्क की किसी ऊँची बेंच पर पैर हिलाते हुए शाम तक के लम्बे-लम्बे खाली घंटों का हिसाब लगा सकूँ। दरवाजा मैं खुला भी छोड़ सकता हूँ, मगर कोई गाय घुसकर इन नरगिस के फूलों को खा भी तो जा सकती है, जब कि बहुत से आदमियों को नहीं मालूम कि इतने सुन्दर फूलों का क्या उपयोग है, तो फिर गाय तो जानवर ठहरी। गाय को हालाँकि माली अंदर नहीं घुसने देगा, मगर मैं इस समय ही जैसे देख रहा हूँ कि वह माली मुझसे बात करने के बाद पीछे की ओर जाने क्यों चला गया है।

में दरवाजा बंद भी कर चुका हूँ और अब मेरा पहला कदम उठेगा, उसके बाद दूसरा तथा उसके बाद तो इस अजनबी शहर में मेरे जाने कितने कदम उठते ही चले जायेंगे ।

मगर मैं देख रहा हूँ कि माली दौड़ता हुआ आ रहा है और वह अपना दाहिना हाथ मुझे ठहरने के लिए ऊँचा करके शायद मुझे पुकार भी रहा है । मेरा पहला कदम जो कि दिमाग में तो उठ चुका है लेकिन मुझे उसे रोक देना पड़ा है और मैं इस माली की बात को बहुत रोब से सुनना चाहता हूँ, इसलिए गोल किये हुए अखबार को बराबर पाजामे पर बजा रहा हूँ—जैसे मैं दोस्त के न होने की बात को सुनकर किसी भी तरह की दिमागी उजलत में नहीं हूँ, जैसे मेरे लिए इस तरह की बातों में कोई भी परेशानी नहीं है; क्योंकि अगर कहीं मेरी हालत पर इस माली को तरस आ गया तो मैं सचमुच कहीं का न रहूँगा ।

“चलिए, आपको बीबी जी बुला रही है”—खीमे निपोरने हुए माली ने कहा ।

तो क्या पुरी तार पाकर अकेला ही गया है ? मैं बहुत उजलत में और जल्दी में हमेशा ही जाने क्या-क्या सोच जाया करता हूँ । यही देखिए, वान कितनी साफ होगयी है अब । पुरी को जो तार मिला है सुबह, वह जरूर ही दूसरी तरह का तार होगा, तभी तो वह अकेला गया है, क्योंकि उसे मालूम है कि मैं आनेवाला हूँ । साथ ही बीबी से भी कह गया है कि मैं आनेवाला हूँ । और अब मैं बहुत प्रसन्न हूँ । मैं चाहता हूँ कि लम्बे-लम्बे डग मारकर जल्दी से अपने दोस्त की बीबी के पास पहुँचकर हँसता हुआ कहूँ कि,

मैं आगया हूँ ।

वापस मेरे कदम उठ रहे हैं—क्यागियाँ, रंग-रंग के फूल मेरी नीची तजगें के नीचे से गुज़र रहे हैं । लता की मोटी जड़ और खुरदरी सड़क पर मेरे भद्दे मोटे पैर-जिन पर रंग जमकर चीठा हो गया है—मैं चल रहा हूँ । वे ही तीनों मीठियाँ—और माली ने मुझे बायें हाथवाले कमरे की ओर इशारा किया है, जहाँ एक परदा हिल रहा है । परदे और दरवाजे के नीचे की चौखट के बीच जो दरार है वहाँ ऊँट की खाल के रंग का पाँवपोश, जिम पर लाल अक्षरों में ‘वेलकम’ दिखायी दे रहा है । दरवाजे पर एक सुनहरी नेम-प्लेट लगी हुई है—‘मिसेज रंजना—’, और आगे मेरे दिमाग ने आँख बंद करके पूरा पढ़ लिया है—‘मिसेज रंजना पुरी’ और अब मैंने बहुत धीमे से तमीज़ के साथ परदा ऊँचा कर दिया है ।

मेरे सामने हरी साड़ी, जो कि खामिस्म की है और जिसे दक्षिणी औरत पहनती हैं, पहने हुए, बॉफवट में घुँघराले बाल, हँसती हुई आँखें, गोंगा रंग और प्रणाम करने हुए दोनों हाथ—तो यही मेरे दोस्त की पत्नी रंजना है ।

“आइये, शायद अभी आ रहे होंगे आप कानपुर से ?”

“जी हाँ, इसी माढ़े बारह की गाड़ी से आया हूँ ।”

मगर, मैं यह विश्वास क्यों कर रहा हूँ कि यह औरत पंजाबी भी है और बंगालिन भी ? लेकिन मुझे इस समय दूसरा और कुछ न सोचकर यह कहना है कि अजीब परिस्थिति

है जो कि पुरी आज चला गया सुबह ही ।

“देखिए, पुरी ने आपके बारे में इतना सारा पत्रों में लिखा है कि वस देखने भर की ही देर थी ।”

मुझे लग रहा है कि मैं बहुत अच्छे तरीके के साथ व्यावहारिक बातें कर सकता हूँ ।

मेरे दोस्त की बीबी रंजना बहुत जोरों से हँसती हुई बगल के सोफे पर बैठ रही है । मुझे अपने बारे में इतने जल्द धारणा बदलनी पड़ जायगी, इसकी मैं कल्पना नहीं कर रहा था । मुझे अपने दोस्त को बधाई देनी होगी कि वह इतनी हँसमुख बीबी पा गया है; नहीं तो पत्नी के नाम पर मुझे जाने क्यों गूंगे व्यक्तियों का ही स्मरण आता है, या फिर बड़े-बड़े अस्पतालों में जो अस्थिपंजर खड़े रहते हैं—उन्हे आप कपड़े पहना दीजिए, जूड़ा बाँध दीजिए, पाउडर लगा दीजिए—और आप चाहें तो उसे पत्नी की मंजा भी दे सकते हैं । मगर मेरे दोस्त की यह पत्नी वैसी सब कुछ नहीं है । मेरा दोस्त भी कितना मूर्ख है कि इस ‘रंजना’ सरीखे खूबसूरत नाम को वह मुझे पत्रों में ‘तुम्हारी भाभी’ ‘तुम्हारी भाभी’ कहकर लिखता रहा है । रंजना ने दो-तीन बार मेरी ओर देखकर अब अपनी पलकें नीची कर ली हैं: मैं जान रहा हूँ कि वह जरूर ही कुछ बोलना चाहती है ।

“पुरी कल तक तो आ ही जायगा रजना जी —”

वह फिर हँसी—

मुझे इस बार यह हँसी उतनी नहीं भायी । नहीं जी, साफ़ बात यह है कि बिलकुल ही अच्छी नहीं लगी । अब समझा, मेरे दोस्त की पत्नी को मेरी शकल पर हँसी आ रही होगी । ठीक है, खराब और उजबक शकल देखकर सबको हँसी आनी ही है, मगर मेरी इस समय की शकल को देखकर हँसना तो मेरे ऊपर मरेआम ज्यादाती है । लोगों ने रंग इस बुरी तरह में डाल दिया है कि कोई दूसरा ही क्यों, मैं खुद अपने को पसंद नहीं कर सकता हूँ । मगर फिर भी क्या रजना को ऐसे हँसना चाहिए ?

“आपके दोस्त आज सुबह तार पाकर घर बरेली चले गये हैं—”

अब का बार हल्के हँसते हुए रजना कह रही थी ।

“जब वह आपको यहाँ छोड़ गया है तो इसका मतलब हुआ कि वह एक-दो दिन में आ ही जायगा ।”

और फिर हँसी ।

मुझे यह नहीं मालूम था कि कभी मुझे ज्यादा हँसनेवालों पर यह धारणा बनानी होगी कि मैं ऐसों से नफ़रत करता हूँ, जब कि हँसना हमारा राष्ट्रीय गुण नहीं है । हम भारतवासी वैसे ही गम्भीर हुआ करते हैं, तब हमारी महिलाओं का इस प्रकार हँसना क्या स्त्रियोचित है ?—वया मैं गचमुच बराबर बेवकूफी की बात कर रहा हूँ जो यह रंजना इस इतने बड़े कमरे को अपने सफ़ेद दाँतोंवाली हँसी से भर रही है ? मैं अब अपनी घड़ी निकालकर सामने बैठा हुआ रंजना पर यह प्रदर्शित कर देना चाहता हूँ कि मैं चलकर आया

हूँ और थक भी तो सकता हूँ। जिस समय मैंने घड़ी अंदर की जेब से निकाली—(मुझे याद नहीं पड़ता कि कब उसे कलाई से छोड़कर अंदर की जेब में रख लिया था)।—एक बजकर पच्चीस मिनट हुए थे, और मैं स्पष्ट रूप से यह सोच भी चुका हूँ कि या तो सब घड़ियाँ खराब हो गयी हैं या फिर मेरा दिमाग। घड़ियाँ गैरन्टीड होती हैं, किन्तु आदमी का दिमाग नहीं।

अब की बार उसने एक अलमारी का पल्ला खोलते हुए कहा—

“क्या सोच रहे हैं आप?”

हालाँकि हँसी का पुट इस बात में भी था मगर मैं इस बार हँसी को बात में से काटकर गम्भीर कथन मान सकता हूँ। यह ओरत बहुत खुले और मीठे स्वभाव की है, खूबसूरत पति की सुन्दर पत्नी है और पैसे की चिन्ता के नाम पर शायद यह रहनी होगी कि बाकी का पैसा कहाँ और कैसे खर्च किया जाये।

उसने ‘थ्री केसल्स’ का हरा टिन काटते हुए लाइटर के साथ मेरे सामने की छोटी-सी टेबल पर रख दिया जिम पर मीने की एक राखदानी पहले से ही रखी हुई थी।

“आप सिगरेट पीजिए, तब तक प्रबन्ध हुआ जाता है।”

तम्बाकू की कीमती गंध में मेरा दिमाग खुशबू बनता जा रहा है और मैंने लाइटर कितने स्मार्ट तरीके पर जीवन में पहली बार जलाया है कि मेरी तबियत एकदम खुश हो गयी है।

पहला कश, गंध भरा कश!!

और फिर तो पूरी सिगरेट! कमरे में तम्बाकू के गंध वाले छल्ले ही छल्ले तैरने लगे हैं। मेरे दोस्त का कमरा और सुगंधित सिगरेट। मेरा दोस्त भी आज सुबह तक कमरे में बैठा होगा सिगरेट के छल्ले छोड़ता हुआ, और इसी तरह हँसती हुई यह रंजना, मेरे दोस्त की पत्नी, वस हँसती रही होगी उम्मे के साथ।

दोनों कितने अच्छे हैं—इन्हे कदाचित् किसी तीसरे की कोई आवश्यकता अनुभव नहीं होती होगी।

मैंने कितनी फुर्ती के साथ उस बड़े छल्ले में से दूसरा छल्ला निकाला है।

सिगरेट की खुशबू, दोस्त का कमरा!!

रंजना की हँसती हुई आँखें—धूँ के गोल गोल छोटो-बड़े छल्ले कमरे में तैर रहे हैं।

रंजना शायद कमरे में अभी थोड़ी देर के लिए नहीं थी। वह फिर लौट आयी है, मगर हँसती हुई—

“सुनिये, अब आप गुसल ले लें—मगर एक बात कह दूँ कि मैं आपके दोस्त की पत्नी नहीं हूँ।”

और फिर हँसी—

मेरे गले में खुशबूवाले धूँएँ के गोल-गोल छल्ले घूम रहे हैं। मुझे सचमुच चक्कर आ जायगा। मैं महसूस कर रहा हूँ कि आज मेरे साथ कोई बहुत बड़ा मजाक करने पर तुला हुआ है। माली ने जिस समय कहा था कि पुरी नहीं है, मुझे अपनी गीली चप्पलों के साथ तेज कदम बढ़ाते हुए चले जाना चाहिए था। यह रंजना कहती है कि वह पुरी की पत्नी नहीं है। और अब मैं रंजना के बाल, आँखें, नाक, नीचे-ऊपर के ओठ, थोड़ी, कंठ सब के सब धूर-धूरकर देख लेना चाहता हूँ जिसमें मैं यह स्पष्ट कर लूँ कि यह औरत— जो केवल हँसना जानती है, मेरे दोस्त की पत्नी कदापि नहीं है।

जलती मिगरेट अगर मैं फँक नहीं दूँगा तो वह उंगली को अवश्य जला देगी। मगर मैं इस समय मिगरेट के बारे में सोचने में ज्यादा महत्व का काम कर रहा हूँ कि दूसरी बार सामने बैठी हुई रंजना को ऊपर से नीचे तक देख रहा हूँ। यह कौन है? यह हरा ब्लाउज पहने है जिसके अंदर उसका शरीर गुमल किया हुआ, किमी खुशबू वाले साबुन से धुला और मुलायम तौलिये में पँछा हुआ बंद है। केले की तरह चिकनी बाँहों में यह ब्लाउज कैसा फँसा-फँसा-सा लग रहा है। गले में मफेद रंग की माला पड़ी हुई है। कलाइयाँ—मैं मानता हूँ कि इतनी खूबमूरत दक्षिणी महिलाओं की भी नहीं होती है, उनमें एक तरफ लेडीज़ रिस्ट वाच के नाम पर सोने की एकदम छोटी घड़ी बंधी हुई है और दूसरी कलाई में सोने की एक चूड़ी। रंजना के उजले पैरों में बहुत हल्की उम्दा-सी चप्पलें हैं और नाखूनों पर क्यूटेक्स सूखकर जम गयी है जो कि अब इस समय छोटे-छोटे लाल रंग के दम शीशों की शक्ल ले बैठी है। ऊपर चलता हुआ पखा पैरो के इन दम लाल शीशों में चलता हुआ दिखायी दे रहा है। मैं बेवकूफों की तरह जाने क्यों परी की कहानी वाली बात सोचने लगा हूँ कि रंजना के पैरों में लाल रंग के ये क्यूटेक्सी शीशे जैसे दम लाल पख हैं, और मैं इस समय अपने विजगापट्टम वाले सीलन भरे मकान में बाँस की कुर्मी पर बैठा हुआ मिगरेट पी रहा हूँ, और यह रंजना अपने लाल पंखों को फैलाती हुई मेरे नज़दीक उतर आयी है, जब कि मैं जानता हूँ कि ये कल्पना के छोटे-छोटे लाल पंख कुछ नहीं हैं, जो कि पैरो के धुल जाने पर कहीं नहीं रहेंगे। कमरे में पंखा चल रहा है और मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरी बनियान अभी तक गीली है और मुझे हल्का जाड़ा लग रहा है। मैं चाहता हूँ कि पखा बंद कर दिया जाये।

“क्या देख रहे हैं आप इतने गौर से?”

रंजना यह कहते हुए उठी है। मैं अपने दिमाग को एक बार पूरी तरह उसी भाँति झकझोर लेना चाहता हूँ जैसे मिट्टी में लोट लगा लेने के बाद गधा उठकर पूरी तरह अपने शरीर को झकझोर लेता है।

तो, रंजना मेरे दोस्त की पत्नी नहीं है, यह कोई और है, जिसे मैं नहीं जानता। इसकी इस हँसी का कारण अब मेरी समझ में साफ़ आ रहा है कि यह दिल में किस कदर बेवकूफ समझ रही होगी। मगर मैं अपनी गलती कहीं से भी नहीं समझ पा रहा हूँ। बस, एक जगह मैं ज़रूर चुका हूँ कि जब रंजना की मैं नेम-प्लेट पढ़ रहा था, कितने विश्वास

के साथ आँखें बंद करके रंजना के नाम के साथ 'पुरी' और जोड़ गया था। मुझे अब स्वयं पर कितना तरस आ रहा है कि जब मैं चला जाऊँगा और यह रंजना नाम की तेज़ औरत, पुरी और पुरी की वास्तविक पत्नी के सामने कितना सारा हँस-हँसकर मेरा मज़ाक बनाएगी, और तब मेरे दोस्त की वह बीबी शायद यह धारणा बना ले कि पुरी का दोस्त सचमुच ही कोई मूर्ख व्यक्ति है। यह औरत तो मुझे कही का भी रहने नहीं देगी। कितने बेलाग तरीके पर हँसती है। दूसरों की पत्नियों के सामने बेवकूफ सिद्ध हो जाने से बढ़कर दयनीय अवस्था कोई और नहीं हो सकती।

मुझे अब अपने आप पर से विश्वास उठता जा रहा है। गुस्से के साथ जो सिगरेट 'एश-ट्रे' में बुझायी थी वह अभी तक धूँआँ दे रही है। धूँएँ की एक पतली-सी डोरी छत की ओर उठती है मगर पंखे की हवा धूँएँ की डोरी को और अधिक ऊपर न आने देने के लिए फैला दे रही है। यह मैं क्या सोच रहा हूँ, विलकुल ही फिज़ूल की बात दिमाग में जाने कहाँ से आ रही है! मुझे इस औरत का आतिथ्य स्वीकार न कर यह प्रदर्शित करना होगा कि नहीं, तुम जिस व्यक्ति को इतना अमहाय और दयनीय माने बैठी हो वह वैसा नहीं है। बनियानों का विज्ञापन कितने तरीकों से और किस-किस तरह से किया जाना चाहिए, इस पर वह पूरे व्यापारी वर्ग में मशहूर है, और तो और, तुम्हारे सामने बैठा हुआ यह व्यक्ति, बनियानों के विज्ञापन के सम्बन्ध में किताब लिखने तक की कई बार सोच चुका है। मेरी पीठ-पीछे के दरवाज़े पर जो परदा है उसके पास में रंजना की आवाज़ आ रही है। मैं अब समझ पा रहा हूँ कि मैं क्यों चुप हूँ—क्योंकि उसके आने का रास्ता जो देख रहा हूँ। उसके आने ही में उसे हँसते हुए धन्यवाद दूँगा और 'कोई आवश्यकता नहीं' कहकर और अपने दोनों हाथों को उठाकर नमस्कार करके यहाँ से चल दूँगा—इस ड्राइंग रूम से दूर, परदे के पार, बरसाती, लॉन, अहाते का दरवाज़ा और फिर तो यह नॉर्थ एवेन्यू जल्दी से पार करने पर ही मोचूँगा कि कहाँ और किधर जाना होगा। खैर, अब मैं महसूस कर रहा हूँ कि अगर तेज़ी से मोचता रहूँ तो काफी ठीक मोच सकता हूँ। जब इस औरत से मेरा कोई सम्पर्क नहीं, तब क्यों उपकार लूँ? न तो यह मेरी मित्र है, और न मित्र की पत्नी ही।

रंजना को देखते ही मैं खड़े होने की सोच चुका हूँ और खड़ा हो भी गया हूँ। मैं एक माँस में बोल जाऊँगा ताकि वह फिर कहीं हँसकर मुझे चिढ़ा न दे। मैं फिर विचारों में वैसा ही नहीं उलझना चाहता हूँ जैसे कपड़ा बेर की डालियों में उलझ जाता है—कपड़े को धर में निकालो तो उधर अटक जाए, और बस कपड़ा फटना चला जा रहा है—बेर और काँटों का क्या नुकसान इसमें?

“तो मैं अब आज्ञा लूँ....”

और मैंने आज से दस साल पहले उदयशंकर को जिस नाटकीय, कलात्मक ढंग के साथ हाथ जोड़ते हुए मद्रास के आर्ट स्कूल में देखा था ठीक वैसे ही व्यावहारिक मुस्कान

के साथ अपने हाथ जोड़ लिये हैं। अब यह ज़रूर मुझसे कहेगी कि—“अच्छा, तो फिर ?”
“कहाँ ?” “क्या नहाइयेगा नहीं ?”

मे मन ही मन बहुत खुश हो रहा हूँ कि यह औरत उतनी समझदार नहीं है जितनी कि मैं इसे थोड़ी देर पहले समझ रहा था। क्योंकि यह अभी भी विश्वास कर रही है कि मैं ठहरेगा, मगर अबकी बार मैं इतनी सरलता के साथ नहीं कहूँगा—कुछ कड़ा पड़ सकता हूँ।

“देखिए अधिक कष्ट की कोई ज़रूरत नहीं है, क्योंकि आपसे कोई परिचय तक नहीं और”

“ओह ! तो आप मेरा परिचय न मिलने के कारण गुस्सा होकर जाने की बात सोच चुके हैं ?”

अबकी बार वह हँसी नहीं बरन् गम्भीर होकर पास के एक मोफ़े पर बैठकर अपने दोनों हाथों की कलाईयों को फर्माकर उस पर टोड़ी टिकाकर बोलने लगी है—

“इसके पहले कि मैं अपना परिचय दूँ—हो सका तो आप आज शाम की गाड़ी में चले जायेंगे, इस बात का विश्वास दें तो मैं अपना परिचय दूँगी—और फिर आपको तो परिचय देना ही होगा—” कहती हुई वह अनायास ही बहुत गम्भीर हो गयी है।

मुझे अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा है कि मैं क्या सुन रहा हूँ। मुझे लग रहा है कि मेरे दिमाग में हजारों चीटियाँ, वालों के—यारीक कदमों के साथ दौड़ रही हैं और अब मैं कभी भी ठीक तरह नहीं सोच सकूँगा। कोई अपने अनिधि में इस तरह कहता है ? मैं ज़रूर ही गलत सुन रहा हूँ। रंजना मरीखी हँसमुख औरत, एक अपरिचित व्यक्ति से जो थोड़ी देर पहले कहीं से आया है (कम से कम उसके लिए ज़रूर ही) और थोड़ी देर बाद अपने आप ही चला जानेवाला है—बल्कि मच तो यह है कि वह जा ही चुका था, बस कदम उठ जाते तो अब तक तो जाने वह किस पार्क में सोना रहता, इस रंजना को यह सब कहना ही न पड़ता। किन्तु प्रश्न इस समय यह नहीं है कि इमने ऐसा क्यों कहा मुझसे, बल्कि यह ऐसा अपनी ओर से इस तरह कहकर मेरी दृष्टि में क्यों छोटा बन रही है ? क्या यह न समझेगी कि इसके इस वाक्य से पूरा चरित्र, जो कि मुझे तो कम से कम रहस्यमय—जाने कैसा लग रहा है, कोई गलत भी तो सोच सकता है !

“आपने कुछ कहा नहीं मेरी बात के जवाब में—शायद आप बहुत थक गये हैं।” रंजना कितनी बनावट की हँसी के साथ यह बात कह रही है इसे मैं तक समझ रहा हूँ।

“देखिए, मेरी बात आपको बुरी लगी है और अपनी इस बात का प्रभाव नहीं जानती थी सो भी नहीं—किन्तु”

मैं यह समझ रहा हूँ कि बोलकर इस समय ठीक नहीं होगा, क्योंकि जिस सीमा तक मैं इस नारी को देख पा रहा था अभी थोड़ी ही देर पहले, यह नारी उससे कहीं ज्यादा गहरी है।

“ठीक है, आप उठकर नहा लीजिए, मगर मुझे मालूम नहीं था कि पुरी के दोस्त के रूप में आप आयेंगे !!”

मैं बिल्कुल सच कहना चाहूँगा कि यह वाक्य मेरे सर पर से निकल गया है, कुछ भी समझ में नहीं आया। मगर मैं इतना अवश्य समझ सका हूँ कि मुझे वाक्य के आखिरी अंश का विरोध करना है और मैं कर रहा हूँ।

“क्या ? मैं समझा नहीं !!”

“यह मैं पहली बार तुम्हारे मुँह से नहीं सुन रही हूँ।”

रंजना यह कहकर उठी, और आसमान में शायद बादलों के ग्राउन्डग्लास काले हो गये थे इसलिए कमरे में अँधेरा घुप हुआ जा रहा था। वह खिड़कियों के पल्ले खोलने में लग गयी।

खुली खिड़की से आते हुए भीगे प्रकाश में रंजना को खड़ा देखना चाह रहा हूँ जो मेरे इस सहज कथन पर अपना निचला ओंठ सफ़ेद दाँतों में दबाकर मन का सहज अविश्वास कितने दर्प के साथ व्यक्त कर रही है। वचन के इतिहास में देखी मेरी ‘क्वीन ऑफ़ स्काट्स’, नूरजहाँ, रजिया आदि के चेहरों में लेकर गलियों में तरकारी बेचनेवालियों तक के चेहरे मेरी आँखों के सामने इस तेज़ी से गुज़र-गुज़रकर कह रहे थे—“कहीं हम में से तो कोई नहीं है ?—सोचो, शायद मैं ही होऊँ, कल की वह—आज की यह रंजना !!—

“तुम पहले से दुबले हो गये, ऐसा क्यों ?”

गुसलखाने के परदे के पार नौकर धुले हुए कपड़े, तौलिया और शायद साबुन वगैरह रख चुका है। रंजना यह वाक्य कहकर मेरी आँखों की ओर देखने लगी है। मुझे अपनी बड़ी हुई दाढ़ी के बाल बहुत बुरे लग रहे हैं। मेरी हथेली उन बालों पर धीरे-धीरे फिर रही है जिससे मुझे सोचने में सहायता मिल सकती है। मगर जो बात मैं अंतिम रूप से सोच चुका हूँ, वह है कि मुझे अब नहाना है और टब के ठंडे पानी में खूब सारा उन्मुक्त सोच डालना होगा। उस समय यह औरत मेरे सामने न होगी और न होंगे इसके ये मेकलिन किये हुए सफ़ेद सीप की तरह चमकते हुए दाँत, जो कि मुझे हाथीदाँत के मोह के बंधन में बाँध लेना चाहते हैं। यह चमेली के फूलों की तरह खूबसूरत टॉप्स भी न होंगे, जो काले घुँघराले वालों में और भी सफ़ेद हो जाते हैं, नक्षत्रों की तरह।

मैं अब उठकर कैसे अपराधी की भाँति चलकर इस वाथ-रूम में आया हूँ। मैंने अपनी घड़ी वाथ-रूम की खिड़की में रख दी है, जो आज जाने किस मनहूस की तरह चल रही है।

पानी की धारा सफ़ेद चीनी के इस टब में गिर-गिरकर पिघली हुई चीनी की तरह लग रही है। मैं कल्पना कर रहा हूँ कि अभी थोड़ी ही देर में साबुन के झाग से भरे इस टब में रहूँगा और मेरे सिर पर शॉवर की टंडी बूँदें होंगी और मेरा पूरा बदन जो कि रंग की चिपचिपाहट से भर गया है—जिसके कारण मुझे अपने आप से घृणा तो नहीं

फिर भी कुछ अच्छा नहीं लग रहा है—वर्षा-धुले चीड़-सा चिकना निकल आयगा। बाथ-रूम की खूंटियों पर भट्टी के धुले हुए कपड़ों को देखकर एक बार फिर मेरा दिमाग वैसे ही तेजी से सोच जाना चाहता है जैसे कि प्रदर्शनियों में जो आतिशवाजी के लिए चकरियाँ चलायी जाती हैं—कैसी रंग-बिरंगी चलती हुई घूमने लगती है। मैं यह मानकर चला हूँ कि यह जो शेविंग सेट और ब्लेड है, सब के सब इसके पति के है।

मैं कितनी तेजी के साथ अपनी डाढ़ी पर एक तरफ साबुन लगा चुका हूँ। मेरा माहम नहीं हो पा रहा है कि इस सामने के खूबसूरत शीशे में झाँककर अपनी यह शकल देखूँ, जो कि मनहम लग रही है। ठीक इसी शीशे में यह औरत अपना रूप देखनी होगी। वह रूप जो पूरे भवन को मोह सकता है, पागल कर सकता है। उसके वालों की वे धुली हुई नील लहरें, दर्पण की इस नीली झील को पूरा भर लेती होगी। कहाँ तो इस शीशे में वर्षा-श्री की तरह इस नारी के लहर कुन्तलों का रंगमंडल और कहाँ इस समय शीशे में मिलिटरी टॉमीज़ की तरह कटे-छंटे वाल और साबुन से भरे मुँह को लेकर मैं हँसना चाह रहा हूँ ! रेजर पर साबुन, बाल और रँग तीनों एक साथ देखकर मैं खूब प्रसन्न हूँ कि नहीं, अब थोड़ी देर की बात और है, तब मैं अपने गालों पर हाथ फेरूँगा और जब उन्हें चिकना पाऊँगा तो मुझे गहरी प्रसन्नता होगी, और जाने क्यों मैं जब प्रसन्न होता हूँ तो मेरी आँखें छोटी हो जाती हैं जैसे कोई पुतलियों पर फूँक मार रहा हो और मैं उन्हें मिचमिचाने लगता हूँ। मेरी पुतलियाँ प्रसन्नता में उन्मी तरह गोल-गोल घूमती हैं जिम प्रकार माता के स्तनों को चूमने समय वच्चे अपनी पुतलियाँ घुमाते हैं और खुश होते हैं।

मगर यह मुझे क्या सचमुच कोई परिचित ममज़ रही है या फिर मुझे ही भ्रम हो रहा है ? मुझे नेम प्लेट वाले अपने भ्रम का एक बार फिर स्मरण हो रहा है कि किस प्रकार मैंने आँखें बंद करके इसे अपने दोस्त की बीबी मान लिया था। मैं दाढ़ी बना चुका हूँ, बस कलम ज़रा साफ़ तरीके पर काटनी बाक़ी है, मगर मेरा मन हमेशा की भाँति फिर कड़वा हो रहा है कि अपनी इन्ही कुछ गंदी आदतों के कारण, प्रेम या रोमांस नाम की गम्भीर बातों में कभी सफल नहीं हो सका। मुझे फिर वह अपने आफिस की स्टेनो याद आ रही है जिसके साथ मैं कितने गहरे तरीके पर प्रेम में था, जिसे मेरी कुछ छोटी-छोटी बातें नापसन्द थी। उनमें से एक तो इतनी हल्की और और छोटी बात थी कि प्रेम जैसी गम्भीर बात मात्र उस बात को लेकर टूट सकती है, इसकी कल्पना करना भी मूर्खता है—जैसे खाना खाते वक्त मुँह से 'चप' 'चप' की आवाज़ का होना; वह उसे नापसंद थी और वह कई बार 'अनसिवीलाइज़्ड' कहकर तौलिये से अपना मुँह छुलाकर खड़ी हो जाती थी। किसी के बारे में मान कर चलना भी एक वैसी ही गंदी आदत थी, जो कि मुझमें अभी भी बाक़ी है, जिसके कारण अभी तक बिज़नेस में धोखा खाया है, मगर वह बात दूसरी है। किन्तु मुझे यह कभी वर्दाश्त नहीं कि कोई स्त्री, फिर सुन्दर; मेरे बारे में छोटी-छोटी धारणाएँ बनाकर मुँह बिचकाना शुरू कर दे।

तौलिये से अपना मुँह पोंछकर अपने चिकने गालों पर हाथ फेरकर खुद ही खुश हो रहा हूँ। मगर यह औरत कहीं मुझे बेवकूफ तो नहीं बना रही है ? मैं इस दरवाजे की चीर में से झाँककर देखना चाहने लगा हूँ कि वह क्या कर रही है ?

पतली-सी चीर में से उसका आधा चेहरा, जिसके आगे निकली हुई तीखी गोरी नाक, दो बारीक तराशे हुए ओंठ, गाल, चिकनी ठोड़ी—उसके बाद तो कुछ भी नहीं दिखायी दे रहा है—वस, उसके बाद तो टेबिल पर राइटिंग पैड पर कुछ लिखते हुए एक मोती के रंगवाला हाथ तेजी से चलता हुआ दिखायी दे रहा है।

मैं जान रहा हूँ कि आँखों में माबुन घुस जाने के कारण हल्की जलन और कड़वाहट भर गयी है। मगर यह है कौन ? मुझे इस अपरिचित का अतिथि कभी नहीं बनना चाहिए था। भला यह क्या सोचती होगी कि यह व्यक्ति भी अजीब तरीके से सीधा है—

“मैंने कहा, ठहर जाओ, और ठहर गया—मैंने कहा, नहा लो, और नहा रहा है।”

मुझे अब निश्चय हो जाना चाहिए कि वह मुझे ख़ासा बेवकूफ बना रही है। मगर वह ऐसा क्यों कर सकती है ? इसका कारण मुझे नहीं मिल पा रहा है और मैं तेजी के साथ अपना सिर मल रहा हूँ। ओह ! पानी कितना ठंडा लग रहा है। मुझे अपनी जलती हुई इन आँखों में यह औरत अब बहुत मुन्दर लग रही है। मेरा मन कर रहा है कि जल्द से जल्द उसके सामने पहुँचकर कहूँ मगर क्या कहूँगा ? बिना कुछ कहे भी तो रह सकता हूँ। और मैं अब माफ पानी में नहाकर बिल्कुल तय कर चुका हूँ कि कुछ नहीं कहूँगा, उसे जो कहना हो कहे। चाहे जिम व्यक्ति के भी ये कपड़े हों किन्तु मुझ पर एक-दम फ़िट है। मगर खट्टर का कुर्ता और यह मुन्दर स्त्री ? दो समानान्तर रेखाएँ !! तब क्या इसका पनि राजनीति में संबंधित है ?

मैं जिम समय वाथ-रूम से बाहर आया वह खिड़की के पाम परदा पकड़े बाहर बरसती हुई बूँदों को देख रही थी। पानी भीगी हवा में उसके कंधे में झूलता हुआ रेशमी साड़ी का पल्ला, जो कि जग्रे का था और देखनेवाला कह सकता था कि यह मैंसूरी साड़ी है, हिल रहा था। उस ड्राइंग रूम के सूनपन को मेरी चट-चट की आवाज़ करती चप्पलें भर रही थीं, जो कि मेरे कानों को खुद बुरी लग रही थीं।

“तो तुम आ गये—ओह, फ़ॉम बीस्ट टू मैं।”—यह कहते हुए वह कितने जोरों से हँस रही है।

प्रत्युत्तर में मैं कितने सलीके की मुस्कान देना चाह रहा हूँ जिससे उसे पता लग जाये कि मैं अब पहले से बदल चुका हूँ। मुझे उसका ‘बीस्ट’ कहना बिल्कुल नहीं सुहाया। वह इस समय उस राइटिंग पैड को वापस माग़ीन की उस लम्बी आलमारी में रख रही है जिस पर पानी का बहुत बड़ा शीशे का जग़ रखा हुआ है, जिसमें रंग-बिरंगी छोटी-छोटी मछलियाँ तैर रही हैं। मछलियों के गोल-गोल छोटे-छोटे मुँह, पानी की पारे जैसी चमकती हुई गोलियाँ ऊपर पानी की सतह पर फँक रहे हैं।

“में देख रही हूँ कि नहाने के बाद तुम्हारी आँखें कितनी साफ़ हो गयी हैं। और तो और, उनमें के प्रश्न भी एकदम धुले-से लग रहे हैं, कोई भी उन्हें पढ़ सकता है”—

और वह यह कहती हुई आलमारी में लगे शीशे के सामने खड़ी होकर कितने मोहक ढंग से हँस रही है।

मुझे उत्तर देना होगा, मगर मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मुझे भूख बहुत ही ज्यादा लग रही है। सामने का परदा ऊँचा करके बैरा ने सलाम किया।

“चलो, आज फिर बरसों के बाद हम लोग साथ-साथ खाना खायेंगे।”

“क्या मतलब ?”—और मैं उसके लाल स्लीपरो में चमकती हुई गोरी चिकनी एड़ियों को देखते हुए चल रहा हूँ। दिमाग़ पर फिर जोर देना चाहता हूँ कि क्या यह सच है कि मैं रंजना नाम की किसी स्त्री से पहले कभी मिला हूँ ? पर डाइनिंग टेबल की उजली शीट पर रखी हुई उजली तश्तूरियों में खूबबूदार चीजों की कल्पना करने लगा हूँ—क्योंकि मैं भूखा हूँ।

“क्या मोच रहे हो ?—अच्छा यह बताओ अब पहले जैसी मैं नहीं लगती क्या ?”

और वह यह कहती हुई डाइनिंग टेबल की उस कुर्मी पर बैठ गयी जिधर से शीशे की हरी रोशनी आ रही है।

“रंजना जी ! आप अत्यंत मधुर स्वभाव की हैं।”—

“वस !!”—और इतने जोरों से हँस पड़ी है कि खिड़की के पास बाहर लगी हुई बेर पर जो गोरैया अभी आकर बैठी थी, वह घबराकर अपने छोटे-छोटे पंखों को फड़फड़ाती हुई उड़ गयी और बेर की वह पतली डाली धीरे-धीरे हिलने लगी है। जाने क्यों, मेरा मन इस नारी को होली के रंग में डुबो देने को कर रहा है।

“आज तो होली है रंजना जी !”—और मैं उसकी आँखों को पढ़ जाने के लिए कितना मर्क एवं तत्पर होकर उसकी ओर एकटक देख रहा हूँ।

“हाँ, है तो,”—और यह कहते उसने मेरी आँखों में अपनी आँखें डाल दी हैं, जैसे दो पानी मिल रहे हों। रंजना का यह प्रश्न ‘है तो’ कदाचित् मेरे पूरे मन को जान लेने की चेष्टा थी। मुझे अब क्या कह देना होगा वह सब कुछ जो मेरे मन में उसी भाँति ऋतुहीन घिर आया-सा लग रहा है जैसे मार्च का यह मानसून ? मैं देख रहा हूँ, हथेलियों के बीच मे उसकी गोरी चिकनी ठोड़ी कैसी लाल होती जा रही है !

बैरा प्लेट्स पर प्लेट्स लाता जा रहा है और टेबल पर थोड़ी ही देर में, ऐसा लगता है, बिल्कुल भी जगह बाकी न रहेगी।

“तुमने कही नहीं वह होली वाली बात जो तुम्हें परेशान कर रही है ?”—और रंजना ने यह कहते-कहते मेरी प्लेट में मछली का एक टुकड़ा शोरवे में सना रखा।

“कौन सी बात ?”—और यह कहते हुए मैंने मछली के टुकड़े को अपने चम्मच से काटा। मछली अंदर से गुलाबी सफ़ेद लग रही है।

“अकलंक ! मैं तुम्हें न जानती हूँ सो तो नहीं है ।”—रंजना ने रोटी का कौर बात खत्म करते हुए खाना शुरू कर दिया ।

“रंजना जी ! मेरा नाम अकलंक तो नहीं है ।”—और मैं उसकी आँखों में इस नये रहस्यमय सम्बोधन को जान पाने के लिए अपने उसी पुराने कौर को चवाता हुआ रंजना को देखने लगा—नहीं, घूरने लगा हूँ ।

“अकलंक ! मुझे खाना खा लेने दो, इतना न हँसाओ, वरना मछली का कोई काँटा पेट में उतर सकता है ।”—और वह ज़ोरों से हँस रही है ।

“देखिये रंजना जी ! ?”

“अकलंक ! मैंने अपनी बंगालिन माँ से चाहे और कुछ न सीखा हो किन्तु तीन बातें निश्चय ही सीखी हैं—एक तो गान, दूसरे हँसी और तीसरे मछली को खूब सम्हल कर खाना—समझे ?”

वह बोलती चली जा रही है और मेरा मिर ऊपर नहीं उठ पा रहा है । मछली के इस पीले हल्दी डले शोरवे में उसकी चमकती हुई आँखें मुझे दिखायो दे रही हैं—केसरिया झील में हलदिया नयन ! !

“देखो, इस समय मैं दो काम कर रही हूँ, खाना और हँसना—तुम कहोगे तो खाने के बाद मैं गाना भी सुना दूँगी, किन्तु इस समय मुझे बेवकूफ बनाने की चेष्टा छोड़कर कुछ तुम भी खाओ और मुझे भी खाने दो !”

“खाने के बाद तुम आराम करोगे ?”—रंजना सामने के सोफे पर बैठती हुई बोली । भोजनोपरांत की वेशभूषा में भी वह सुन्दर लगती है ।

“नहीं, ऐसी तो कोई जरूरत मुझे अभी तक नहीं लग रही है ।”—अपनी सिगरेट का धूँआँ छोड़ते हुए मैंने कहा ।

“नहीं, आवश्यकताएँ तो व्यक्ति के मन पर निर्भर होती हैं—यही देखो न, तुम्हारे आने के पहले तक तुम मेरी आवश्यकता की सीमा से पार हो गये थे कभी के, और शाम की गाड़ी से चले जाकर फिर मुझे मानना होगा कि तुम मेरी आवश्यकता के आकाश में नहीं हो; परन्तु इस समय, इस क्षण तो तुम सचमे ज़्यादा जरूरी हो । क्योंकि जानते हो अकलंक ! प्रत्येक क्षण का मत्त्व ही मत्त्व है, और पूरा जीवन इन छोटे-छोटे सम्पूर्ण खंड-सत्त्वों का यौगिक विस्तार—फैलाव—और क्या ? ?”—और कहते हुए वह दूसरे कमरे में चली गयी ।

बादलों में माँवलापन घिरना जा रहा है । आज खूब मारा पानी गिरकर रहेगा, यह कोई भी मोच सकता है । हवा के बहाव में लताएँ धुली हुई झूल रही हैं । यह रंजना का ड्राइंग रूम है, मगर रंजना का पति कौन है ? और वह मेरे आने के पहले ऐसा कहाँ चला गया जो अभी तक नहीं लौटा ? किन्तु यह मुझे मान लेना चाहिए कि वह या तो और कहीं रहता है या फिर कहीं बाहर गया है, तभी तो रंजना ने खाती बेला भी, पति के लिए रास्ता देख लिया जाये—का भी भाव प्रदर्शित नहीं किया ।

रंजना को सुररिगलिस्टिक या फिर इम्प्रैशनिस्टिक चित्र ही पसंद है । मैं जहाँ बैठा हूँ, ठीक सामने चित्र में एक बहुत बड़ा मिर बना है, जो एकदम कुरूप, काला-सा लग रहा है । मोटे-मोटे ओठ, चपटी-सी नाक, अपराधियों की-सी आँखें, मोटी काली भवें, छोटा सिर, घने घुँघराल भेड़ों की तरह बाल, चपटे आकार का सिर, ऊँचे भरे जबड़े—देखकर एकदम डर महसूस होने वाला यह चित्र जिसके नीचे अंग्रेजी में ‘ही-मैन’ लिखा हुआ है । मैं अब उठकर उस ‘ही-मैन’ को पास से देख लेना चाहता हूँ जो कि मुझ एकदम भेड़िये की तरह घूर रहा है । उसके गालों के पास जो ताँबे के रंग की रेखाएँ आँखों की ओर जाती हुई दिखायी पड़ रही हैं, वे उस चेहरे को और भी भयानक बना रही हैं । उसके मोटे ओठों में से आगे के दो गंदे दाँत पीले से दिखायी पड़ रहे हैं—जिनसे मुझे कच्चे गोشت की बदबू तक आती हुई-सी लग रही है । आँखों के पास जो कर्कों की झाड़ियों-सा कालापन दिखायी दे रहा है, मैं उसे हाथ फेरकर देखना चाह ही रहा हूँ कि मुझे रंजना की हँसी सुनायी पड़ रही है ।

“क्या देख रहे हो, अकलंक ?”

“कुछ नहीं, इस ‘ही-मैन’ वाले चित्र को।”—

“क्यों, कैसा है ?”—रंजना ने ताने से पूछा है यह।

“हाँ, एक भाव-विशेष का है, किन्तु चित्रकार के मन की सारी कुरूपता इसमें अभिव्यक्त हुई है।”—उस चित्र के मुँह पर अपनी सिगरेट का धूँआँ छोड़ते हुए मैंने जबाब दिया।

“जानते हो, जिस आर्टिस्ट से मैंने यह लिया था तो उसने क्या कहा था ?”

“हाँ, अवश्य ही कोई छोटी-सी बात को बड़े रहस्यमय ढंग से कहा होगा।”—और मैंने यह बात कहकर अनुभव किया कि मैंने खामा गहरा व्यंग, चित्र के आर्टिस्ट और इसके खरीददार दोनों पर किया है।

“व्यंग छोड़ो, और बात मुनो—वह कह रहा था कि नारी के द्वारा तिरस्कृत कर दिये जाने पर पुरुष के अंदर का पशु खूँख्वार हो जाता है; उसी भाव को इसमें चित्रित किया है और जानते हो, नारी आदर्श भले ही न हो पर नारी की भावना ही आदर्श है, कला है।”

और रंजना फिर हँसी।

मैं देख रहा हूँ उस चित्र को, जो कि गुराते हुए जंगली भैंसे की तरह मुँह से झाग डालता हुआ जैसे मेरी ओर बेतहाशा दौड़ता हुआ चला आ रहा है। वह उस दीवाल पर से अभी एक क्षण में कूदकर मेरी ओर झपट सकता है और साथ ही उसके पुरुष को तिरस्कृत करनेवाली इस नारी को किसी भी क्षण फाँसता के परो की तरह नोच फेंक सकता है—जिसे अपने आदर्श होने की चेतना है, प्रजा है, और इस प्रजा को हँसकर अभिव्यक्त कर देने का साहस भी जिसके पाम है, भले ही वह प्रजा मिथ्या क्यों न हो ! किन्तु ही ऐसे है जो मिथ्या की अभिव्यक्ति को भी अपना साहस मानते हैं।

“मेरे पति को यह चित्र विल्कुल भी पसंद नहीं है, अकलंक !”—

“देखिए, मैं अकलंक नहीं हूँ.”

और मैंने देखा कि वह इस वेशभूषा में मेरे सामने एकदम हिरन की तरह भुवन-मोहिनी बनी खड़ी हुई है। ताम्र-वर्ण का उसका कुर्ता एवं मल्लवार तथा झीनी-सी उसी रंग की ओढ़नी—और मेरा मन अनचाही बात के लिए लालायित होने लगा है।

“तुम कहते हो, तुम अकलंक नहीं हो, और मैं कहती हूँ कि तुम हो। मेरे विश्वास को हरा ले जाओगे ऐसा शक्ति-सम्पन्न तुम्हें कभी माना था, पर आज नहीं। मुझसे अब छिपाने से क्या फायदा—मैं कहती हूँ कि अकलंक ! मैं अब विवाहिता हूँ—मेरे पति फ्रॉज में कर्नल है, मैंने उस मराठे युवक से विवाह कर लिया है—जानते हो, अपने चारों ओर कंटीले तारों की बाड़ लगा ली है, घबराओ नहीं।”

अभी हम लोग सोफे पर बैठे ही है कि बैरा ने ड्रिक्स लाकर रख दिये। मैंने दो एक बार ही ड्रिक किया है पर आसानी के साथ कह सकता हूँ कि मैं ड्रिक नहीं करता।

“रंजना जी ! मुझे आदत नहीं है ड्रिंक की।”

रंजना ने फिर अपनी पुरानी हँसी हँस दी है, जिसमे मुझे चिढ़ हो गयी है।

“मे भी आदत नहीं डलवाना चाहती, किन्तु मे तो आज के तुम्हारे इस अनायाम आने के क्षण को उत्सव में परिणत करना चाह रही हूँ। केवल साथ दूँगी और साथ चाहूँगी, —लो”

और यह कहते हुए मारम की तरह पतले शीशे के पेग में रंजना ने ड्रिंक बढ़ाया।

रंजना के पतले ओठों से मदिरा उसके चमकते हुए दाँतों को छूती हुई गले के नीचे उतर रही होगी और मैं उसकी आँखों की ओर देख रहा हूँ जिनमें सेव की-सी लाली है। वे आँखें मेरे दाहिने हाथ की ओर रखी हुई ताँबे की मूर्ति को देख रही है। फ़ायर प्लेम की पीतल की अँगोठी की छड़ें इस समय चमक रही है। फ़ायर प्लेम के ऊपर रखी हुई ताँबे की वह ‘लैकून्सक्राइ’ की बड़ी-सी मूर्ति मेरे दिमाग पर छाती चली जा रही है।

“जानते हो अकलंक ! तुम्हारे जाने के बाद मैंने इस मूर्ति को खरीदा था।”

“रंजना जी ! मैं कुछ स्पष्ट कर देना चाहता हूँ . . .”—और मैंने पेग टेबल पर रख दिया।

“अकलंक ! क्या स्पष्ट करने को कहते हो ? देखो, तुम अपना विश्वास स्पष्ट क्यों करना चाहते हो ? इसीलिए न कि अपने लिए मैं तुम से तुम्हाग विश्वास, ऋण के रूप में ग्रहण कर लूँ और अपने विश्वास को थोथा या अनदेखा कर ले जाऊँ ? ऐसा आग्रह न भी करो तो समझौता सम्भव है। क्योंकि रंजना के लिए न तब्र न अब्र, समझौता मन को चुभनेवाला रहा हो, सो नहीं; और अब्र तो कुछ भी नहीं। हम चाहे तो अपना-अपना विश्वास समानान्तर भी चला सकते हैं। किसी का विश्वास किसी में समाहित न होगा, इसका जिम्मा कहाँ तो मैं ले सकती हूँ। वह देखो, मूर्तिवाले दार्शनिक की अपने पुत्रों के साथ कराह सुन रहे हो जो कि उस ताम्र-मूर्ति से से उठ रही है ? कराह कितनी स्पष्ट है, पर मौन !! ओह ! कितनी बेदना, नरक की मशाले जैसे अनगिनत, अगगिनत जल रही हों; परन्तु उसकी आँच तुम और हम तक नहीं आ पा रही है, जल रहा है तो बेचारा वह दार्शनिक, और वे उसके दोनों वच्चे !! वचाओ अकलंक ! माँप की वे विपैली भुजाएँ उन सबको अपने केंचुल में चूर-चूर कर देंगी।”

“क्या कहूँ रंजना जी !”

मैं बहुत धवराकर बोल रहा हूँ। मेरी पेशानी पर ओम की बूँदों की तरह पसीना ज़रूर आ गया होगा, जिसे मैं कायरता के कारण पोंछना भी पसंद नहीं कर रहा हूँ। क्योंकि मैं कायर हूँ, तभी तो समानान्तर पर भी समझौता करने को अंदर से उत्सुक हूँ।

“तुम नहीं सुन पा रहे हो उस मूर्ति के दार्शनिक की चीखें; ओह, कितनी

‘एगॉनी’ है ज़िंदगी में अकलंक ! तुम गये मेरे आकाशों के पार और मैं, मैं कुछ नहीं . . . ”

“रंजना ! क्या कहना चाहती हो, सच कहता हूँ मैं अकलंक नहीं हूँ, मैं इस मूर्ति की उपमा से सचमुच डर गया हूँ ।”

“तुम इसे उपमा कहकर डर सकते हो, मगर मेरे निकट यह सत्य बनकर मुझे प्रतिक्षण जला रही है । मैं जल रही हूँ अकलंक !”

और रंजना ने यह कहते-कहते पेंग समाप्त किया । वह अन्य पेंग भरते हुए बोली—
“तुम अगर अकलंक नहीं हो तो फिर मैं तुम्हें अकलंक क्यों मान रही हूँ ? मुझे सब धोखा दे सकते हैं मगर मेरी आँखें कभी भी नहीं । तुम्हारा यह दाहिना पैर क्यों लँगड़ाता है, बोलो ? कह दो, कहीं गिर पड़ा था ।”

रंजना ने मेरी ओर पीड़ित नेत्रों से देखते हुए कहा । और मैंने देखा कि मेरा दाहिना पैर, जो कि सचमुच लँगड़ाता है, मुझे जाने किन-किन मृत्कियों में डालेगा । कभी बचपन में कम्बल्ट उस इंग्लिश मास्टर ने कितने जोरो से कूल्हे पर लान मारी थी कि जन्म भर के लिए मुझे लँगड़ा कर दिया । इसके कारण मैं मिलिट्री में जाना चाहते हुए भी नहीं जा सका और आज हौजरी में काम करना पड़ रहा है । तब, क्या वह अकलंक नाम का व्यक्ति भी मेरी ही भाँति लँगड़ाकर चलता था ?

“अकलंक ! मैं ऐसी कोई बात नहीं कहनेवाली हूँ कि तुम्हें किसी मोच में डाल दूँ । तुम घबराओ नहीं, वह वक़्त बीत गया—आँधी बीत गयी ; अब व्यक्तित्व की खिड़कियाँ खोल दो, साफ़ और तेज़ हवा के आने की वेला है ।”

और यह कहते-कहते रंजना गम्भीर हो उठी । मेरा दूसरा पेंग जाने कब रंजना ने भरा और वह मेरे गले के नीचे भी उतर गया, मुझे नहीं मालूम । मगर जो मुझे इस समय मालूम है वह यह है कि रंजना सुन्दर है और मैं इसके बहुत निकट बैठा हुआ हूँ । खिड़की के बाहर मार्च के मानसून गहरे हो-होकर बरस पड़ने पर तुले हुए हैं । बरसाती हवा की तरह ठंडी हवा, बाहर बहती हुई खिड़कियों के पन्नों को छूती हुई, रंजना के ड्राइंग रूम के भारी रेशमी परदों को हिलाती हुई पूरे हॉल को ठंडा कर रही है । बंगले के अहाते में लगे हुए यूकेलिप्टिस और अशोकों की लम्बी-लम्बी पत्तियाँ वायु में काँप-काँपकर आवाज़ कर रही हैं । कभी किसी मोटर का हॉर्न दोपहरी के मूनेपन को भरता हुआ तेज़ी से चला जाता है । वह ताँगेवाला मुझे यहाँ छोड़कर अब जाने कहाँ पर होगा—या तो घोड़े को पानी पिलाता हुआ बीड़ियाँ धौंक रहा होगा, या फिर अपनी बहुत बोलनेवाली गंदी आदत से किसी सवारी को परेशान करता हुआ मड़क पर ताँगा ले जा रहा होगा । मेरी समझ में खाक भी नहीं आ रहा है कि मुझमें उस अकलंक नामक व्यक्ति के साथ ऐसी कहाँ और कौनसी समानता है जो यह नारी भ्रम पैदा कर देना चाह रही है ।

“जानते हो अकलंक, लाहौर मैंने कब छोड़ा ?”—रंजना ने पूछा ।

जिस लाहौर को मैंने कभी देखा नहीं और जहाँ कि इस रंजना से मेरा दो घंटे के

पूर्व कोई परिचय नहीं, मैं क्या जान सकता हूँ कि इसने क्यों और कब लाहौर छोड़ा। हो सकता है, अकलंक भी एक कारण उम छोड़ने में रहा हो। परन्तु मैं तो वह नहीं हूँ। किन्तु यह मुझसे अपनी बातों के द्वारा स्वयं को क्यों रहस्यमय बनाये रखना चाहती है ?

“रंजना जी ! यह आपकी बड़ी ज्यादती है कि मुझे”

“सुनो अकलंक ! ज्यादती की कभी कोई बात नहीं हुआ करती है। मैं जानती हूँ कि तुमने यहाँ आने के पूर्व काफ़ी चेष्टा की है कि मैं तुम्हें पहचान न पाऊँ। जिन मिलिट्री के टािमियों से नफ़रत रही है, उन्हीं के से बाल कटवाकर अपने बालों के घुँघरालेपन के साथ जो ज्यादती तुमने की है वह तुम नहीं जानते। तुम्हें यह ऐक्ट्रों की तरह मूँछों का शौक कब से सवार हुआ है ? अकलंक क्या राजनीति छोड़ दी ? जेल की यातना ने तुम्हें निराश कर दिया, ढा दिया ? क्या हुए तुम्हारे बे नेतागिरी के स्वप्न !! और कदाचित् यहाँ के पहले तुम्हें अपना पैर लँगडानेवाली घटना का स्मरण नहीं रहा, नहीं तो इसकी भी कुछ दबा ज़रूर करते; क्यों है न ?”

और यह कहते-कहते रंजना ने अपनी आँखें बंद कर ली जिनमें हल्की बूँदें बैसी ही आ गयी है जैसे शीशे के ग्लास की दीवारों पर पानी की दो-एक बूँदें।

तब क्या मुझे मान लेना चाहिए कि इस रजना नाम की महिला से आज पहली बार नहीं मिल रहा हूँ ? बल्कि लाहौर में आज के इस व्यावहारिक मिलन के पहले व्यक्तिगत रूप से हम बहुत निकट में भी मिले हैं—कितनी मुखतापूर्ण बात होगी यह दूसरी बात मान लेना, मगर.

“मैं जानती हूँ अकलंक, तुमने लाहौर क्यों छोड़ा, मगर, तुम्हें इस तरह नहीं छोड़ना चाहिए था।”

मैं देख रहा हूँ, रजना की आँखों में बहुत सी पारे की-सी चमक ही चमक भर गयी है।

“तुम्हें याद है, हम लोग एक दिन राबी पर घूमने गये थे नौका लेकर, और राबी की तेज़ धार में हाथ डालते हुए, गोल-गोल पानी के बन्धन बनाते हुए, मैंने क्या कहा था अकलंक—कि कोई कुछ भी क्यों न कहे, मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती—हाँ, नहीं छोड़ सकती—मगर तुम उसके बाद जाने कहाँ चले गये, पिता जी तुम्हारी तलाश में घूमते ही रहे।”

“क्यों रंजना ! तुम्हारे पिता जी मेरी तलाश में, मेरा मतलब है कि अकलंक की तलाश में क्यों घूमते रहे ?”

मुझे प्रसन्नता है कि ड़िक्स के बाद भी मेरी चेतना बनी हुई है कि रंजना जिसे “तुम, तुम्हारी” की अभिव्यक्ति दे रही है वह मैं नहीं हूँ, बल्कि वह अकलंक है। और मैं इस पृथक्त्व को समझकर उचित समय पर प्रकट भी कर पा रहा हूँ।

“तुम्हारी तलाश में पिता जी बंदूक ताने हुए घूमते रहे कि तुम मिल जाओ तो गोली मार दें।”

और यह कहते-कहते रंजना ने अपना पेंग समाप्त किया। उसकी आँखें वैसी ही चमक रही हैं जैसे किसी ने उन आँखों में तेज़ रोशनी वाली टार्च का प्रकाश डाला हो। उसकी यह ताम्र-वर्णी वेशभूषा और गोरा रंग किसी को भी पागल करने के लिए पर्याप्त है। जाने कितनी आधी साँसों उसके उभरे हुए वक्षस्थल में भर गयी है और वह चीख पड़ी है।

“बैरा, बैरा . . .”

“हुज़ूर . . .”

परदे के पार में तेज़ मगर तमीज़ के साथ दौड़नेवाले क़दमों की आहट तथा सलाम करके एड़ियों पर ऐंठ जानेवाले इस आदमीनुमा बैरा को देखकर मैं जाने क्यों ऐसा मान रहा हूँ कि यह आदमी अपनी इस मालकिन को ख़ूब पहचानता है कि कब क्या करना है। यह बैरा इस समय इस तरह खड़ा हुआ है कि बात मालकिन के मुँह से निकले नहीं और वह जल्द-मे-जल्द पूरा कर अपनी अनिवार्यता मिट्ट कर दे। नौकरी बिना अनिवार्यता मिट्ट किये नहीं टिकती। और शायद यही अनिवार्यता सरकारी दफ़्तरों में लोगों से जाने क्या-क्या करवाती है।

“खड़े क्या हो, दरवाज़े खिड़कियाँ मच खोल दो। देखते नहीं, कितनी गर्मी हो रही है?”

कहते हुए रंजना ने अपनी गर्दन सोफ़े की पीठ पर टिका दी। उसकी पेशानी पर हल्की ओम की भाँति पसीने की बूँदें चमक रही हैं।

“हुज़ूर! पानी तिरछा गिर रहा है, कमरे में वाग़िश घुस सकती है।”

“चुप रहो, मच खिड़कियाँ खोल दो।”

और रंजना मेरे सामने के सोफ़े पर विचारों की अस्त-व्यस्तता में खोयी हुई बैठी है। धीरे-धीरे कमरे में वरमानी हवा का-मा ठंडापन भरने लगा है। हवा में उसके घुँघराले वालों की लटें उड़-उड़कर उसके चिकने गालों पर गिर रही हैं। उसकी दोनों गोरी साँप जैसी चिकनी बाँहें सोफ़े के दोनों और झूल रही हैं। मेरे मन में मोह की वर्षा तो नहीं किन्तु आकर्षण की बदली में हल्की परतें ज़रूर शुरू हो गयी हैं और मैं चाह रहा हूँ कि रंजना बोले।

बाहर तिरछी वर्षा हो रही है और लॉन, बेलें, पेड़, फूल, सड़क, बिजली के तार, मकान सब नहा रहे हैं।

“रंजना जी!”—मैंने उसे जगा देना उचित समझा है।

“क्या है अकलंक! तुम समझते हो कि मैं सो गयी हूँ, है न?”—उसने उसी तरह आँखें बंद किये हुए कहा।

“नहीं तो . . .”—मुझे लगा कि रंजना मुझे बच्चा समझकर तर्क और तथ्य की आड़ में ब्यंग द्वारा अपनी उच्चता प्रमाणित कर देना चाहती है; और मैं ‘नहीं तो’ जैसे छोटे

उत्तर को देकर मिट्ट कर देना चाहता हूँ कि तुम कैसी भी बात क्यों न करो, पहली न बन सकोगी ।

“अकलंक ! आज की घटना के साथ तुम उस माल रोड की शाम का विश्लेषण कर सकते हो ?”

यह कहते हुए रंजना ने अपनी तेज लाल आँखें मेरी आँखों में वैसा ही डाल दीं जैसे पानी भरे टम्बलर में लाल रंग की पोटेशियम परमैंगनेट, जो पानी में पहले तो धीमे-धीमे घुलती है और फिर पूरे पानी को सम्पूर्ण रूप से लाल रंग का बना देती है ।

यह रंजना आज के इस मिलन को घटना कहती है । क्यों ? घटनाओं के लम्बे-लम्बे कदम भले ही न होते हों, वे चींटी के-से वारीक कदमोंवाली भी क्यों न हों, या फिर टिड्डियों के-से छोटे पंखोंवाली ही क्यों न हों, पूरी धरती, पूरे आकाश को ढाँकने की अपरिमित शक्ति उनमें होती है । यह कल्पना करके मेरा मन काँप रहा है कि पूरी धरती पर छोटी-छोटी चींटियाँ ही चींटियाँ हैं, या पूरे आकाश में केवल टिड्डियाँ ही टिड्डियाँ ! ऐसे में क्या फसले उग सकती हैं ? नदियों का क्या हो ? सूरज के प्रकाश का भी ! अगर जीवन में घटना ही घटना हो तो क्या मनुष्य अपना जीना जी सकता है ? जबकि एक घटना सम्पूर्ण जीवन को 'ताशेर घर' की तरह उजाड़ सकती है तो फिर यह रंजना तो माल रोड की जाने कोन सी घटना और आज के मेरे इस आगमन को लेकर विश्लेषण करने के लिए कहती है । मुझे बहुत ज्यादा और ऊँचा हँसकर यह स्पष्ट जना देना चाहिए कि रंजना, तुम कितना ही प्रयास जाने या अनजाने में क्यों न कर रही हो—मुझे अकलंक बनाने का प्रयास व्यर्थ है । और जब व्यर्थ है, तो तुम्हारे जीवन की कोई भी घटना, जिसे मैंने नहीं देखा है, कैसे उसके आधार पर आज की बात सगत या असगत रूप में लूँ ?

साधारण रूप से चलते हुए जीवन में घटनाएँ आकर सहस्रबाहु की तरह बाँध या रुकावट पैदा कर देती हैं, और हम मान लिया करते हैं कि यह यदि पूर्ण सत्य नहीं तो सत्य के बहुत निकट है । इसके होने या न होने को हम महत्त्वपूर्ण मानकर जीवन में परिवर्तन खड़े करते हैं । हम, तब नहीं समझ पाते कि इस घटना का वास्तविक रूप क्या है और हमें क्या करना था । क्योंकि प्रश्न लगाकर किसी घटना की यथार्थता जानना नहीं चाहते, वस्तुतः हम डरते हैं कि प्रश्न उसे या तो नग्न रूप में हमारे सामने खड़ा कर देगा, या फिर हम हमेशा के लिए उस बात, व्यक्ति या घटना से हाथ धो बैठेंगे । चिन्तन करनेवाला वर्ग इसे पलायन की मंजा देता है । जब कि वह स्वयं चिन्तना जैसे रेशमी परदे की आड़ में पलायनवाले कल्लू की ज़िदगी जीता है । अपने-अपने तरीके होते हैं पलायन करने के । कोई वगिधियों और मोटरों पर बैठकर ही पलायन कर पाता है, तो कोई इसकी भी अपेक्षा नहीं रखता । किन्तु होता सब पलायन ही है । किसी के लिए वह निर्वायता है और कोई उसे माध्यमों के आवरणों में संजोकर शक्ति बना लेता है । इस शहर की सड़क पर अभी मैं थोड़ी ही देर पहले रंग जैसी खूबसूरत चीज़ से पलायन करना चाह रहा था । यह बात दूसरी

थी कि मैं नहीं कर पाया। चबन्नी के धुले हुए कपड़ों से मोह इस सीमा तक होता है कि अगर हम कवि या लेखक हों तो सिवाय रंगों के कोई दूसरी बात ही नहीं करेंगे, किन्तु धुले हुए कपड़ों पर फिर भी आँच नहीं आने देंगे—यही तो हम है। हम सब साँप की ही भाँति तो हैं चिकने, मुलायम, चितकबरे, काले पीले!! किन्तु ज्यों ही हमारी वस्तु-स्थिति की केंचुल पर आँच आती है, हमारे व्यक्तित्व का फन, समस्त कड़वाहट लिये, फुँफकारने लगता है। कुंडली मारकर बैठे हुए साँप!! सभी ऐसे व्यक्ति! ऐसा ही है पूरा समाज!! काले, भूरे, चितकबरे साँप—व्यक्ति और समाज के वस्त्रों में छिपे बैठे हैं।

मुझे लग रहा है कि मेरा वह दावा जो थोड़ी देर पूर्व किया गया था कि मैं ड्रिक्स के बाद में भी होश में हूँ, व्यर्थ है, प्रवचना है। मेरे सामने बैठी हुई यह नारी कुछ समय पूर्व की अपरिचिता अपने आकाशों में किस तेज़ी से घसीट लेना चाह रही है। क्या अपने स्वार्थ के लिए—नहीं, अपने कड़वे यथार्थ में पलायन करने के लिए। क्या सच, क्या झूठ माध्यम का आवरण, चाहे कुरूप हो या सुन्दर, वह मुखोश ही है, सत्य नहीं। आवरण, निष्ठा की कमजोरी के कारण अपेक्षित हुआ करता है।

मैं देख रहा हूँ इसके उरोज, जो कि उसके स्मार्ट सिले हुए कुर्ते में से रेशमी ऊँचाइयों में कितने सुन्दर लग रहे हैं। शरीर को निस्सार कहनेवाले यदि इस तरह बंधे हुए उरोज देख पाते तो मेरा निश्चय है कि वे . . . मगर मैं महमूम करता हूँ कि मुझे तो उन लोगों से कुछ नहीं कहना है। यह रंजना अवश्य मुझे पहले कही मिली है और केवल मिली ही नहीं है बल्कि इसने मुझे अपने व्यक्तित्व का बहुत कुछ दे डालना भी चाहा है, किन्तु मेरी स्मृति की शकुन्तला, समय के दुर्वासा की शापग्रस्ता है।

“अकलंक! ऐसा क्या सोच रहे हो? माल रोड की उस शाम में बहुत कुछ रहा हो किन्तु ऐसा तो नहीं कि तुम उसी में खो जाओ। देखनी हूँ तुम”

“रंजना! मेरे लिए पहेलियाँ असम्भव हैं।”—मैं बहुत उत्तेजित हो गया हूँ। मुझे रंजना की आँखों में मार्च की फगुआ शाम अपनी ममस्त गुलाबी लिये हुए घिरती दिखायी दे रही है।

“अकलंक! किस पहेली के बारे में कहते हो? क्या सम्भव और क्या असम्भव, इसका निर्णय किमी के पाम नहीं हुआ करता, और न ही हम इस प्रकार की घोषणाओं से पहचान सकते हैं इन्हें। ये कलैन्डर की तारीखें शायद हम लोगों से अधिक व्यवस्थित हैं, जो यह तो जानती हैं कि कल कौन सी तारीख आने की है। क्या तुम जानते हो कल इस समय कहाँ होंगे, मैं कल इस समय तक रहूँगी भी या नहीं, या और कुछ हम अपने बारे में निश्चित रूप से जानते हैं?”

और मैं गोरे हाथों में लाल चूड़ियाँ गिन रहा हूँ . . . एक, दो, तीन . . . जो दोनों ओर से एक एक सोने की चूड़ी से घिरी हुई हैं। ? *सिस्टम और स्तन की सुगंध*

मुझे कितनी नफ़रत रही है उन लोगों से जो जीवन को एक बहुत बड़ा भारी बोझ

बनाकर सिर पर लिये परेशान घूमते हैं—ऋतुओं में मार संजीदगी ही संजीदगी ! बोलेंगे तो दर्शन ! ! आदमियों की भाषा जैसे कभी सीखी ही नहीं । जब कभी उनसे मिलिए तो यही कहते पाइयेगा कि जो क्षण वे अभी तक जी चुके हैं... वे घटनाओं से भरे हुए थे । जो वह जी रहे हैं—वह हाहाकार की प्रतिध्वनि से भरा हुआ है और आनेवाला तूफानों की तरह गुराहट से भरा उनकी ओर जंगली जानवर की तरह घूर रहा है । जैसे संसार का हर प्राणी उनके विरुद्ध विद्रोह करता हुआ घूम रहा है । चाहे दूसरा व्यक्ति बेचारा राशन की दूकान से ही क्यों न चला आ रहा हो या फिर अपनी बीबी की अचानक बीमारी के कारण पैसों की परेशानी में ही क्यों न उलझा हो !

“कल के बारे में तो नहीं जानता रंजना ! और जानकर भी क्या लूंगा यदि नियतिवाद ठीक भी हो तो, किन्तु आज के इस क्षण को जो कि मेरे सम्मुख उतना ही नग्न है जितनी की अन्य चीजें—मैं अपने में तिरोहित कर लेना चाहता हूँ, कम से कम आज भर के लिए कह सकता हूँ कि मैं क्षणवादी हूँ !”

मैं जानता हूँ कि मेरा यह उत्तर स्वयं में पलायन है, किन्तु मुझे स्पष्ट ही लग रहा है कि यह नारी मेरे निकट लीलामयी है । इसे कदाचित् ऐसी ही बातें करना सुहाता है । और ठीक भी तो है ; यदि इसे इस तरह की आदत न हो तो इतना सारा भोग भोगते अरुचि न हो जाये ? भोग भोगने के लिए भी विशेष प्रकार की आदत को जन्म देना होता है ।

“दिखती हूँ, तुम्हें अभी भी बहुत कुछ सीखना है । किन्तु क्या यह सीखना तुम पर अब छोड़ा जा सकता है ? नहीं, क्योंकि इतने दिनों अपने मन की भी कर आये फिर भी कुछ नहीं सीख सके,—न जेल की दीवारें ही मिखा सकी और न पर्यटन की ठोकें ही ।”

और यह कहते-कहते रंजना उठ खड़ी हुई । कालीन पर बने बारहसिंघे के पेट, गर्दन, मुँह, आँख सब पर उसके स्लीपर पड़ते हुए अब वह खिड़की के पास पहुँच गयी है ।

खिड़की से वर्षा की धूप सी नीली फुहारें और दूर तक बिछा, नहाता हुआ आसमान, गाछों की लम्बी-लम्बी कृतारे एकदम धुलकर हरे आशीर्वाद के बड़े-बड़े फूलों जैसी लग रही हैं । बिदा होनी हुई मर्दी के हल्के चिन्ह आज दिन भर पानी गिरने के कारण साफ दिखायी दे रहे हैं, किन्तु गर्मियों का प्रारम्भ भी दूब के पीले-पीले सिरों से स्पष्ट है । सामने कोई पुराना मक़बरा पानी में भोग रहा है । उसकी दीवारों में छोटी-छोटी घास उग गयी है जो इस समय हवा में उड़ रही है—जैसे मक़बरा हरी घास के धूर्णवाला हुक्का पी रहा है । आज रास्ते में मुझे इतने मक़बरे मिले और उम ताँगेवाले ने और भी दूसरे कितने ही मक़बरों के बारे में बताया कि मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि लखनऊ ज़िंदों का शहर है या मक़बरों का !

“यहाँ आओ, अकलंक !”

और मैं रंजना के बहुत पास जाकर खड़ा होगया हूँ । उसके बालों से बहुत ही मीठी गंध आ रही है जिसमें मेरा मन और तन दोनों डूब जाना चाहते हैं । इससे कभी नहीं

इन्कार किया जा सकता कि मानव-शरीर में, खासकर युवा शरीर में, एक गंध होती है और गंध के साथ ही साथ आकर्षण भी—जैसे हरे चम्पे की गंध, जिसे मैंने बचपन में शिव की मूर्तियों पर से काफ़ी चुराया है। रंजना मेरे इतने पास खड़ी है कि मैं उस शरीर की गंध को अपनी दोनों हथेलियों में सप्तपर्णी जलफूलों की तरह भरकर अपनी आँखों से छुलाकर स्वयं को एकदम खो देना चाहता हूँ। किन्तु क्या मैं ऐसा कर भी सकूँगा ?

“अकलंक ! या तो सब कुछ सोचना ही छोड़ दो, या फिर जो भी सोचते हो उसे कर डालने का साहस भी रखो। जो कार्य नहीं बन सकता उसे न विचारना।”

और रंजना कितने जोरों से हँस पड़ी है कि बरसता पानी तक चौकन्ना होगया है। तो रंजना ने यह कैसे जान लिया है कि मैं उसके ही बारे में सोच रहा हूँ। उस सोचने में का एक अंश भी कभी कह दिया जाये तो कोई भी परायी नारी सुनकर सहन नहीं कर सकती, भले ही वह सुनना मन को कितना ही मीठा क्यों न लगे। कई बातें कही नहीं जातीं। उन्हें कहना, भोंडा करना है; क्योंकि कुछ करने के लिए ही बना है और कुछ कहने के लिए ही। इस अंतर को न समझ कर कई बार हम अपने चारों ओर मकड़ी का जाला बुन लिया करते हैं। रंजना ने कितनी चतुराई से इसे भाँप भी लिया है और पकड़ायी में न आनेवाली अभिव्यक्ति से कह तक डाला है।

“मैं समझा नहीं, रंजना !”

और वह अपनी लाल हथेलियाँ बाहर की बूदों के साथ खेलने के लिए खिड़की से आगे बढ़ा रही है।

“माल रोड वाली शाम को भी तुमने यही कहा था।”—

वर्षा-श्री का रसवर्षण जिसमें भीगता हुआ बाँह—नाल का अरुण हथेली-कमल ! !

किन्तु मेरे दिमाग में ठंडी हवा के झोंकों के साथ वह माल रोड वाली शाम की भी बात झोंका बन जाना चाह रही है। जो इस नारी को पिछले सारे जीवन में किये हुआँ में से आज अचानक ही और वह भी इतने जोरों से स्मरण आ रही है कि मुझे कहना चाह कर भी, किस प्रकार मुझे बाध्य कर रही है कि मैं पूछूँ !

“रंजना जी, वह माल रोड.”

“हाँ, माल रोड। क्या लाहौर को इतना भूल गये कि माल रोड, रंजना, वह शाम. . . कुछ भी स्मरण नहीं ?”

नहीं, कोई व्यक्ति इस सीमा तक किसी को भ्रम में नहीं रख सकता है। यह निश्चित ही धोखे में है कि मैं उसका अकलंक हूँ। वह अकलंक, जो रंजना के जीवन में जाने कितनी तरह की कड़वाहट भर गया है, और माल रोड वाली शाम को तो शायद. . . होगा ; किन्तु निश्चय ही वह कोई भी व्यक्ति हो, कभी भी अच्छा नहीं रहा है। क्योंकि रंजना के जीवन में वह विष की ऐसी रेखाएँ खींच गया है कि विवाह का अमृत भी उनको नहीं मिटा पा रहा है, और यह रंजना उसकी आग में फूँकी जा रही है। कदाचित् उस ज्वाला को शांत करने

के लिए इसने क्या कुछ न किया हो, और बहुत कुछ वह बुझ भी गयी होती जो आज मैं न आया होता तो। आज मैंने आकर वही किया जो बुझती हुई जंगली आग के लिए हल्की हवा का एक झोंका करता है। हम दोनों ही जानते हैं कि इस क्षण हम साथ हैं, शाम को मैं कानपुर के रास्ते अनजान शहर में, अनजानों के बीच खो जाऊँगा। आज शाम के बाद से तो फिर हम एक दूसरे को खो देंगे, किन्तु रंजना जैसे पागल होगयी है। कोई घटना घूँई की भाँति घुट रही है इसके मन में और जिसे कुछ शब्दों से अभिव्यक्त करना भी चाह रही है। मैं दिल में तय कर चुका हूँ कि इसकी इस पीठ पर सान्त्वना और प्यार का हाथ फेरूँगा। मेरा हाथ सिल्क में लिपटे हुए गोरे गरम कंधे को छुएगा और रंजना के इस जलते जीवन को एक क्षण के लिए ठंडक अनुभव होगी। तब इसके चेहरे पर कैसी संतोष की परछाई फैल जायगी, जैसे जलते हुए रेगिस्तान पर खजूर की पंखदार छायाएँ उतर आती हैं और उस छाया तले रेगिस्तान की आत्मा कैसी हरी-हरी गाँति का अनुभव करती है! रंजना के चेहरे पर परछाई को देखकर मेरी आँखें प्रसन्न हो उठेंगी, और प्रसन्नता में मेरी आँखें छोटी हो जाती हैं।

“रंजना ! क्या तुम सचमुच ही दुःखी हो ?”

शराब पी हुई गोल लाल छोटी आँखें देखकर मुझे वीर-बूढ़ी हमेशा याद आती रही है और मेरी पत्नी इस बात पर बहुत चिढ़ती है। कहा करती है कि यदि फिर पीकर आये तो वह इमली का केवल खट्टा पानी ही पीने को देगी।

“अकलंक ! तुम संशय और अविश्वास के मात्र कीड़े हो। जाओ, चले जाओ यहाँ से”—

और वह चीख पड़ी है। मुझे इस बात की आशंका न थी, ऐसी बात नहीं है। किन्तु इतनी शीघ्र और वह भी रंजना जैसी नारी से जो नारी होने के पहले चतुर और मिष्टभाषी भी है—क्या आशा थी ?

मैं उसकी ओर अब केवल मूर्खों की तरह देखने का कार्य कर रहा हूँ। “उस दिन चाहकर तुमने अपने आपको मेरी दृष्टि में गिरा लिया था, तब मेरे मन में कुछ भी साफ़ नहीं था; किन्तु आज तुमने न चाहकर अपने आपको गिरा लिया है, जब कि सब कुछ मेरी समझ की बाँहों के बीच बँधा घिरा है। किन्तु मूर्ख तुम ही बने अकलंक ! मैं नहीं !! क्या सच ही तुम कुछ भी याद नहीं कर पा रहे हो ? तो फिर सुनकर बता सकोगे कि तुम्हें याद है अथवा नहीं ?”

“रंजना ! तुम गलत समझकर मुझे मूर्ख कह सकती हो, क्योंकि यह आवेश है; किन्तु . . .।”

“यदि यह तुम्हारे मन का भाव है, तो मुझे दुःख है।”

“अच्छा, आओ लॉन में चलकर बातचीत करेंगे।—बैरा !”

और रंजना ने कितनी सफ़ाई से गर्मी का बहाना बनाकर, आँखों के तटों के पास जो

पानी आ गया था अपने सालू के छोर से पोंछ लिया ।

बैरा ने मालकिन से बिना पूछे ही लॉन में दो कुर्सियां और छोटी मेज फुहारों बरसते पानी में लगा दी है । धुली चिकनी कदली, लॉन के चारों ओर कैसे कायदे से लगी हुई है ! उसके वे लम्बे पीले केसरिया लाल बुँदकियों वाले फूल सुहाने लग रहे हैं । ऊपर आसमान में कई रंगों की चिड़ियाँ, तोते इस हल्के पानी में भीग-भीगकर खुश होते हुए उड़ रहे हैं । मुझे याद आ रहा है कि अब छोटे गड्ढों में पानी भर गया होगा और बहुत सारी चिड़ियाँ उन गड्ढों में पंजों के बल धंसकर अपने पैरों से पानी उछाल-उछालकर नहा रही होंगी, जैसे गाँव के पोखर में स्त्रियाँ नहाती हैं ।

हम लोग इस समय तक बरामदे में पहुँच चुके हैं । पीतल के गमलों से भरे बरामदे के खम्भों पर झूलती हुई बेलें हरिया उठी हैं । सीमेंट के इन खम्भों की मोटी गोलाइयों को अपने पतले नरम कच्चे हरे अंगो से ये बेलें घेरे हुए हैं । लोहे के तारों की उँगलियाँ थामे ये बेलें, कुछ दिनों में पूरे दरवाजे की मेहराब की तरह हो जायेंगी । . . . सीमेंटी खम्भों पर बेलों की मेहराबें ! ! फिर तो एक दिन किसी सुहानी साँझ में कुंद कलियों के रंग और गंध से ये बेलें, भरे अंगोंवाली वधू जैसी लगेंगी और पूरा बैंगला रंग-कलियों एवं गंध-फूलों में भर जायगा—महोत्सव की भाँति ! सीमेंट के ऋतु-पुरुष को हरी बाँहों में गूँथे हुए बेलों की ऋतुवधूएँ ! !

रंजना के दोनों छोटे कुत्ते जाने कहाँ से इस समय आ गये हैं और रंजना की हवा में लहराती हुई सलवार के साथ गिरते पड़ते खेलते हुए दौड़ रहे हैं । मैं सोच नहीं पा रहा हूँ कि रंजना का यह पाउडरयुक्त बाह्य सत्य है या लुहार की भट्टी का वह अंतर सत्य है । आज सुबह के वाद से सचमुच ही होश में हूँ कि नहीं, इसका निर्णय मैं कई बार कर चुका हूँ । मैंने नहाया है, खाना खाया है, हाँकी के रंग में भीगा भी था और इस समय बरसात की हल्की वृद्धों के ठीक नीचे खड़ा हुआ रंजना के साथ हल्के भीगने का सुख ले रहा हूँ । किन्तु फिर भी कहीं कोई एक ऐसी कड़ी इस शृंखला से गायब है जो इसे असत्य किये हुए है, और जिसे मैं समझकर भले ही नाम न दे पा रहा हूँ किन्तु उसके न हाने का अनुभव अवश्य कर रहा हूँ ।

“अकलंक ! मुझे आश्चर्य है कि तुमने वह प्रश्न अभी तक नहीं पूछा जो भारतवर्ष में बहुत ही सहज है किन्तु मूर्खतापूर्ण भी है ।”

और वह अपना हाथ घुटनों के बीच दाबे हुए कुत्तों को प्यार से देख रही है । आममान से बरसकर बूँदें उसके चन्द्राकार केशों में खेलती चली जा रही है । उसके गोरे लाल चिकने गालों पर बूँदें फिसल रही हैं और मेरा मन तथा तन दोनों भीग रहे हैं ।

“कौन-सा प्रश्न रंजना ! जो हर भारतीय पूछता है और मैंने मूर्खता की, वह राष्ट्रीय रस्म पूरी नहीं की ?”

मेरे इस उत्तर से पहली बार हम दोनों साथ-साथ हँस रहे हैं । मुझे तो कम-से-कम

बहुत ही अच्छा लगा और प्याज की तरह चमकदार दाँतों की हँसीवाली रंजना के भावों से भी लग रहा है कि इस अवसर पर दोनों को खूब सारा हँस लेना चाहिए। यह क्षण सुख का है, आगे की कौन जानता है !

“मूर्खता की रम्म !! अकलंक ! यही कि मेरे पति कहाँ है। तुमने उन्हें इतनी देर से नहीं देखा, और कइयो ने कदाचित् इस लखनऊ में मुना ही मुना है कि कुलकर्णी, मिलिटरी में कर्नल है और उन्हें यहाँ आने की कभी फुर्त नही होती। तुम्हारा क्या ग्याल है ?” —
वैरा ने काँफ़ी की ट्रे लाकर रख दी है ।

“देविण, जिस मामले में मैं मात्र द्रष्टा या श्रोता हुआ करता हूँ उसमें विश्लेषण कभी नहीं करता, क्योंकि विश्लेषण, अविश्वाम माना जा सकता है । सामनेवाला यदि घटना का अर्थ मत्य ही बनाकर आपको परिचय की मीमा से किमी भी कारणवश दूर रखना चाहता है, और अगर हम “क्यों” और “कैसे” द्वारा विश्लेषण करने लगते हैं तो हम उस सामनेवाले पर यह प्रकट कर देते हैं कि वह जो कुछ कह रहा है वह झूठ है और हम उसकी सचाई जानकर ही रहेंगे। इसलिए मैं मानता हूँ कि सामनेवाले को या तो कुछ न कहा जाये, या फिर इतने स्पष्ट तरीके से कह डाला जाये कि उसकी आँखें विस्मय में फट जायें कि—“ऐं, कोई ऐसा पूछ सकता है ?”

और मैं देख रहा हूँ कि वह तन्मय होकर काँफ़ी बना रही है । शायद इसी तन्मयता का दूसरा अंश मेरी बात को सुनने-समझने में भी जरूर लग रहा होगा ; अन्यथा केवल अपनी बात कहने की आदी रंजना, इतना मुनकर भी किम मनोयोग में काँफ़ी में चीनी और क्रीम मिला रही है ।

“हूँ, तो तुम मुझमें ऐसी कौन सी बात पूछना चाह रहे हो या यों कहा जाये कि ऐसी वह कौन सी बात हो सकती है जिसे सुनकर तुम मच और झूठ का विश्लेषण छोड़कर, विस्मय में आँखें पाड़ सको कि ऐ, ऐसा भी क्या रंजना नाम की स्त्री में सम्भव है ? लो, काँफ़ी पियो !”

और बरसात की वूँदों में काँपता हुआ मन, काँफ़ी की गर्मी पाकर बेहद खुश हो उठेगा, यह मैं अपने मन के बारे में भलीभाँति जानता हूँ ।

“यह आप क्या मोचनी है ? मैंने कोई वाक्य आपकी किमी बात को जानने के लोभ से सिद्धान्त की आड़ लेकर नहीं कहा है, रंजना जी !

और मैं देख रहा हूँ कि वह आत्मस्थ है, तन्मय है । उसकी पलके उसकी आँखों को ढँके हुए हैं । वे आँखें नीचे काँफ़ी के कप में देख रही होंगी, कदाचित् बहुत कुछ छिपकर मोच भी रही हों—जाने कितने चेहरे, कितनी सड़के, घटना-स्थल, सब देश, काल, परिस्थिति को पार करने हुए आ रहे होंगे । हमें जीवन को एक क्षण में पर्यवेक्षण कर जाने में कोई असुविधा नहीं हुआ करती और हमारा आज का मन—कल तक की घटनाओं पर कभी ‘छि, छि’ या कभी ‘आहें’ भरता हुआ तटस्थ होने का प्रयत्न करता है किन्तु हमारा

मन उस समय यह भूल जाता है कि कल तक की 'छि, छि' पूर्ण घटनाओं से ही तो हमारा आज का मन बना हुआ है। और जब कोई इन घटनाओं की ओर संकेत भर कर देखता है, तो हम कैसे बीमार जैसे लगने लगते हैं और चाहने लगते हैं कि लोग हमारे इस पीप और सड़ांध भरे मन को शांति की अँगुलियों से सहला दें।

“देखती हूँ कि माल रोड वाली शाम और आज के इस दूसरे पहर में बहुत साम्यता है।”

काँफी का सिप समाप्त करते हुए वह फिर बोल रही है—

“अकलंक ! तुमने उस दिन भी कुछ पूछा था और तुम ऐसा पूछकर भूल सकते हो, किन्तु मैं भूलकर कहाँ जा पाऊँगी ? हम घूमने जा रहे थे। तुमने किसी बँगले के गुलमुहर के फूलों का गुच्छा उठाते हुए मुझे देकर पूछा था कि रंजना ! क्या मुझमें विवाह करोगी ?”

और मैं अनुभव कर रहा हूँ कि वाक्य का अंतिम भाग सुनकर गरम-गरम काँफी से मैंने अपना निचला ओंठ, पूरा हलक तक जला लिया है और दिमाग पर गरम काँफी के साथ ही यह तेज व कड़वी वात दोनों ही जला देने वाला प्रभाव उत्पन्न कर रही है। मैंने ऐसा क्यों कहा था ? मेरी आँखों के आगे अंधकार की काली चीटियाँ, लाइन में अपने बारीक कदमों को रखकर गुजरने लगी, और मेरा मन अपनी बात पर 'छि, छि' कर उठा है। किन्तु दूसरे ही क्षण इस विचार ने मुझे कितना मुख दिया कि नहीं, मैं तो मात्र श्रोता हूँ और इस समय मैं दूसरे क्षण में मैं गुजर रहा हूँ। मुझे काँफी में बेहद मजा आ रहा है।

“अकलंक ! यह नहीं कि मैं नहीं जानती थी कि तुम मुझमें ऐसा क्यों पूछ रहे हो। मुझे मालूम था कि तुम्हें यह ज्ञात है कि मैं विवाह करना चाहती भी तो नहीं कर सकती थी।”

बारिश पहले से कुछ फिर तेज होगयी है। काँफी में बूँदें बराबर गिर रही हैं और हम दोनों का ख्याल इस ओर बिल्कुल भी नहीं है।

“कदाचित् कोई रहस्य रहा हो इसमें !!”

मैंने कितनी सफाई से चतुर एवं नादानी का परिचय देने हुए, उसके मन की तह में छिपी गंदगी या वास्तविकता को जान जाने की बात कह डाली है।

“रहस्य !! अकलंक, न तो तुम इतने भोले हो जितना कि दिखाया चाह रहे हो। दूसरे, रहस्य तभी तक तो रहस्य है जब तक वह अनकहा होता है, और कह दिये जाने पर वह दूसरी बातों की तरह हल्का फुल्का—एकदम गुब्बारे की भाँति ही हमारे लिए हो जाया करता है। और तब हम उस कही हुई बात के गुब्बारे की तरह तरह से शक्लें बनाकर खेलते हैं—समझते हैं कि हम कितने सर्वज्ञ हैं !—तुम जानते हो कि मैं अभी तक विवाह क्यों नहीं करना चाहती थी, और फिर मैंने विवाह क्यों किया—और अकलंक ! फिर एक नहीं अनेक विवाह किये और तोड़ फेंके ! कई बार तो ऐसा भी हुआ कि लोगों के आँधे नाम

का भी लेविल लगाने की मुझे आवश्यकता न रही। और यह भी नहीं अकलंक ! कि मुझे पिछला सारा इसलिए छुपाना पड़ा हो कि कहीं मुझे आगे कोई न मिले; बल्कि पिछला कहकर मैंने आगे का बहुत कुछ पाया। सोचती हूँ कि प्रत्येक क्रम एक सीमा पर जाकर समाप्त हो जाया करता है—मुना तो मैंने ऐसा ही है।

गोद में खेलते हुए कुत्ते के मुलायम बालों में रंजना की फंसी हुई उँगलियाँ उसे सोचकर बोलने में शायद बहुत कुछ सहायता दे रही हैं। सामने के ताड़ों को देखकर मुझे अपने यहाँ के नारियल याद आ रहे हैं जो इस समय समुद्री हवा में इतने जोरों से हिल रहे होंगे कि कोई अजनबी देखे तो समझ बैठेगा कि आज ये बेचारे पेड़ सब टूट जायेंगे। किन्तु हम वहाँ के रहनेवाले भलीभाँति जानते हैं कि इतनी हवा के बोझ से कभी नारियल नहीं टूटा। यहाँ के ऐसे किमी पेड़ के बारे में नहीं जानता, किन्तु मैं हमेशा स्त्रियों के बारे में नारियल की उपमा देता रहा हूँ। अपने लटकते हुए पियराते, तँत्रियाते रंग के प्राणहीन बड़े-बड़े पत्तों को लेकर मुरझा जायेंगे। पर मौसम बदला नहीं कि मवसे पहले अपने ताँबे के रंग के पत्ते छोड़कर नयी-नयी कोपलों में, ऐसे तो क्या पीपल, क्या बेर, मगर धरती स कितने ऊँचे नारियल—रातों रात बदल जाते हैं। मुझे कभी भी नारियल और नारी में असंगति नहीं लगी है। कल की आलिंगनवती, आज आँखों में अपरिचय की सफ़ेदी में दखी जा सकती है।

मगर मैं शायद गलत मोच रहा हूँ, क्योंकि मुझे रंजना की उन बातों में मे चर्चा को आगे बढ़ानेवाले सूत्रों को खोज निकालना चाहिए था।

“तुमने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया, अकलंक !”

“कई बार हम बोलकर कुछ प्रसंग को गड़बड़ा दिया करते हैं, और मेरे साथ तो विशेषकर ऐसा ही होता रहा है, रंजना !”

“अच्छा ?”

और रंजना ने “अच्छा” इस बड़प्पन के ढंग से कहा है कि मुझे सचमुच ही लगा कि मेरी चतुराई इसके सामने नहीं चल सकती है, नहीं ही। और मैं देख रहा हूँ कि मुझे वह पकड़ सकी है, तभी खुशी से वह एकदम इस बेलाग तरीके हँसती जा रही है, जैसे मशक का पानी मशक के फट जाने पर एक साथ बाहर निकल पडने की जल्दी कर रहा हो !

“तुम्हें बिल्कुल भी आश्चर्य नहीं हुआ, अकलंक ?”

और बहुत देर के बाद मैं देख रहा हूँ कि उसने अपनी आँखें मुझे देखने दी हैं।

सामने का बंगाली परिवार कही बाहर जाने की पूरी तैयारी कर चुका है और वे लोग सब एक ताँगे पर चढ़ रहे हैं। दो लड़कियाँ, एक लड़का, माता और पिता—बिल्कुल साँचे में ढला हुआ परिवार, कही मे भी कोई भूलचूक नहीं। अब थोड़ी देर में इस नॉर्थ-एवेन्यू की पतली नहर में से निकलकर यह परिवार जाने कहाँ खो जायेगा ! मैं इसके बाद इन सब में से किसी को भी नहीं देख पाऊँगा क्योंकि मुझे आज ही शाम की गाड़ी से

लौट जाना है । अधिकतर लोगों के लिए हम मात्र यात्री हुआ करते हैं । लोग हमें जो जान भी पाते हैं तो वह चाँद का उजला भाग हुआ करता है । चाँद के दूसरी तरफ क्या है, यह कौन जानता है ?

हम बोलकर ही शत्रु तथा मित्र बनाते हैं, और न बोलकर बिलकुल अनजान बने रहते हैं । जो जितना अधिक और जितने अधिक लोगों से बोल पाता है वह उतना ही बड़ा मित्र या शत्रु हुआ करता है । मैं अगर रंजना के स्थान पर इस बंगाली परिवार से मिलने आया होता तो यह परिवार इस समय कहीं और न जाकर मेरे साथ अपने उस लॉन में बैठा होता कि जिस लॉन के दरवाजे को माली ने अभी-अभी बंद किया है । ये दोनों बच्चे मुझे किसी संबोधन से पुकारते । किन्तु इस परिवार या शेष पूरे लखनऊ को मेरे आने का पता भी नहीं लगेगा ।

“रंजना, आश्चर्य प्रकट करके हम लोगों पर यह प्रदर्शित कर देते हैं कि आज के पूर्व हमने जो कुछ देखा, सुना था वह कितना हल्का एवं छोटा—छि, एकदम क्षुद्र—था और हम इस छोटेपन को कभी भी नहीं चाहते कि कोई देख ले । इसलिए क्या चाहती हो कि मैं कहूँ कि महान् आश्चर्य है रंजना !! —और मैं यह कह भी दूँ, मगर किस बात पर, कि मेरे सामने एक ऐसा व्यक्ति बैठा हुआ है जिसने पिछला छोड़ने जाना अपना जीवन बनाया है, तथा ‘और आगे’ को जीवन का लक्ष्य ? किन्तु क्या तुम्हारे वाक्यों को प्रमाण मान लूँ ?”

“देखो अकलंक ! तुम बिलकुल झूठ बोल रहे हो । यदि यह न होता तो उस शाम, माल रोड पर न पूछा होता । जानते हो मैं तब भी विधवा थी और अकलंक ! क्षमा करना, मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं न तो कभी मधवा ही थी और न विधवा ही —किन्तु, कदाचित्, इन संज्ञाओं से परे किसी भी नारी की कल्पना तुम न कर पाओ । यह तो अपने अपने संस्कारों, परिस्थितियों का प्रश्न है । मुझे भी इन संस्कारों के भूत और देवता सभी से युद्ध करना पड़ा है ।”

और यह कहते-कहते अपने नंगे पैरों में वह गीले लॉन पर टहलने लगी । मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा कि यह रंजना मेरी महानुभूति की अपेक्षा रखती है या नहीं । क्योंकि जलती आग को एक बूँद की महानुभूति का अर्थ मुझे न पता हो, सो नहीं ।

कई बार हम देखते हैं कि चुप रहना और बोलना दोनों ही अनिष्ट के कारण बन जाया करते हैं । मैं नहीं जानता कि रंजना मुझे अपने मनोलांक के किस प्रदेश में घसीट लाना चाहती है । यह मुझे स्पष्ट ही है कि वह या तो वर्क की भाँति प्राणहीन संज्ञाहीन कर देनेवाला लोक भी हो सकता है या फिर वह जलता हुआ सहारा का रेगिस्तान भी । किन्तु वह जीवन देनेवाला मैदान, जहाँ फसलें, फूल, झरने और बगीचे हुआ करते हैं, कभी भी नहीं है । क्या मैं कभी भी इसके साथ चल सकता हूँ ? जहाँ यह चल रही है वहाँ केवल यही चल सकती है, तभी तो इसे इतने व्यक्तियों को बदल-बदलकर चलना पड़ा है ।

इसे प्रत्येक अनागत के प्रारंभ का कितना मोह रहा होगा, किन्तु कुछ दिनों बाद तो एक-एक क्षण साइबेरिया की अंग काट देनेवाली हवा की तरह ठंडा, प्राणघातक लगता रहा होगा। क्योंकि पराकाष्ठा, वह रूप की ही क्यों न हो, मशाल के केन्द्र में जलनेवाली आग की पुंजीभूत राशि से क्या कम जलनशील हुआ करती है ?

“अकलंक ! न बोलना चाहो तो बात दूसरी है किन्तु तुम अनायास ऋतु की भाँति चले गये यह अच्छा नहीं हुआ। मैंने मन ही मन कितनी बार चाहा कि तुम एक क्षण को लौट आते, चाहे वह क्षण उधार ही होता पूरे जीवन के बदले। और आज तुम लौटो भी, तो अनजाने बनकर। आज मैं तुम्हें पाकर चाह सकती थी, किन्तु आज की दशा में पाना और खाना—दोनों ही मेरे लिए अर्थहीन में कम नहीं है।”

रंजना कदली के एक फूल को अपनी दोनों हथेलियों में सहलाते हुए मेरी ओर देखने का उपक्रम कर रही है। पानी बरसकर आसमान के बादलों में चुप है, जैसे वह बरसते हुए रंजना को सुन न सकेगा—बिना बरसे तो रह सकता है, किन्तु बिना मुने नहीं। दूर दूर तक सड़क धुली लग रही है। उस कोने में बने छोटे में पार्क की चार-दीवारी में झूलती हुई साँकल के कोंटे कैसे खूबमूरत लग रहे हैं ! पार्क में विशाल फव्वारे की रोमन परी के मंगमरमर के पर उड़ते हुए बने हैं—धुलकर जिनमें फिर उजलापन भर गया है; लगता है, बादल परी को उड़ा ले जाना चाहते हैं और फव्वारा यह बात जानता है।

मुझे बोलना चाहिए, क्योंकि रंजना चाहती है कि मैं बोलता रहूँ, जिसमें उसे बोलने के लिए प्रेरणा मिले और वह बोलते हुए उसी तरह चलती चले जैसे भोर की बेला, सुनसान गाड़ियों को जोते हुए गाड़ीवाला अपने बैलों से ही बातें करना चलता है। क्योंकि न बोलने से हमें चारों ओर की चुपचाप बहनेवाली नदी, पहाड़, जंगल सब भयावने लगने लगते हैं, न बोलने से हमारे अंदर का ही हमें खाये जाता है।

“रंजना ! मुझे महानुभूति है।”

और मैंने देखा कि मैं कितना शल्ल बोल गया हूँ। क्योंकि रंजना की दोनों हथेलियों ने उस बेचारे फूल को कुचल दिया है। जो हम सुनना नहीं चाहते, जब वह सुनने को मिलता है तो हमारी हथेलियाँ पत्थर की हो जाती हैं और जलने लगती हैं !

“अकलंक ! मैं दया, महानुभूति या उपेक्षा की पात्र नहीं हूँ। तुम भूलते हो यदि मैं इन सबकी अपेक्षा करती हूँ तो। बोलो, तुम क्या सुनना चाहते हो ? मैं सब कह देना चाहती हूँ और कह भी दूंगी।”

और मैंने देखा कि उसकी दोनों पुतलियाँ जलती मोमबत्तियाँ हो रही थी। मुझे सहम जाना चाहिए और मैं सचमुच सहम भी गया हूँ। सामने के तार पर बैठी हुई, पहली बार इस मौसम में कोयल देखने पर भी अच्छी नहीं लग रही है, और खासकर जब वह अब बोलने भी लगी है तो चाह रहा हूँ कि वह उठकर चली जाये। कोयल बोल रही है और

मेरी आँखें उसे देखने से बाज़ नहीं आ रही हैं। मेरा मन, रंजना की बातों में जो कड़वा-हट, दम्भ, उपेक्षा एवं उच्चता है, उसे सहन नहीं कर पा रहा है। किन्तु मैं सिवाय सुनने के और कर ही क्या सकता हूँ ! मैं पहली बार चाहने लगा हूँ कि काश ! मैं अकलंक होता और तब सचमुच ही उसकी उपेक्षा की होती। तब यह उपेक्षिता नारी अपनी वांछा का आँचल उसी तरह फैलाती जिस भाँति बादल अपने आँचल में, आसमान से धरती पर गिरती हुई किरणें झेल लेता है। मुझे यह पहले मोहेंगी, और तब मैं कटे पीपल की भाँति गिर पड़ूँ, यह न हो सकेगा रंजना ! मैं बनियान की फेंकट्टी में काम करता हूँ। विज्ञापनों में सुन्दर से सुन्दर स्त्री को भी देखकर झुकना मुझे स्वीकार नहीं हुआ, तब तुम क्या हो ? हाँ, तुम हो ही क्या ? जाने कितनी की... सोच नहीं सकूँगा, क्योंकि मैं रंजना की ऊँचाइयों तक पहुँचने की जब कामना नहीं करता तो फिर उसकी पाताली नीचाइयों में क्यों झाँकू ? मुझे रंजना से क्या लेना देना ? मैं आया हूँ, नहीं भी आ सकता था—और एक दिन के कुछ घंटे का आना, आना थोड़े ही हुआ करता है !

“मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहता, यह मैं कितनी बार कह चुका हूँ रंजना !”

“बस !!”

और उसने कनेर का लम्बा पीला फूल मेरे कुर्ते में खोसने हुए मेरे वाक्य को तेज़ी से दोहरा दिया।

वह हँस रही है।

“अंदर चलो। मैं आज कहूँगी, और तुम सुनोगे। अगर जल्दी न कह सकी तो तुम्हारे प्रति ज़्यादती होगी। इस समय ढाई हो रहा है और आज ही तुम्हें लौटना भी है, मुझे तुम्हें वापस लौटा देना है। तुम्हें लौटाने का काम मेरा है और अपने काम में मुझे तुम कभी भी हीला-हवाला करते हुए न पाओगे, समझे ? चलो भीतर, काफ़ी पानी में भीग लिये हो अब। भीगने की कभी आदत भी तो नहीं होगी ? मुझे तो आदत ही नहीं, नेचर तक बन गयी है। ऐसा क्यों है, कभी मत पूछना। क्योंकि पूछने पर बताना मेरे लिए ही नहीं, नारी मात्र के लिए कठिन है। न कहनेवाला व्यक्ति नारी है और कह देनेवाला पुरुष !!

कमरे में पहुँचकर मैंने देखा कि धुध ही धुध भरी हुई है। मुझे लग ही नहीं रहा है कि मैं यहाँ कुछ घंटे पूर्व ही आया हूँ। मैं यह मानने को कभी तैयार नहीं हो सकूँगा कि इन सब चीजों को आज पहली बार और अंतिम बार के लिए देख रहा हूँ।

बीचोंबीच झाड़फातूस जल रहा है। और जिसकी परिछाड़ियाँ दीवारों के शीशों में लकड़क लकड़क कर रही है। सामने की दीवार पर एक तैलचित्र बना है जिसमें साँझ की लाली बहुत ही डरावने तरीके पर बनी हुई है। चित्र में अंधकार की काली तलवार ऊपर आसमान से टूटती हुई गिर रही है—नीचे धरती पर छोटे-छोटे खूबसूरत फूल खिले हुए हैं, वम !! और मेरा मन चीख पड़ने को हुआ कि रंजना वे फूल फट जायेंगे !! किन्तु मुझे प्रसन्नता है कि मैं चीखा नहीं हूँ। यह मुझ पर तब बहुत ही हँसती, क्योंकि रंजना ने इस चित्र को देखा ही नहीं होगा, बल्कि इसे प्यार भी किया होगा। भावों की कुरूपता को चित्रकार ने अभिव्यक्त कर भले ही अच्छा न किया हो, किन्तु रंजना ने खरीद कर एक गुस्तर अपराध किया है जिसका निश्चय ही कोई दंड नहीं है।

“क्या देख रहे हो अकलंक ! देखो, अब दूसरी ओर न देखो। मुझे कहना ही होगा। न कहकर मैं अपनी दृष्टि में ही गिर जाऊँगी और कहने पर तुम मुझे नीच, पतिता ही तो समझोगे ? मुझे दूसरा क्या कहना है, इसकी चिन्ता नहीं रही है। डर तो मुझे हमेशा इसका रहा है कि कहीं मैं स्वयं को नीच न कह बैठूँ। उम्र दिन के बारे में मैं सोच नहीं सकती अकलंक ! जब मुझे स्वयं को ऐसा सब कुछ कहना पड़ेगा।”

मैं देख रहा हूँ उसके उभरे वक्षस्थल में माँसों की कई परतें जमा होनी जा रही हैं, और कितनी कठिनता से वह मांस ले रही है। दीवारों पर हरिण और शेरों के मिरिरीह एवं निःसहाय ढँग पर टँगें हुए हैं। इस कमरे के बाहर जीवन बिल्कुल भी बँधा नहीं है। मगर रंजना ने ऐसा क्या किया है जो उसे इन दीवारों के बाहर नहीं जाने देता ! वह बिल्कुल उस बावड़ी की तरह होगयी है जो किसी जमाने में किसी राजा के द्वारा बहुत ही सुन्दर एवं मोहक पत्थरों की जालियों तथा मेहराबों में सजाकर बनायी गयी थी, किन्तु आज तो उसमें पानी मरकर काई और मड़े पत्तों की सड़ांध से सब कुछ मृत लग रहा है—पत्थर की सुंदरता में भय भर गया है। दिन में डर लगता है तो रात को भय के नाखून और कितने काले-काले तथा तेज हो जाते होंगे, कह नहीं सकता। मुझे लग रहा है कि अब यहाँ से चल देना चाहिए, किन्तु सामने मेरी ओर आती हुई रंजना कितनी सुन्दरी है ! वर्षा की समस्त गुलाबी साँझ का रूप समेटे और सिर पर जैसे इंद्रधनुष का मुकुट पहने चली आ रही है—मैं इससे विद्रोह कर सकूँगा ? कोई इससे विद्रोह कर सकता है ? क्या मैं बिना इसके रह सकूँगा ? नहीं, रंजना के बिना शेष रहना अब नहीं हो पायेगा ; चाहे

वह रहना शाप ही क्यों न हो—रंगमय शाप निर्जीव वरदान से श्रेष्ठ है । और मैं यह रंजना पर स्पष्ट भी कर दूंगा, चाहे फिर कुछ भी क्यों न हो । रंजना मेरे निकट आकर बैठ रही है ।

मेरी हथेलियों को अपनी हथेलियों में लेते हुए वह एक बार मेरी आँखों में झाँक चुकी है और अब बोलने की चेष्टा में है । कितने बारीक ओठ, एकदम तराशे हुए, पतले—जिनकी रक्त की लाली मेंहदी-सी फूटी पड़ रही है ।

“कोई चिन्ता नहीं अकलंक ! तुम्हें बाध्य नहीं होने दूंगी । केवल कहना चाहूँगी ; इससे आगे कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं ; समझे ?”

और उसका वह गौर आनन, मेरे वाम कंधे पर एक क्षण के लिए झुक गया—पहली बार लगा कि साँझ होना किसे कहते हैं । जाने क्यों विचारों का व्यतिक्रम इतनी शीघ्रता से असम्बद्ध रूप में गतिमान है कि मैं किसी भी विचार को रूप एवं अभिव्यक्ति नहीं दे पा रहा हूँ । पूरा कमरा मुझे घूमता सा लग रहा है । वह 'लेकन्स-क्राई' वाली मूर्ति, उस फायर प्लेस से उठकर बड़ी होती जा रही है, ठीक उसी तरह जिम तरह समुद्र किनारे किसी को एक बंद शीशी मिली थी, और उसमें का बंद राक्षस फिर किस प्रकार धूँएँ के सहारे पूरे आममान में फैल कर बड़ा हो गया था—दार्शनिक और उसके वच्चे तथा उनकी चीखें सब मेरे सामने उस राक्षस की तरह बड़ी, बहुत बड़ी होती जा रही है । रंजना का मिर मेरे कंधे पर—मेरी कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है, जो समझ पा रहा हूँ वह है कि साँझ होना किसे कहते हैं—किसी का कंधे पर झुका हुआ मिर, साँझ है ।

“मुनो, क्या तुम अपनी उँगलियाँ मेरे बालों में नहीं फेर सकती ? तुम नादान हो अकलंक ! बिल्कुल बच्चों की तरह तुम कुछ नहीं समझते . . . हाँ, कुछ नहीं समझते ।”

और अब मेरी उँगलियाँ उसके घुँघराले बालों में घूम रही हैं, जैसे काले लहराते कँटीले तारों में जिनमें कि बिजली गुज़र रही हो । मंने छू ही नहीं लिया है, बल्कि उन तारों ने मेरी उँगलियों को ठीक वैसे ही घेर लिया है जैसे मोने की पत्नी की तरह दीपशिखा को अंधकार चारों ओर से जंगली नीग्रो की तरह घेर लेता है—बिजलियों के काले कँटीले तार !!

“जानने हो अकलंक ! सीमाप्रांत में जहाँ मैं पैदा हुई थी, वहाँ से हम लोग क्यों चले आये थे ? तुमने तो मुझे लाहौर में ही देखा था ।”

अब वह मेरे कुर्ते के बटन में ठीक उसी तरह खेल रही है जिम तरह मेरी बच्ची मुझसे पैमे लेने के लिए मेरी खुशामद करते हुए मेरे कोट या कमीज़ के बटन से खेलती होती है । चड़ियों में भरा गोरा हाथ, मेरे वक्षस्थल के आसमान में मोतिया मेघ की तरह घूम रहा है—एकदम चिकना !!

“वहाँ सीमाप्रांत में मेरे पिता रुपये का लेन-देन करते थे—और बाबा रे बाबा, कितना भयानक होता है वहाँ के लोगों से एक-एक रुपया वसूलना !”

और अपनी पलकों को ऊँचा करते हुए कितने भोले से देख रही है, जिसमें मैं मान लूँ कि सचमुच ही उन सीमाप्रांत के लोगों से रुपया उगाहना या तो अंग्रेज बहादुर का ही काम था या फिर रंजना के पिता का ।

“पिता जी दिन भर कारतूस की पेटी बाँधे हुए कंधे पर बंदूक लटकाये अपनी सांझनी (डाची) पर सवार उन ऊँची नीची घाटियों और दरों में चक्कर काटा करते थे । मेरी माता दिन-दिन भर खाना नहीं खाती थीं, उन्हें खटका ही लगा रहता था कि पता नहीं किस समय क्या हो जाये ।”

उसकी गरम गरम हथेलियों के नीचे मेरी हथेलियाँ गुमसुम चुपचाप लेटी हुई हैं । वह अपने लम्बे-लम्बे क्यूटैक्स रँगों नाखूनों से कभी-कभी मेरे हाथों पर कुछ लिख भी देती है । कभी इन्ही नाखूनों से आदिमकाल की नारी फाड़ भी डाल सकती थी, पर आज तो ये नाखून नारी की शोभा हैं, बनारसी वाग के शेर की भाँति ही ।

मैं बार-बार ‘हाँ, हूँ’ करता जा रहा हूँ । मानसून के कारण ठंडी हवा पूरे कमरे में भरती जा रही है और झाड़फ़ानूस मद तरीके पर हिल रहा है । इन्हीं परदों के पार स्वस्थ वायु बह रही है और इन रंगीन परदों के भीतर बैठी रंजना, अपनी पलकों में जाने क्या-क्या कड़वा भरे हुए है ! ये रंगीन परदे, विलकुल हाथी के दाँतों की तरह धोखा देनेवाले हैं । मैं उनके वालों को कितने पास से देख रहा हूँ । गंग, एकदम बीच में—वालों की लहरें कैसी अलग अलग कर दी गयी हैं, और मेरा मन सहज चाहने लगा है कि उन लहरों को एक बार आँठों से चूम लूँ । ये वाल मेरी आँखों पर, पलकों पर, गालों पर, ओठों पर काली घटा की तरह फैल जायें; बस, फैल जायें ।

“उस गाँव का सरदार एक पठान था—महमूद ! और उसका जवान, गोरा चिट्ठा, घोड़ों के से कंधेवाला लडका था मैयद । जानते हो अकलंक ! मैं जब तेरह वर्ष की रही हूँगी, वह बहुत धूर धूर कर मुझे देखता था । उसकी वह घने घेरवाली मलवार और लम्बा कुर्ता, जिस पर वह काली जैकट, जिसमें सस्ता हरे सिल्क का एकदम झीना—लाल बुंदकियो भरा रुमाल कंधे के पास खुँसा रहता था । अपने बड़े से चाकू से हमेशा वह अपने दाँतों में लगा गोश्त कुरेदता रहता था । गज़ब की तेज धार उसके उम चाकू की हुआ करती थी । अपनी कलम तक वह उसी में बनाया करता था और गुल्ले के लिए लकड़ी भी वह उसीसे काटा करता था । जब वह अपने घोड़े पर बैठकर रात में पड़ोस के कबीले वालों को लूटने जाता था तब उसकी आँखें कितनी शरारतभरी होती थीं कि गाँव की हर एक लड़की उस समय डर जाती थी ! मुबह जब वारदात की शोहरत फैल जाया करती थी, और दूसरे कबीलेवाले आकर चिल्लाने लगते थे, तब वह कितना निडर होकर अपने घोड़े की जीन पर निस्पृह बैठा हुआ बासी रोटियों के साथ कच्चा गोश्त चबाता रहता था ।”

रंजना ने यह कहते-कहते मेरे दोनों कंधों को झकझोर दिया, जैसे मैं निश्चय ही बात सुनते-सुनते सो गया हूँ और मुझे नहीं सोना चाहिए था ।

“जानते हो अकलंक ! वह मुझे अत्यंत प्यार करता था और मैं भी शायद प्यार करती थी। कैसी मूर्ख थी, कि जिस उम्र में लड़कियाँ गुड्डे-गुड्डियों का ब्याह रचाती हैं, मैंने अपना ब्याह उसी सैयद से रचाया।”

मैंने किस बुरी जगह उसे ‘क्या’ कहकर टोका ! मैं जान रहा हूँ कि ऐसी भावुकता मुझमें पहले कभी नहीं रही है, किन्तु आज ही जाने कहाँ से यह आ गयी है ! हो सकता है, शाम तक यह भावुकता न भी रहे, क्योंकि व्यापारियों से मुझे काम पड़ता है। व्यापारी लोग रंजना की भाँति कंधे पर सिर रखकर बनियानों के आर्डर नहीं देते हैं। मुझे ठीक तरह याद है कि मेरी पत्नी ने भी कई बार इसी कंधे पर सिर रखा है, किन्तु मेरी भावुकता का सदा यह रूप रहा है कि या तो मैंने उसे खूब कसकर चूम लिया है या फिर हँसकर दूर कर दिया है।

किसी का सिर कंधे पर हो और एक लम्बी कहानी का प्रारंभ आपके कंधे का सहारा लेकर हो जाये; साथ ही आपको इतना भी स्मरण न रहे कि आप बिलकुल अजनबी व्यक्ति हैं, किसी दूसरे के अतिथि होकर आये थे, और आज शाम को आप जा भी रहे हैं—सचमुच ही बात बड़ी अजीब लगती है। अजीब इसलिए नहीं कि स्त्री और पुरुष आज के पहले इस तरह कभी न मिले हों, बल्कि इस तरह की परिस्थितियों में यह सब—और ऐसा सब कुछ !!

“रोको मत अकलंक ! जो भी तुम्हें कहना हो वह बाद में कह लेना। कहना न चाहो तो कोई आग्रह भी नहीं है, लिख भोजना,—किन्तु इस वेग को मत रोको। रोकोगे, मैं टूट जाऊँगी, तुम टूट जाओगे इम वेग के सामने। उचित तो यही है कि चुपचाप मुझे कहते रहने दो और तुम सुनते चलो। तो, मैंने सैयद से विवाह किया। उसे मैंने, अपने अंदर की प्रथम अछूती नारी के सबसे पहले ताजे कुँआरे फूल जैसे मन से प्यार किया। वह पहली रात मैं कभी नहीं भूल सकती, जिसे सैयद ‘शबे-जशन’ कहा करता था। मैंने अपने माता-पिता से छुपाकर सैयद से निकाह पढ़ा था। जन्म की रात को हम दोनों ने काफ़ी शराब पी थी और उसने मुझे सिर पर बाँधा जानेवाला बुंदकियों भरा एक रेशमी हरा रूमाल, जिसमें मलमें सितारे भी टँके हुए थे, उपहार में दिया था—शबे-जशन का उपहार !!”

और वह एकदम झटका देकर खड़ी होगयी। वह हाँप रही है। वह हाँपती हुई सामने की आलमारी की तरफ़ बढ़ी और तेज़ी से उसने आलमारी का पल्ला खोला। बहुत सारे कपड़ों के ढेर में से एक हरा रूमाल निकाला। वह चीखती हुई बोली—

“यह है अकलंक ! उम सैयद का रूमाल ! शबे-जशन की सौगात !! मेरी पहली नारी को जो उसके उत्सर्ग में सैयद ने दिया वह है यही रूमाल। उस सैयद का यह प्रतीक है, जिसे मैंने जाने कितना प्यार किया था !—माँ-बाप से झूठ बोलकर मैं उसके साथ एक सौझ उसके घोड़े पर घर से भागी। उसने मुझे कहा था कि उसे पेशावर में फ़ौज में काम मिल गया है और हम दोनों वहाँ सुख से रहेंगे। मगर जब वह मुझे लेकर एक पहाड़ी दर्रे में पहुँचा,

उसने साफ़ साफ़ मुझ से कहा कि वह मुझे अफ़ग़ानियों के हाथ बेच चुका है; और सैयद स्त्रियों को बेचने का व्यापार करता है । मैंने उससे कितनी विनती की अकलंक ! जानते हो ? नहीं । और किस बात की विनती थी मेरी ? यही कि उमे जो उधार अफ़ग़ानियों को देना है वह मैं चुका दूंगी, मगर वह अपनी उस बीबी को जिसका कि वह शौहर है, न बेचे । किन्तु उसने बताया कि उसकी और भी चार बीबियाँ हैं, वह पाँचवी बीबी धर्म की वजह से नहीं रख सकता । और अकलंक ! मैंने तब आधी रात में गाफ़िल सोये हुए सैयद को दूसरे अफ़ग़ानियों के साथ उसकी ही दुनाली से खत्म कर दिया ।”

रंजना की आँखों में उस हब्बी के तैलचित्र वाली आँखों की प्रतिच्छाया मुझे लगी । मेरे पास इस बात का निर्णय करने का समय और मन दोनों ही नहीं कि रंजना को क्या करना था और जो कुछ किया वह ठीक ही किया ।

“सुबह जब मैं घर पहुँची और घरवालों को सारी बातें मालूम हुई तब मुझे ठीक याद है कि हम लोग कितनी जल्दी वहाँ से भागे थे—क्योंकि मरदार के लड़के की कोई हत्या करदे तो क्या वह बच सकता है ? और मैंने देखा था कि हमारे घोड़ों का पीछा करते हुए सरदार और उसके साथियों ने बहुत कोशिश की थी कि हमें पकड़ सकें । सैयद के पिता की एक गोली मेरे पिता के पाँव में लगी थी और मेरे पिता उस पैर से हमेशा के लिए मज़बूर हो गये थे । मेरी माता ने जोर डालकर लाहौर में ही रहने के लिए कहा और तब से हम लोग वहीं रहने लगे थे । मैं तब सचमुच विधवा थी । मेरे विधवा होने की बात ओठों तक भी न आये, यह माता का कड़ा आदेश था । मैं कारण जानती थी और अनागत के बारे में कभी कभी सोचकर सिहर उठती थी । क्योंकि उस उम्र की लड़कियों की भाँति मेरे लिए वह अनागत सुनहला नहीं बल्कि केवल अंधकार से भरा हुआ होता था जो कि मुझे स्कूल में, खेलते समय, पिकनिक में सब जगह ख़ाये जाता था । अकलंक ! कहो, चाय पीयोगे ? थक गये होंगे । मैंने तुम्हें बहुत थका दिया । ऐसा करने का मुझे कभी अधिकार रहा होगा, किन्तु आज तो वह मेरे पाम नहीं है । किन्तु तुम चाय पीयोगे ही । ब़रा ! ब़रा ! !”

आसमान जो कि थोड़ी देर पहले मेघाच्छन्न था इस समय एकदम साफ़, गहरा नीला लग रहा था, जैसे साबुन से धोकर किसी ने आसमान की छत को बादलों की रूई से पोंछकर कंसा चमकीला बना दिया है; एकदम नई कच्ची हल्की पीली धूप पेड़ों पर, मकानों पर, गंदे पानी के पाइपों जो कि दीवारों से लगे हुए हैं उन पर, अहातों की मेंहदियों की झाड़ियों पर, एक एक फूल पर और लॉन की दूब पर बरस रही है । घरों से निकलकर चच्चे, धुले हाफ़पैन्ट और सफ़ेद रंगीन कमीजें पहने, फ़ॉक पहने उस सिरे वाले मैदान में खेलने के लिए इकट्ठा हो गये हैं । बरसात में ज़िदगी, घरों में बन्द थी, मगर धूप निकलते ही नये-नये उजले उमदा कपड़ों में ज़िदगी, घरों से बाहर निकल आयी है । बिजली के खम्भों पर लगे सारे पोस्टर गीले हो गये हैं । बिजली के तार में उल्टी लटकी

हुई मरी चमगादड़ गीली होकर अब धूप खा रही है । छोटी-छोटी चिड़ियाँ तारों पर एक साथ कतारों में बीसियों की संख्या में बैठी हुई शोर कर रही हैं । सामने के मकबरे में देखने को गये हुए कई लोग उसके टूटे गुम्बदों में खड़े धूप की ओर मुँह किये हैंस रहे हैं । दूर की सड़क पर किसी सिनेमा के बहुत सारे पोस्टर, रिक्शों पर लगे हुए या लड़के अपने कंधों पर उठाये हुए बंड बजाते हुए चले जा रहे हैं । सड़क की आधी जली बीड़ियों को उठाकर धौंकनेवाले शैतान लड़के सड़क पर गिरे हुए हैडबिलों को उठा-उठाकर उनकी गोल गोल नलियाँ बनाकर बैड़वालों की नकलें करते जा रहे हैं । रंजना ने बताया था कि यह जो अशोकों से घिरा हुआ अहाता है, प्रान्तीय राज्यपाल के राज-भवन का पिछला भाग है —जहाँ कि उनके अहाते में 'अधिक अन्न उपजाओ आंदोलन' के ज़माने में शौक्रिया गेहूँ बोया गया था और जिसके लिए दो ट्रैक्टर दिन रात काम करते हैं, जहाँ कागजों पर फसलें उगा करती हैं, उन्हीं ट्रैक्टरों की आवाज़ें इस समय आ रही हैं । 'कॉन्सिल हाउस' का वह ऊँचा गुम्बद इस समय गीला धूप खा रहा है —जहाँ की चारदीवारी में पीली फ़ाइलें लाल फ़ीतों से बँधी सड़ रही होंगी । आज छुट्टी है और भद्रलोक उम बैकवाली सड़क पर धुले सफ़ेद कपड़ों में अपने साँचे में ढले परिवार लिये घर से निकल पड़े हैं । इतना परिवार सुखी है, बाज़ारों की सड़कों के दोनों ओर खड़े हुए आलू-टिकिया बेचनेवालों के डेढ़ दो आने के बिल में । लोगों के कंधों से लड़भिड़कर, या फिर कोई सस्ती सी आइसक्रीम खाकर, किसी सड़े-गले सिनेमा के धार्मिक कृष्ण की उछल कूद देखने के लिए ये भेड़ों की तरह सिनेमा-घरों में घुस जायेंगे—बिना सोचे, निरर्थक, और इस तरह पूरी होगी इनकी मध्यमवर्गी उत्सव की भावना । दूसरा दिन—फिर वही आफ़िस की फ़ाइलें, अफ़सरों की बदमाशियाँ, झिड़कियाँ, सरकारी कमीनापन यहाँ से वहाँ तक, चंद चाँदी के रुपयों में वेश्याओं से भी गया बीता यह मध्य-वर्ग और उससे भी अधिक सड़ाँध भरा बूर्जुआ-वर्ग, जो एकदम कांजी हाउस में बंद कर देने के क़ाबिल, अपनी मोटरें धुलवा-पुछवाकर पाउडर पोते हुए इस समय घरों से निकलने को है ।

मैं खिड़की के पास खड़ा हुआ इतना मारा क्यों सोच गया हूँ, इस पर जब मैं सोचने लगा हूँ तो कारण मेरी समझ में स्पष्ट हो गया है कि रंजना उधर दूसरे कमरे में कभी की जा चुकी है और मुझे बेलगाम घोड़े की तरह सोचने की छूट मिली हुई है कि मैं खुद सोच डालूँ और अजीब सा सोचकर चाहूँ तो दिमाग़ में भारीपन भी भर सकता हूँ, रोकने के लिए इस समय मेरे पास में कोई नहीं है । मुझे यह मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि रंजना में सभी कुछ 'अति' रूप में है और यही इसे इस धरती के किसी छोर पर भी साधारण बनने नहीं देगा । सुख की बात तो दूर की बात है । मुझे यह मानने में संकोच नहीं है कि रंजना के प्रति मैं बहुत ही आकर्षित हूँ, और मैं इस आकर्षण को उचित भी ठहरा सकता हूँ, क्योंकि मेरे पास प्रमाण हैं । किन्तु रंजना से कभी स्पष्ट नहीं कहा कि यदि मैं अकलंक नहीं हूँ तो वह मेरे प्रति रुझान रखेगी कि नहीं ? अकलंक के कंधों पर मिर रखकर वह कई बार रावी की लहरों पर, कूलों पर बैठी होगी ; तभी तो उसने थोड़ी देर

पहले कितने निःसंकोच भाव से मेरे कंधे पर सिर झुकाया था। किन्तु अलग से उसके इस व्यक्तित्व में मेरी आवश्यकता है या नहीं, इसका स्पष्टीकरण मैं चाहते हुए नहीं चाहूँगा, क्योंकि वह खतरे में खाली नहीं है, वह संशय की गहराई है। वह कहती है कि मैंने यह नहीं पूछा कि मिस्टर कुलकर्णी कौन है ? इस नाम का व्यक्ति हो भी सकता है और नहीं भी। क्योंकि न तो मैंने देखा है और यहाँ भी लोग व्यक्ति की चर्चा भर करते हैं, व्यक्ति को देखा किसी ने नहीं है, ठीक है, वह मिलिट्री में है, मगर इससे क्या ! मिलिट्री में ओरों के भी पति हुआ करते हैं, पर रहस्य बनकर तो नहीं न ? तो फिर मिस्टर कुलकर्णी को यह रहस्यमय क्यों बनाये हुए है ?

और सामने का परदा ऊँचा करते हुए रंजना बोली—

“आओ अकलंक ! इस पीछेवाले बरामदे में चलकर चाय पीयेंगे। देखते हो, मिस्टर कुलकर्णी को बागवानी और सब्जियों में कितना प्रेम है !”

कितनी सफाई से समझ में आ जानेवाला झूठ बोलकर भी कोई व्यक्ति चेहरे को कितना गम्भीर बनाये रख सकता है, इसका प्रमाण मेरे साथ चलती हुई यह नारी है। मिस्टर कुलकर्णी जो यहाँ कभी आये भी नहीं है और उनकी प्रशंसा के लिए यहाँ सब्जियाँ उगायी जाती हैं। ये लोग समझते हैं कि सामनेवाला व्यक्ति एकदम मूर्ख है। जी में आये उतना झूठ बोलने चले जाओ, और शायद मोचते हों कि समझ भी जाने दो, सभ्यता में कुछ कहना नहीं हो पाता।

“जी हाँ, इसमें क्या शक है।”

“हाँ अकलंक ! यहाँ की सब्जियाँ खूब उम्दा किस्म की होती हैं, पर ये यूपीयन लोग बिलकुल भी पकाना नहीं जानते। हमारे पंजाब में घी-दूध के अलावा ऐसी सब्जियाँ नहीं मिलतीं। मेरे पति लिखा करते हैं कि उनके महाराष्ट्र में ऐसी सब्जियाँ नहीं होतीं।

और रंजना ने माली के हाथ से खुर्ची लेकर शौकिया ढंग में छोटी-छोटी नालियाँ बनानी शुरू कीं।

पश्चिम का आकाश अब धीरे-धीरे गुलाबी रंग में भरता जा रहा है और साँझ के पतले शीने बादल रंगीन चँवरों की भाँति पेड़ों के ऊपर उड़ रहे हैं। ढेर सारी चिड़ियाँ झुंड की झुंड में ‘चीं-चीं’ करके उड़ रही हैं। मुझे मेरे गाँव के पास की साँझ याद आ रही है। इससे भी अधिक जब साँझ हो जायगी तब ऊँची नीची छोटी-छोटी पहाड़ियों से लोग अपने हलों को लेकर लौटेंगे। कच्चे रास्तों की धूल पर हलों के चपटे लकड़ी के घिसटते हुए डंडे चौड़ी मोटी रेखाएँ बना देंगे, वैसे ही जैसे कोई अजगर इधर से गया हो। गाँव के पास के खेतों के करीब के पेड़ों पर चिड़ियाँ मार शोर करती हुई कुछ भी नहीं सुनने देंगी और इसी शोर को चीरता हुआ किसी मोर का शब्द सुनायी देगा। जंगलों से लौटे हुए बैल गाँव के पास के छोटे से नाले में ढेर सारा पानी, अपनी काली थूँधों को गीला करते हुए पी लेंगे। धीमे-धीमे बहते हुए उस नाले के काले-उजले किन्तु एकदम सतह तक साफ़

दिखायी पड़नेवाले पानी की छाती पर छोटे-छोटे पानी पर उड़नेवाले भुनगे, जल पर तेज तेज रेखाएँ बनाते होंगे । नाले के करीब कहीं-कहीं उगी हुई किसी खजूर या सुपारी या फिर ताड़ पर बया का घोंमला भूरा-भूरा सा एकदम निर्जीव रंग में टँगा हुआ होगा । अचार की छोटी-छोटी झाड़ियों में मकड़ी के सफेद जाले, साँप के बिल, सब बैसे के बैसे अभी तक होंगे । गाँव के करीब के उस शिवाले के भगवे झंडे की छाया लेकर नाले का पानी बराबर बहता होगा । गाड़ियों के ऊँचे नीचे रास्तों में इस समय आने-जानेवाली गाड़ियों में धूल ही धूल भरी होगी । गाँव के पास बने हुए खलिहान गोबर से लिपे-पुते इस पियराती साँझ में खूबसूरत लग रहे होंगे । गाँव के भंगियों के वे सूअर अपनी लम्बी-लम्बी थूथें लिये हुए गाँव के घरों को सूँघते फिर रहे होंगे ।

मैं बहुत बहक गया हूँ, रंजना मेरी ओर बराबर घूरती हुई देख रही है । मुझे हल्की झेंप का अनुभव हो रहा है कि यह मुझे क्या समझ रही होगी कि यह भी कैसा अतिथि है; आज ही दोपहर आया है और कैसा निश्चिन्त, जैसे जाने कब से रंजना के साथ रहता आया है और आज इसके जाने का प्रश्न ही नहीं उठता है, कौन जाने कब तक इसे यहाँ बैठे रहना है !

“अकलंक ! मैं देखती हूँ, उम रूमाल के देखने के बाद तुम्हारे मन में कहीं से भी कोई उत्साह, जिज्ञासा, प्रश्न, तूफान, कुछ नहीं उठा ।”

और वह मेरे सामने की कुर्मी पर बैठ गयी है । संज्ञाने 'काश' में उसके बाँफकट वालों ने बहुत सारी जगह घेर ली है । ललानी पश्चिम में उसका चेहरा कितना बड़ा होकर उसमें बिछ गया है और उसके कानों की वे वालियाँ क्षितिज में एकदम टंक सी गयी हैं । उसकी गर्दन भर आसमान में है और बाकी फिर तो नीचे में दूर का क्षितिज आ जाता है । मैं एक क्षण के लिए मोच जाना चाहता हूँ कि काश रंजना ! तुम ऐसे ही आसमान में घिर जानेवाली नारी होती तो मैं—मैं ही क्या कोई भी तुम्हारी पूजा करता । किन्तु आज, इस आज के बारे में मैं नहीं जानता कि तुम्हें प्यार ही कबूँगा यदि तुम मेरी चाह की सीमा में आ भी जाओ तो । क्योंकि तुम्हें धृणा करना कदाचित् सरल है, किन्तु तुम्हें चाहने के लिए क्या कुछ न चाहिए ? यही एक प्रश्न अनेक रूप में तुम खड़ा कर रही हो । तुम आममान में नहीं हो, तुम ठीक कमजोरियों और तथाकथित रूप की उपमाओं से मंडित इस सामने की कुर्मी पर बैठी हो । आकाश में साँझ, मात्र लाल होगी; तुम यहाँ पर ठीक सामने की कुर्मी पर बैठी हुई थोड़ी ही देर में चाय पियोगी और अपने जलते कड़वे जीवन की कुछ चिनगारियाँ, जो बतानी उचित होंगी, बताओगी; शेष सब तुम्हारे मन के तिलिस्म में अनकही बनकर जाने कब तक के लिए दुर्गन्ध देती रहेंगी । तुम उस दुर्गन्ध को दूर करने के लिए कि कहीं कोई समझ न जाये, अधिक से अधिक रंग-पोतकर छुपाओगी, और एक दिन वह आयेगा रंजना, जब तुम बिना कहे रह नहीं पाओगी किन्तु उस दिन कोई होगा भी सुननेवाला ? यह भी तो तुम्हें सोचना चाहिए, क्योंकि तुम

तो आज तलक 'एक के बाद दूसरा' के क्रम में विश्वास करती आयी हो; किसी कारण से ही—कारण कोई नहीं देखता। किसे इतनी फुर्सत जो तुम्हारे जीवन के बंद दरवाजों को खटखटा कर देखने की चेष्टा करे कि तुम क्या हो! तुम तो वह हो जो रंगे पुते हुए, सड़क पर हो। घर सबके बंद हुआ करते हैं। समाज घर की चौखट नहीं पार करता।

“रंजना ! तूफान और उत्साह में नहीं जानता, किन्तु प्रश्नहीन नहीं हूँ। पर यह जानता हूँ कि सैयद की रंजना ने प्रारंभ अतिमानव के रूप में किया है और उस अतिमानव.....”

मेरा वाक्य भी उसने पूरा नहीं होने दिया और बड़ी ज़ोरों से टेबल पर झल्लाकर हाथ पटकते हुए उसने बोलना प्रारम्भ किया है—

“फिर वही बात अकलंक ! मेने तुमसे पूछा था कि कोई जिज्ञासा, प्रश्न, तूफान कुछ नहीं उठा ? और तुम मुझे अतिमानव के रूप में समझकर यथार्थ से विलग कर देना चाहते हो। क्या अतिमानव के सुख-दुःख अन्य जनों से भिन्न होते हैं ? क्या जिज्ञासा द्वारा उत्पन्न हुई वेदना, प्रश्नों के अंगारे और तूफान के थपेड़े—उस अतिमानव को नहीं छू पाते ? शायद तुम जो कहना चाहते हो वह यह कि अतिमानव सहता तो अन्य जनों की भाँति ही है, पर सहने की पीड़ा, अनुभूति वह अपने में अनुस्यूत कर लेता है। और अपनी अनुभूति को व्यक्तित्व में समाहित कर विलकुल चट्टान की भाँति निर्मम हो जाता है—है न ? पर यह तुम्हारा भ्रम है। अतिमानव के अहम् पर चोट करो वह चूर हो जायगा। अकलंक ! मैं कुछ नहीं मानती, क्योंकि मैं जिज्ञासा नहीं करती। प्रश्न अब मन में नहीं उठते और तर्क की बात न चलाओ, क्योंकि मेने असाधारण अस्वीकृति से अपने निकट इनका अस्तित्व ही नहीं, 'संज्ञा' तक मिटा डाली है। सुनहली धूप, ध्रुव का अडिग तारा, सप्तऋषि का अनादि प्रश्न-चिन्ह, एक क्रम और इस क्रम का भी व्यतिक्रम, यही तो है जिसे तुम सब ज्ञान कहकर अपने अपने 'अहम्' की परिधियाँ खींचकर उसमें अपने को प्रतिष्ठित कर नियन्ता बने हुए हो। समाजहीन इन अतिमानवों की दुर्गन्ध से, देखते नहीं, इतिहास मँधियाता है। तुम कहते हो, प्रश्नहीन नहीं हूँ—मुझसे कैसा प्रश्न तुम्हारा ? मुझसे सत्य, समाज, सत्ता किस सम्बन्ध में प्रश्न करोगे ? नारी के पास सब प्रश्नों का एक ही उत्तर होता है अकलंक ! ठोस उत्तर !! वह है उसका शरीर !! इस उत्तर के पाते ही तुम प्रश्नहीन हो उठते हो। मिथ्या परिभाषाएँ देकर तुम सब ठग सकते हो—परम्परा की दुहाई देकर, चरित्र के यशः श्लोक उच्चारित करते हुए तुम सब कुछ कर सकते हो; किन्तु हमारे मन की पीड़ा, मर्मन्तक पीड़ा—तुम्हारे सारे विश्वासों का खंडन करने के लिए प्रहार है। तुम्हारे इन सब कल्पना-रूपी आदर्शों से ऊँची है वह, अकलंक ! क्योंकि हमारे व्यक्तित्व पत्रहीन साईप्रेस की तरह नंगे खड़े पुकारने लगते हैं कि “देखो, हम दिगम्बर हैं !!” पीड़ा हमें मोहहीन कर देती है, यन्त्रणा निर्विकार करती है और तब हमारी सारी केंचुल छिन जाती है और हम चिकने बने सरकने लगते हैं। अपने आप का विश्वास आ जाता है। जो हमें कमज़ोर बनाता है

वह है मृत्यु का भय । हम परम्परा का पालन, नीति की झूठन खाने के लिए दौड़ते हैं क्योंकि हमें अपने आप पर अविश्वास करना सिखाया जाता है, जब कि हम आशा करते हैं कि संसार का सब कुछ उचित, अनुचित मात्रा में हमारे पास हमारे बिना चले ही आयेगा । तुम कहोगे कि मैंने जो पाया वह अनौचित्य था, अननुपातिक था । किन्तु यह मैं नहीं जानती क्योंकि जानने की इच्छा ही नहीं है । न मुझे अपेक्षा ही है और न उपेक्षा ही । तटस्थ इसलिए नहीं रही क्योंकि वह जड़ की भावना है । वही इसलिए कि कौतूहल मात्र नहीं था इसमें, वरन् स्थैर्य कही मुझे मिट्टी न बना दे इसलिए धावमान रही । इसमें मुझे कुछ भी प्राप्त हुआ हो—कड़वा या मीठा—वह मेरा अपना अर्जन था, गुणात्मकता थी, स्वत्व था । अर्जन इसलिए किया कि नारी का शरीर तुम्हारा ऋण है, और ऋण चुकाने में मेरा विश्वास चाहे प्रारम्भ में न रहा हो, असहमति तो कभी नहीं थी ।—जिस समय तुम मुझे पहली बार अनारकली के उम मोड़ पर मिले थे अपनी मौमी के साथ, मुझे खूब याद है कि तुम्हारी आँखें देखकर मुझे जानते हो किमकी याद आयी थी ? कह दो नहीं मालूम ! कितनी बार तब कहा था, और कितनी बार कहलाना चाहोगे अकलंक ! वे थीं सैयद की आँखें !! वैसे ही तुम्हारी आँखें आज तक उनमें कहीं कोई बदलाव नहीं आया । उन आँखों में केवल एक बात थी और वह थी, मेरे शरीर को चबा जानेवाली तीव्रता, और उसने इसे उम 'शवे-जश्न' को स्वीकारा भी था ।"

रंजना ने अपनी दोनों हथेलियों में अपनी आँखों को ढँक लिया है । इस बार मैंने ही चाय बनाना उचित समझा, क्योंकि रंजना अपने आप को स्वस्थ बनाने में लगी हुई थी । मुझे यह सोचकर अपने आप में हल्की घृणा भी हो रही है कि मैं जाने क्या सोचकर रंजना पर अविश्वास करने की बात तक मन में ला सका हूँ । छिः छिः, हम दूसरे के सहज विश्वास में कहे गये यथातथ्य पर मन ही मन नाक-भौंह मिकोड़कर कितने छोटे बन जाया करते हैं । हमसे तो वह कहनेवाला कदाचित् महान हुआ करता है जो सामनेवाले के विश्वास के आधार पर अनकहा कहने में भी हिचक नहीं अनुभव करता । और एक हम हैं, बिलकुल सहानुभूतिहीन, साथ ही माहम की कमी से भरपूर दब्बू, डरपोक !

चाय में चीनी मिलाते हुए रंजना के प्रति मेरा कितना प्रेम उमड़ आया है, यह चीनी के लिए हिलते हुए चम्मच से कोई भी समझ सकता है । क्योंकि इस समय रंजना मेरी दया के पात्र से कम बिलकुल नहीं है । इतनी निःसहाय देखकर मेरा मन चीख पड़ने के लिए हो रहा है और मैं ऐतिहासिक किसी अतिमानव पात्र की भाँति दाहिना हाथ थोड़ा ऊँचे उठाकर स्वर्गिक ऊँचाइयों से बोलने के ढंग पर कह सकता हूँ कि "रंजना ! मैं जो हूँ तुम्हें किस बात की चिन्ता !!"—किन्तु मैं अपनी पहुँच की सीमा न जानता हूँ सो नहीं है, और यही विवेक मुझे रोके हुए है, क्योंकि मुझे ठीक दो घंटे बाद की कानपुर की गाड़ी से बनियानों का सौदा ठीक करने के लिए लौट जाना है । मेरा मित्र पुरी क्या समझेगा कि उसके ठीक बगल में रहनेवाली रंजना को मैंने किस सीमा तक पाया है और वह कदाचित्

जानना चाहेगा भी नहीं क्योंकि उसे बैंक की डाइरेक्टरी स अवकाश ही नहीं होगा। अवकाश ऐसे किसी को कभी नहीं हुआ करता, मुझे ही कब मिला है ?

चाय के दो-तीन घूँट पीते हुए रंजना के मुँह पर कितनी लम्बी मुस्कान ओंठ के एक छोर से दूसरे छोर तक दौड़ गयी है। नारी-सुलभ लज्जा रंजना मे मैंने बहुत पायी है जो अच्छी लगती है, विशेषकर उसका दाँतों में ऊंगली को काटना। पर इस समय वह और अधिक सुन्दर शायद इसलिए भी लग रही है क्योंकि भावों का तूफान एक बार बरस चुका है।

“अकलंक ! जब मुझे यह मालूम हुआ कि तुम अनारकली में ही अपनी मौसी के संग रहते हो तो मैंने उस दिन के बाद से तुम्हारे मकान को खोज निकालने की कितनी चेप्टा की थी, शायद तब तुम नहीं जान सके थे। लेकिन जब वह चेप्टा मैंने बताया थी तब दरिया के किनारे बैठे तुम और मैं अखरोट खाते हुए कितना हँसे थे कि पेट में दर्द तक हो आया था।”

मैं जानता हूँ कि मैंने अखरोट कभी नहीं खाये हैं, पर मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि मेरी वह कौन सी मौसी थी जो अनारकली में रहने गयी थी और मुझे भी तब जाकर वहाँ रहना पड़ा था जिसके कारण लाहौर जैसी जगह में फिर अखरोट भी खाने पड़े। ओफ़ रंजना ! मुझे कितनी सहानुभूति है तुमसे। तुम किस सीमा तक, किम अकलंक के स्थान पर मुझे समझ रही हो, तुम क्यों नहीं मानती कि मैं अकलंक नहीं, और तुम्हारे साथ कभी अखरोट नहीं खाये हूँ। मगर वह बोल रही है—

“जानते हो उन दिनों मैंने दो आदमियों को एक साथ चाहा, हालाँकि उन दिनों तुम पर भी यह अभिव्यक्त नहीं होने दिया, किन्तु आज जब कि तुम इस सीमा तक दूर जा चुके हो कि जैसे हम और तुम कभी मिले ही नहीं थे और यदि मिले भी हों तो मुझे याद होने से ही क्या होता है, तुम तो विलकुल ही भूल चुके हो। पुरुष, समय का व्यवधान पड़ने पर, देखा गया है कि दुष्यंत बन जाने में ही सारा कौशल समझता है। मैं कालिदास की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकती, जिसने पुरुष मात्र का प्रतीक लम्पट राजा के रूप में चुना; कला के लिए उसने उस लम्पटता को धो डालने के उपाय क्यों न खोज निकाले हों; और फिर अकलंक ! उपाय कौन नहीं खोज निकालता ? वह जो दूसरा व्यक्ति था, वह टेनिस का बहुत अच्छा खिलाड़ी था। मैंने उसे कालेज-ग्राउंड पर पहली बार देखा था और यह नहीं हुआ कि देखकर एकदम मोह होगया हो। नहीं, मुझे उसमें आकर्षण खोज-खोजकर बिठलाने पड़े। किन्तु मैं मजबूर थी, मन किसी को बिना चाहे अब नहीं रह सकता था। तुम आये अवश्य, किन्तु उस समय तक मैं टेनिसवाले उस नन्दलाल को चाह की सीमा में ला चुकी थी। वह नन्दलाल तो मुझे पाकर जैसे निहाल हो उठा। बिना मेरे वह कोई मैच नहीं खेल सकता था। खेलता और जीतता था वह अपनी मेहनत से, और शोहरत मेरी होती थी। राबी के किनारे कितनी बार उस मूर्ख ने मेरी कसमें खायी

थीं। मैं उसे मात्र चाहती थी और वह चाहकर बहुत कुछ पाना चाहता था, जब कि मैं बिना पाने की इच्छा किये हुए ही चाहने का निश्चय किये हुए थी। क्योंकि एक बार बल्कि पहली बार का पाना मुझे जब आज तक गरम सलाखों की तरह याद है, तब तुम आये। नन्दलाल दूर होते हुए क्षितिज की तरह तब लगा। किन्तु अकलंक ! नन्दलाल प्रत्येक क्षण मेरे लिए अपनी अनिवार्यता सिद्ध करना चाह रहा था और मैं अकलंक के जीवन में अपनी आवश्यकता सिद्ध करने पर लगी हुई थी। तुम नन्दलाल को कदाचित् भूल गये होगे, और उचित भी है, क्योंकि विगत को न भूलनेवाला या तो पागल हो जाता है या फिर आत्महत्या कर लेता है। मैंने अपने साथ यह दोनों ही किया है, तभी तो न मैं पूरी पागल ही हुई हूँ और न आत्महत्या की तरह अपने को सबसे विलग ही कर सकी जीवन भर के लिए। सबकी सहानुभूतियों से दूर, उपेक्षा और घृणा की पात्र !! किन्तु मैं दूसरे के भावों पर रोक नहीं लगा सकती, वे सोचें जो भी मन में आये। मेरे पति कुलकर्णी हैं, उन्हें मुझसे कोई भी शिकायत नहीं; किन्तु हम साथ नहीं रह सकते। मैं यह उनसे कह चुकी हूँ कि किसी भी सीमा तक मुझे झुकना पड़े, मैं झुकूँगी, क्योंकि मुझे पत्नी कहलाना जरूरी है। क्यों मैं ऐसा चाहती हूँ, यह कहीं मत पूछ बैठना अकलंक ! क्योंकि यही तो रंजना है। और सब कुछ दे सकती हूँ किन्तु रंजना की अब और दे सकने की सामर्थ्य एवं शक्ति स्वयं रंजना में भी नहीं है। यही तो वह बात है अकलंक ! जो मेरे पति नहीं समझ पाते हैं। मेरे पति ही क्या, कोई भी नहीं। शायद अकेले सैयद को ही मैंने पूरी तरह रंजना सौंपी थी। शायद नहीं, नारी केवल एक ही पुरुष को सब कुछ दे पाती है। बार बार उससे आशा करोगे तो, विश्वास रखो, वह जुठलाहट से अधिक कुछ भी नहीं होगा। पहला पुरुष, अच्छा हो या बुरा, सब कुछ ले सकता है, किन्तु बाद में तो वह दया, करुणा या कोई एक चीज ही दे पाती है। तुम उसका शरीर पा जाते हो तो समझते हो कि उसका मन भी ठीक उसी तरह पा गये जैसे आठ रुपये में एक मुर्गी खरीद ली है—जो तुम्हें अंडे भी देगी और वक्त पड़ने पर गोश्त भी। अंडे या गोश्त जैसी कहीं भी कोई चीज नारी का मन या सचमुच की नारी नहीं हुआ करती। क्योंकि तुम सच मानो कि रंजना के पास वह नारी जो मैंने सैयद को उस जन्म की रात को दी थी होती, तो मैं तुम्हें इस नियम में अपवाद करके भी दे डालती। किन्तु हुआ क्या, रंजना की मात्र लोथ की दुर्दशा हुई। तुम सच मानो मुझे अपने से घिन होगयी। अपने ये लहराते हुए बाल काटने लगे जिनके कारण मैं अपने कालेज में प्रसिद्ध थी। नारी के व्यक्तित्व का बाहरी रूप तो कभी भी, कहीं भी मिल सकता है। तुमने देखा होगा, हर शहर में तरकारियों के मोलभाव पर कोठों पर शरीर, गोभियों के फूल की तरह सजाये जाते हैं। कदाचित् नन्दलाल को यह मालूम नहीं था और अगर होता भी तो पाप करने के लिए तो बहुत ही अधिक साहस चाहिए—पैसा देने के लिए साहस नहीं, बल्कि पैसा छीनने के लिए हाथों में बल की आवश्यकता है। तुम कहोगे कि मैं इसे पाप कह रही हूँ—किसी चीज की व्याख्या करो तुम, मैं बात करती हूँ, व्याख्या नहीं।

और पाप इसीलिए कह रही हैं क्योंकि आज तक ऐसी ही भापा पढ़ी है । किन्तु फिर एक बात कहे देती हैं कि अकलंक ! दयावश छिः छिः न कर बैठना, क्योंकि जो मुझे सबसे अधिक खलती है वह है दया और सहानुभूति ! !”

मैं देख रहा हूँ कि आममान एकदम अँगीठी की आँच की तरह लाल होकर मुलग रहा है । कितना गरम होगया होगा आसमान ! ! अब बहुत दूर गये वड़े-वड़े पंछी भी लौटने लगे हैं । हवा का चलना एकदम बंद है । यूकेलिप्टिस के मफ़ेद तने भूरी धरती पर ऊपर से रख दिये गये हों, ऐसे लग रहे हैं । आस्ट्रेलिया निवासी ऊँचे हुआ करते हैं, इसके प्रमाण में शुतुर्मुख और ये यूकेलिप्टिस मुझे याद आ रहे हैं । उधर पुरी की तरफ के बगीचे में नरगिस ज्यादा संख्या में फूली हुई है । क्यागियों के आमपाम कितने खूबसूरत तरीके से माली पालियाँ बनाता जा रहा है, जिसमें से छोटा-छोटा पानी खूबसूरती से बहता हुआ आये ओर गुलाब, नरगिस, चम्पा आदि बनकर मालिकों को रंग और गंध से प्रसन्न कर दे । पहले पानी, फिर फूल ! ! मुझे नरगिस और गुलाब के रंग और गंध आकर्षित करने लगे हैं ।

रंजना कहती है कि उसे दया और सहानुभूति की अपेक्षा ही नहीं बल्कि उसे इनमें चिढ़ है । वह शायद इतनी कड़वाहट लिये ज़िदगी जीती चली आयी है कि कोई उसकी और उँगली से टोक दे तो वह झल्ला उठेगी । उसे साथ ही कितना दर्प भी है । उस सब पर जो अनागत से वर्तमान और वर्तमान से विगत बनकर हमेशा के लिए बर्फ़ की तरह जमकर बैठ गया है और पीछे खसकने का नाम ही नहीं लेता । सैयद ने उसके अंदर की नारी के टुकड़े-टुकड़े करके हमेशा के लिए कुरूप कर दिया । रंजना कहती है कि वह लाचार थी अपने मन में । कदाचित् सहज है, मैं मान सकती हूँ कि क्योंकि पढ़ा है ऐमा, किन्तु व्यवहार में ऐमा देखने और सुनने को मिले तो मेरी आँखें जरूर ही फट जायेंगी । किन्तु यह भी मात्र धारणा है, क्योंकि ऐमा सब कुछ करने और कहनेवाले भी तो मेरी ही तरह के हाड़-मांस के हुआ करते हैं । किन्तु कोई ऐसा अपना मन कैसे बना लेता है ?

“तुम नहीं जानते अकलंक ! कदाचित् तुम यह सोच रहे होगे कि रंजना के मन में सहज दिखायी न पड़ने वाली खोट कब और कहाँ से आयी । मुझे फ़टियर वाले दिन याद आते हैं । सैयद बड़ा शौकीन तबियत का व्यक्ति था । वह अक्सर पेशावर, बवेटा और कभी-कभी सिंध हैदराबाद या नीचे लाहौर कराँची तक धावा मारता था । जब वह शहर से लौटकर आता था तो सदा फिरंगी औरतों की तस्वीरे और जो अधिकतर अधनंगी औरतों की ही हुआ करती थीं, ढेर सारी लाया करता था । कहा करता था कि रंजना ! आओ चलो तुम मेरे साथ और चलकर देखो ज़िदगी कितनी खूबसूरत चीज़ है । व्यर्थ मैं यहाँ दर्रों में पड़े-भड़े सड़ते हैं हम । मैं उन तस्वीरों की तरह अपने भी केश सँवारती थी । एकान्त में फ़ोटोवाली औरतों की तरह मैं भी अपनी टाँगे और जाँघें खोलकर चलने की चेष्टाएँ करती थी । पहले तो मुझे खुद शर्म लगती थी किन्तु बाद में मुझे भी आदत होगयी

थी—कैसी चिकनी-चिकनी गोरी जाँघें ! ! सैयद का हाथ जब बहुत ही मुलामियत से मेरी जाँघों और मेरी कमर के पास फिरता था तब मुझे हाथी दाँत के चिकनेपन की याद आ जाती थी। मुझे सैयद के गोरे चिट्टे जिस्म से तब और आज तक अकलंक ! कितनी मुहब्बत है यह मैं कह नहीं सकूँगी। मैंने सैयद से कई बार कहा कि आओ हम लोग काबुल भाग चलो। मैं घंटों बर्फ की घाटियों की ओर देखते हुए सोचा करती थी कि ऐसा कोई दर्जी मुझे मिल जाता जो इन तस्वीरों में पहने हुए कपड़ों की तरह मुझे भी कपड़े बना देता तो मैं भी महमूस करती कि किसी फिरंगी मेम से कम थोड़े ही हूँ ! जब सैयद अपनी दोनों हथेलियों के बीच मेरा मुँह दाबकर मेरी आँखों में झाँकने लगता था तब लगता था खूब सारी बर्फ की नरगिस आसमान से झर रही है और मेरा मन किसी ठंडी घाटी की तरह एकदम ठंडा होगया है। मुझे लगता था कि मैं सैयद के साथ एक दिन कंधे पर दुनाली टाँगे फिरंगियों के देश में इन दरों से होकर जाऊँगी और देखूँगी कि फोटो की तरह मचमुच ही उनकी आँखें नीली होती हैं ! . . . मुझे जब कभी मेरी माता तरह-तरह के बाल बनाये हुए देखती थी तो कहती थी कि 'यह तुझे क्या हुआ है राज ! तस्वीरोंवाली औरतों की तरह क्यों बाल बनाती है ?' और मैं किसी छोटी पहाड़ी पर चाँदनी रात में बैठकर सोचती कि कहीं से कोई ऐसा आ जाता जिसकी मोटी-मोटी मांसल बाँहों में अपने को एकदम ढीला छोड़कर बहुत प्रसन्न होने पाती। वह मुझे इतने पैसे, इतने बड़े महल और इतने नौकरों में घेर देता कि किसी सरदार को भी देखने को नसीब न होता। तब वगंधी में सवार होकर घूमती, प्रतिफल में मैं उसे अपने तन और मन का एक-एक रेशा तक दे डालती—फिर वह चाहे देना दिन में कितनी ही बार क्यों न हुआ करता—अकलंक ! तुम कहोगे कि मैं पागल थी, है न ? और आज कदाचित् मैं भी यही कहूँगी, क्योंकि ऐसा कहा जाता है। लाहौर की सड़कों पर आने पर धीरे धीरे मुझे स्पष्ट होगया कि तस्वीरों-वाली जिन्दगी न तो कभी किसी ने जी है और और न रंजना स्वयं ही जी सकेगी। सैयद ने जो यन्त्रणा मुझे दी, वह मैं क्या सहज भूल सकती हूँ ? जब हम घोड़ों पर सवार थे काबुल जाने के लिए, तब मेरा मन कितना प्रसन्न था। मैं प्रत्येक क्षण सोचती जा रही थी कि मेरे स्वप्न की हर चीज़ मेरे घोड़े की टाप के साथ कितने निकट, निकटतर होती जा रही है। पूरे रास्ते भर सैयद को चुप देख कई बार मैंने उसकी चुप्पी पर टोका भी, किन्तु वह 'कुछ नहीं रंजना !' कहकर चारों ओर शंकित होकर देखता चला जा रहा था। अरब के रेगिस्तान में, सुना था, ऐसे ही घूमते घूमते लोगवाग वादशाह और मलिका तक हो जाते हैं। और मुझे लग रहा था कि लाखों लोग सैयद और मेरे स्वागत में खड़े हैं। मैं मलिका थी और दूर-दूर तक भूरी छितरी सुनसान दिखायी पड़नेवाली धरती मेरी मिल्कियत सी लग रही थी। मैं तस्वीर की जिंदगी सैयद के साथ जी रही हूँ और तभी कहीं से एक गोली सन करती हुई हम लोगों के पास स निकल गयी। ईद के दूसरे दिन की बात थी वह। चाँद आसमान में टेढ़ा होकर निकला था। गोली की आवाज़ पर सैयद के चेहरे पर तब मैंने पहली बार भय की छाया देखी थी। हमारे

घोड़े हिनहिना रहे थे, और मैं तब छुहारा खाती चली जा रही थी। सैयद की बन्दूक उसके दोनों हाथों में घोड़े पर थी। उसने जिधर से गोली आयी थी अपनी बन्दूक का निशाना साधकर एक गोली दागी। मुनसान धरती पर वह गोली की आवाज़ 'माँय-माँय' करती हुई हज़ारों मील तक दौड़ गयी होगी, यह मेरा अनुमान था। सामने से बहुत दूर पर कुछ गोलियों की चमक दिखायी दी और 'पिट्-पिट्'....."

"चलो रंजना, हमें तेजी से घोड़े बढ़ाने चाहिए। शायद ये अफ़ग़ानी है, फिर चाँद थोड़ी देर में डूब जायेगा, तब हमें रास्ता नहीं मिलेगा।"

"मगर मैं तुम्हें झेलम के किनारों तक तो काली रातों में भी पहुँचा सकती हूँ, मेरा चप्पा-चप्पा देखा हुआ, जाना-पहचाना है।"

"मगर हमारे घोड़े तब तक ऊँची-नीची पहाड़ियों पर सरपट दौड़ रहे थे। मैं समझ नहीं पा रही थी कि हम झेलम की तरफ न जाकर उल्टे बड़े-बड़े दर्रों में भरी घाटियों की तरफ क्यों बढ़ते जा रहे हैं। . . . चाद डूब गया था, नक्षत्रों की मंदी भीगी रोशनी आसमान के काले जंगलों में मे आ रही थी। अब हम दर्रों में मे बहुत धीमे-धीमे साँस राक हुए कदम-कदम पर किसी गोली, किमी हमले की उम्मीद कर रहे थे। मैं सैयद को समझ नहीं पा रही थी। घोड़ों के पैर ऊँची-नीची जमीन पर बार-बार फिसले पड़ते थे। बायें हाथ पर बहुत नीचे खड़खड़ा दिखायी पड़ रहा था जो कि जरूर ही इस दर्रे का रास्ता होगा। जब दर्रे का रास्ता इतने पाम में ही है फिर सैयद क्यों इस बीहड़ रास्ते पर होकर चल रहा है? दोनों तरफ इतने ऊँचे पहाड़ थे कि ऊपर का आसमान अब मात्र एक काले कपड़े की चिन्दी सा लग रहा था। किमी भी क्षण घोड़े टोकर खाकर हज़ारों फीट नीचे गिरकर जान दे सकत हैं और ले भी सकते हैं। अंधेरे में सैयद की शकल नहीं दिखायी पड़ रही थी किन्तु मैं अनुभव कर रही थी कि सैयद बहुत डरा हुआ है और किसी भारी खतरे की वह उम्मीद कर रहा है जिसके बारे में वह कुछ भर ही जानता है, बाकी का उसे खुद भी पता नहीं। मैं साफ समझ रही थी कि दर्रों में इस तरह इन काली रातों में आकर मैंने अच्छा ही नहीं किया बल्कि भारी भूल की। सामने का रास्ता तो फिर भी कुछ साफ़ दिखलायी दे रहा था। किन्तु पीठ पीछे का रास्ता तो अंधकार का गट्ठर सा लग रहा था जिसे रात का ईरानी जैसे अपनी पीठ पर लादे हुए दर्रों में से चला जा रहा है और जिस गट्ठर में बहुत किस्म के चाकू-छुरियाँ होंगी जो छूते ही आँत बाहर निकाल सकती हैं; और सारे शरीर में एक बारीक फुरेरी छा गयी।

सैयद ने बहुत ही फुसफुसाते हुए कहा—

"रंजना! तुम यहाँ खड़ी रहो और मेरा घोड़ा भी सम्हाले रहना। मैं कोई दो फ़लांग तक देखे आता हूँ कि रास्ता साफ़ है या नहीं। यदि डर मालूम हो रहा हो तो लो यह मेरा पिस्तौल, क्योंकि कबालियों की आमद-रफ्त इधर से हुआ करती है।"

"मैं सैयद से पूछना चाह रही थी कि आखिर हम लोग तो पेशावर जा रहे थे, शहर

की ओर जा रहे थे और यहाँ उल्टे किधर और क्यों जा रहे हैं ? मगर मुझे लगा कि सैयद से ऐसा पूछकर मैं अच्छा नहीं करूँगी । क्योंकि वह मुझे क्या समझेगा कि जब मैं सैयद के साथ कहीं भी जाने को तैयार हूँ तो फिर इन दरों और काली रातों का सवाल ही कहाँ उठता है ! वह अपनी पिस्तौल देकर और अपने घोड़े को वहीं छोड़कर धीमे-धीमे अंधकार में खो गया ।

“एक क्षण को मेरा मन काँप गया । जानते हो अकलंक ! मैं तब मुश्किल से तेरह चौदह की रही हूँगी । मुझे उस समय केवल माता और पिता याद आ रहे थे । उस शाम मैं बिना किसी से कुछ कहे ही, बकरियों का दूध निकालकर, “हमीदा के घर से आती हूँ” कहकर घर से चली थी । सैयद तीन दिन पहले से घर से गायब था । सैयद की बहन हमीदा गाकर कुरान इतना मीठा सुनाती थी कि आसपास तक उसकी प्रसिद्धि थी । हम लोगों के घरों में कोई खास दूरी तो नहीं थी, पर बीच में एक फ़र्लांग का सुनसान ज़रूर पड़ता था । हमीदा से मिलकर जब लौटी तभी रास्ते में दो घोड़े लिये सैयद मुझे मिला और सोचने का वक्त भी दिये बिना मुझे तय करना पड़ा, और हम लोग कितनी सावधानी के साथ भागे थे । पिता और माता जाने क्या सोच रहे होंगे ! शायद क़हर ही होगया होगा । सैयद का अब्बा महमूद और मेरे पिता ज़रूर ही घोड़ों पर सवार होकर अड़ोस-पड़ोस के कबीलेवालों के पास गये होंगे । उन्हें सपना भी नहीं आ सकता है कि सैयद के साथ इन काली घाटियों में मैं अकेली आयी हूँ और मेरा मन यह सोचकर रुआँसा हो उठा था अकलंक कि किसी की गोली मुझे आकर लग सकती है । कोई दो अफ़ग़ानी मुझे आकर पकड़ सकते हैं और तब मुझे वे लोग मेरी मुश्कें बाँधकर काबुल में बेचने के लिए ले जा सकते हैं और तब मैं तस्वीरों की मलिका की तरह न होकर खरीदी गयी गुलाम लौडियों की ज़िंदगी बसर करूँगी—और मेरा मन चीखने को हो रहा था । तभी सैयद हाँपता हुआ था सा और शायद पसीने से चूर, लौटा । हम लोग अब सम्हल कर नीचे दर्रे के रास्ते की ओर उतरने लगे ।”

“सैयद ! हम लोग कहाँ जा रहे हैं ?” उसने दूसरी तरफ़ मुँह किये जवाब दिया— वह खुद ज्यादा नहीं जानता । सैयद के एकाएक इस तरह हो जाने का मतलब मैं समझ नहीं पा रही थी ।

“थोड़ी ही देर बाद हम लोग दर्रे में उतरकर चल रहे थे । हमारे ठीक सामने ध्रुव नक्षत्र दीख रहा था और मुझे लगा कि शायद हम खैबर या कोई वैसा ही दर्रा ज़रूर पार कर रहे हैं, मगर क्यों ? और तभी तेज़ टार्च की रोशनी अंधकार में से चमक पड़ी—और कड़कती आवाज़ भी—

“सैयद ! घोड़े वहीं छोड़ दो और ऊपर चले आओ ।”

“मुझे साफ़ होगया कि हम लोग ज़रूर ही या तो कवालियों या फिर बलूचियों या अफ़ग़ानियों के शिकंजे में फँस गये हैं । सिज समय हम लोग उन लोगों के बीच पहुँचे,

उनके साफ़ों के कुल्ले बता रहे थे कि वे काबुली हैं।

“जिस समय सैयद ने कहा कि मुझे इन काबुलियों के साथ जाना होगा क्योंकि उसे इन लोगों के पाँच सौ रुपये देने हैं, ये लोग सैयद से रुपया नहीं लेंगे अगर ये रंजना को पा जाते हैं तो—मेरा सिर धूम गया, मैं पागल हो उठी। मैं चिल्ला रही थी—

“सैयद ! मे तेरी बीबी हूँ—दुनिया का कोई खाविन्द अपनी बीबी के साथ इस तरह का सलूक नहीं करता सैयद !”

“वह तब धर्म की आड़ लेकर कहने लगा कि वह चार बीबी में ज्यादा नहीं रख सकता है। मैं उसके पैरों पड़ी, मगर अक़मोम अकलंक ! उस सैयद को पता नहीं क्या हो गया था। मैंने रुपये का प्रबन्ध भी कर देने को कहा मगर उसका उन काबुलियों के साथ सौदा पहले ही तय हो चुका था। मुझे उन्होंने मुवह होने तक के लिए घोंड़े की पीठ से बाँध दिया और वे लोग सभी शराब पीने में लग गये। मेरे सामने कोई रास्ता नहीं था। वे लोग शराब में औंधे पड़े हुए खुराटे भर रहे थे। मैंने किम तरह अपने दाँतों में उस रस्सी को काटा यह कोई नहीं जान पायेगा—मेरा एक एक दाँत टूटता जा रहा था और रस्सी कटती चली जा रही थी। आखिरी रात शुरू होना ही चाह रही थी और मैं जान रही थी अगर थोड़ी सी भी देर हो जायगी तो फिर हमेशा—हमेशा के लिए रंजना डूब जायगी। सामने अनन्त यातना और यन्त्रणा, गरम-गरम मलाखों की तरह लाल-लाल आँखें फाड़े हुए दिखलायी दे रही थी। मेरे सब दाँत टूट चुके थे। मुँह में खून ही खून भरा हुआ था, किन्तु मैंने रस्सियाँ काट डाली थी, और उन तीनों काबुलियों तथा सैयद को दो बार में ख़त्म किया। गोलियों की आवाज़ नीचे के दरों ने भी सुनी थी, इसके प्रमाण में प्रतिध्वनि मैंने भी सुनी थी। अकलंक ! उन कराहों के बीच सैयद की डरी हुई चीख मैंने सुनी। मैं टूटी हुई खजूर की तरह कंधे पर दुनाली टाँगे अपने घोंड़े पर लीटी। मैं पागल हो रही थी, इस ख्याल में कि उसके और भी बीबियाँ हैं और कोई शौहर पैमे की खातिर बीबी भी बेच सकता है।”

चाय का दूसरा कप अपने आप रंजना ने कितने उदास चेहरे से अपने कप में केतली से उँडेला है यह मुझे छुपा नहीं है। मुझे रंजना, प्रत्येक घटना के साथ अपनी मीनारी ऊँचाइयों में महान लग रही है तथा साथ ही उसके पैर दूसरी घटनाओं के कीचड़ में कैसे बदसूरती के साथ सने हुए दिखायी दे रहे हैं ! यूकेलिप्टिस की लम्बी-लम्बी पत्तियों और शाखों के साथ ढेर की ढेर चिड़ियाँ खेल रही हैं। लोहार की भट्टी की तरह आसमान में लाली कहीं से भी कम नहीं हुई है, और मैं हड़बड़ाकर अपनी घड़ी देखना चाह रहा हूँ क्योंकि मेरा विश्वास है कि पाँच से ज्यादा ही हुए होंगे और मुझे साढ़े पाँच तक जरूर चल देना है। अपने ज्ञान की बात पर पहली बार मेरा मन कड़वा हो रहा है। किन्तु जब मैंने घड़ी देखी और देखा कि अभी चार ही हुए हैं तो मेरा मन कितना प्रसन्न और जोश में था, इसका सबूत यही बے सकता हूँ कि आवेश में आकर मैंने एक घूंट में ही चाय का पूरा कप

खत्म कर दिया, और घूट को गले के नीचे उतारते वक्त लगा कि मेरे मुँह, आँख, नाक, कान, नसों सबमें सिर्फ हल्की गरम-गरम दार्जिलिंग की चाय भर गयी है और मैं अनुभव कर रहा हूँ कि प्रसन्नता में मेरी आँखें अवश्य ही छोटी होगयी होंगी और धुली हुई उजली सीपों की तरह उनमें चमक भी आ गयी होगी, जिसमें यह सामन का लॉन, पेड़, फूल, सब्जियाँ, आसमान और सामने बैठी हुई रंजना, उसके बालों की एक-एक लहर, गोल आँखों में दिखायी पड़ रही होंगी। और मैं एक क्षण को चाहने लगा कि काश मैं अपनी आँखों से रंजना का वह सब कुछ देख पाता जो सैयद के साथ उस तूफानी रात में बीता है। रंजना मेरी आँखों में दिखायी पड़ रही होगी, इस विचार से ही मैं उत्साह से भर गया हूँ। मुझे डर है कहीं जोश में केतली से गिरती हुई चाय से मैं टेबिल क्लॉथ न खराब कर दूँ और वही रंजना मुझे फिर फूहड़ समझने लगे। मैं सब सहन कर सकता हूँ किन्तु किसी स्त्री द्वारा फूहड़ समझा जाना नहीं। विशेषकर उसके द्वारा तो नहीं ही जो मुझे एक प्रेमी की तरह मानकर अपने जीवन भर की सारी अनकहनी बातें कहने पर तुली बैठी हो।

माली अभी-अभी सलाम करके गया है, कदाचित् वह बाहर का दरवाजा भी बंद कर चुका होगा। कमरे के अंदर की वे बारह रोशनियाँ अभी भी जल रही होंगी। उस चित्रवाले अफ्रीकी का चेहरा कैसा फ़ौलाद की तरह निर्जीव और दरियाई घोंड़े की भाँति खूँखार है। मेरा मन फिर उदास हो रहा है। मैं हँसना चाह रहा हूँ जिससे यह प्रकट हो कि रंजना मैं तुम्हारे निकट बैठकर सदा ही हँस सकती हूँ, तुम कितनी ही वैसी कहानियाँ क्यों न सुनाओ।

“अकलंक ! पता नहीं क्यों तुम्हें देखकर विगत का एक-एक पृष्ठ, एक-एक अक्षर उसका इतना स्पष्ट होता जा रहा है कि वस !! कहते हैं मरने के पूर्व स्मृति बहुत तेज़ हो जाया करती है। मैं जानती हूँ कि आज मेरी मृत्यु नहीं आ रही है, किन्तु स्मृति फिर भी जाने क्यों तेज़ होगयी है।

“मैं जानती हूँ कि तुम्हीं एकमात्र मुझे ऐसे मिले थे जो मेरे सामने नहीं झुके, वरना सब मेरे सामने झुके और इसीलिए मैंने किसी के साथ संधि नहीं की। संधि की थी तो दो व्यक्तियों से ही, पहले सैयद और दूसरे तुम. . . और वह वार्निकोलस तो. . .”

और वह पागलों की भाँति हँसने लगी है।

“जलो अकलंक ! तुम्हें गान सुनाऊँ। जानते हो, पियानो बजाने के लिए जब मैं वार्निकोलस के साथ थी तो आम्सटरडम में प्रसिद्ध हो चली थी। यहाँ भी मैंने एक के लिए ऑर्डर दिया है पर नहीं जानती कि कब आयेगा। अच्छा रुको, मैं बेला लाती हूँ और फिर तुम्हें कुछ बजाकर सुनाऊँगी। जानती हूँ यह सब सुनते-सुनते तुम्हारी कनपटियाँ दर्द करने लगी होंगी, किन्तु अकलंक मैं आज तक तुम्हारी प्रतीक्षा में थी कि तुम एक बार सब सुन लेते, मात्र सुन भर लेते। मैं इससे अधिक की अपेक्षा भी नहीं करती। मैंने कुलकर्णी से क्या चाहा था ? यही कि वह एक बार सुन भर ले। परन्तु सुनने के लिए

मनुष्य को पत्थर होना पड़ता है उतनी देर तक के लिए। तभी तो अकलंक ! देवता लोग मुनते समय पत्थर हो जाया करते हैं। तुम पूछोगे कि फिर देवता देवता क्यों नहीं हो पाते, पत्थर ही क्यों रह जाते हैं ? तो जानते हो मेरा क्या उत्तर होगा ? यही कि दिन भर लोग सुनाने के लिए पहुँच जाते हैं और बेचारे देवता कभी भी पत्थर से अलग नहीं हो पाते। और मेरा विचार है कि अब तो देवता भी भूल गये होंगे कि वे पत्थर के नहीं बल्कि और किसी चीज़ के भी बने हुए थे। इसीलिए ऐसा व्यक्ति चाहती थी कि मुनते समय वह पत्थर ज़रूर बन जाये किन्तु उसके बाद आदमियों की भाँति बोले अवश्य। इसीलिए मैं किसी की पूजा आज तक न कर पायी, क्योंकि मुझे आदमी की आवश्यकता थी।”

रंजना बेला लाने चली गयी है और मैं चाह रहा हूँ कि उठकर अब स्टेशन पहुँच जाऊँ। क्योंकि जब पूरी तरह रंजना को मालूम होगा कि मैं अकलंक वास्तव में नहीं हूँ तब उसकी प्रतिक्रिया किस सीमा की होगी, यह मैं भलीभाँति सोच सकता हूँ। स्टेशन पहुँच कर सोचूँगा कि किसी भी गाड़ी से लखनऊ छोड़ दूँ, क्योंकि इस लखनऊ में मुझे अभी और भी सुनाने की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति है। जो कुछ सुना, क्या वह मुझ जैसे साधारण जीवन बितानेवाले के लिए कम है ? क्या मैं कभी सोच सकता हूँ कि मैं इतने ऊहापोहों के बीच से से गुज़रकर, जी कर और आज फिर इस तरह किसी अजनबी के सामने बेला उठाकर बिना किसी संशय के बजाना शुरू कर सकता हूँ ? किन्तु रंजना ने ऐसा सब क्यों किया ? शायद कोई भी ऐसा नहीं करना चाहता। फिर ? मुझे कभी ख्याल भी नहीं था कि जीवन भर वनियानों की डिज़ाइनों और खपत के बारे में सोचनेवाले मुझ जैसे व्यक्ति को ऐसा सुनने को मिलेगा जो केवल उपन्यासों में लिखा मिलता है; इसीलिए मैं कभी उपन्यास नहीं पढ़ता; किन्तु मैं उपन्यासों से भाग सका ? आज उनमें का एक पात्र मुझे अपने मोहपाश में जकड़े हुए कितने मोहक दर्प के साथ मेरे निकट बैठकर अपनी कथा सुनाता रहा है, और अब उसका बेला सुनूँगा। आज मैंने उसके साथ बैठकर खाना खाया है, कॉफी और चाय और ड्रिंक तक किया है। सबसे मजेदार बात तो इन सबसे परे है कि उम पात्र ने मुझसे कितना पुराना नैकट्य भी स्थापित किया है। यह तो मैं हूँ जो जाने क्यों, कदाचित् डर के मारे ही, नहीं कह पा रहा हूँ—“हाँ रंजना ! मैं ही वह अकलंक हूँ।”

और रंजना मेरी वाँहों में होती। इतना रूप पाकर किसकी वाँहें नहीं भर जायेंगी ! इन्हीं हाथों में रंजना के वे गोरे लाल गाल होंगे जिन हाथों में हीजरी में गटठर गिना करता हूँ। किन्तु... और एक हाथ में गज और दूसरे में बेला लिये हुए आ रही है।

पहले बेला वह थोड़ी देर बजाती रही। बेला बंद हुआ और उसके बाद धीरे-धीरे बंशी के स्वर सा गीत उठने लगा....

आछे दुःख, आछे मृत्यु विरह दहन लागे
तबउ शांति, तबू आनंद, तबू अनंत जागे
तबू प्रान नित्यधारा, हासे सूर्य चंद्र तारा

बसंत निकुंज आसे विचित्र रागे
 तरंग मिलाय जाय, तरंग उठे
 कुसुम झरिया पड़े, कुसुम फूटे
 नाहीं बखय, नाहीं शेष नाहिं नाहिं दैन्य लेश
 सेइ पूर्णतार पाये मन स्थान मांगे

संगीत चल रहा है. . . फूल, तारे, इन्द्रधनुष, अप्सराएँ और स्वर्ग !! रंजना, संगीत और मैं !!

मुझे केवल इस समय यही लग रहा है कि मैं किसी झील के किनारे बैठा हूँ और पानी का नीला विस्तार ही स्वर्ग है, और लहरों की जलकन्याएँ मुझे स्वर की बाँहों से चारों ओर से घेर रही हैं।

गान समाप्त हुआ, मेरे मन में झटका लगा। किन्तु मैं जानता हूँ कि मुझमें माहस की कमी है, विशेषकर तब जब कि मुझे कोई चीज़ या बात प्रिय लगती है, किसी महिला की—तब मैं उसके विषय में तो नहीं ही कह पाता हूँ, चाहे और किसी बारे में कुछ भी कह दूँ, जब कि इसके विपरीत नारी अपनी हर चीज़ की प्रशंसा की अपेक्षा रखती है। किसी 'ममी' के ताबूत के पास बैठकर यदि उसके रूप की प्रशंसा कोई कर दे तो शायद है वह 'ममी' उसे सुनकर बाँहें फैला दे।

“अकलंक ! जानते हो कितने बरस होगये उस बात को जब तुम भी लाहौर से चले गये थे ? तुमने मेरी कोई चिन्ता नहीं की। मैं तुम्हारे निकट उपेक्षित से बढ़कर और क्या रही ? मैंने तब तक भलीभाँति समझ लिया था कि नारी के दो रूप हुआ करते हैं, एक तो वह चाहती है किसी दूसरे को, तथा विवाह किसी दूसरे से करती है। हो सकता है कि अधिकांशतः कुछ केवल चाहती है विवाह नहीं करती, और कुछ केवल विवाह करती हैं चाहना उन्हें आता ही नहीं, और बहुत ही कम यह दोनों एक में जाकर समाहित होते हैं, ऐसी भाग्यवान कम ही होती हैं। कहने हैं, पहले मन में चाह पैदा होती है, फिर विवाह की भावना। मैंने बहुत पहले विवाह किया था, इसलिए जब चाह की उम्र आयी, अपने शौहर को मैंने गोली मार दी थी। इसलिए लाहौर आने पर मैंने दो काम किये थे—एक तो अपने दाँत का बिल्कुल नया सैट बनवाया था, दूसरे अब किसी को चाहा जाय की मुझे चिन्ता थी।

नंदलाल को मैंने चाहा कभी नहीं, किन्तु निरन्तर प्रयास करने पर कदाचित् चाह भी ले जाती, किन्तु तुम आये बिल्कुल धूमकेतु की तरह और मैं तुम्हें समझने में लग गयी। छोड़ो अकलंक ! उस नंदलाल की बात।—कुछ भी हो, सब कुछ किया जानेवाला कहा तो नहीं जा सकता न ? कितना कठिन होता है वह कहना जो हम करते हैं ! अधिकांश में हम कह नहीं पाते, तभी तो हमारे चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगती हैं जब कभी हमारे किये से संबंधित चर्चा भी सुनने में आती है तो।

तुम्हारे साथ में वे चार वर्ष मेरे जीवन के सब से सुन्दर क्षण थे। क्योंकि उसके बाद के दिनों के बारे में तुम थोड़ी देर में जान ही जाओगे और जो दिन आने को अब हैं उनके विषय में मैं निश्चित रूप से जानती हूँ—यन्त्रणा मात्र !! न इससे अधिक, और न इससे कम। तन की यन्त्रणा तुम्हारे सामने बैठी हुई इस रूप की प्रतिमा रंजना ने कम मही हो सो नहीं है; किन्तु मन की प्रतारणा तो नितान्त असह्य है अकलंक ! नहीं सह पाऊँगी; कदापि नहीं, कितनी बार कह चुकी हूँ अपने पति से, तुमसे भी अब क्या कहना होगा ? बोलो ! बोलो ! !

किन्तु जानती हूँ तुम क्या कहोगे, क्योंकि इस सब होने के पीछे अन्य लोग तो निमित्त हैं, धरती मैं थी, अकलंक ! बीज के लिए धरती से प्रश्न नहीं करना पड़ता। वह तुम्हारे उत्तर की अपेक्षा किये बिना ही अंकुरित हो उठती है। ठीक वही मैंने भी तो किया। क्योंकि धरती जिस प्रकार प्रश्नमयी, अनुत्तरा और अन्यदा है, वही तो मैंने भी किया। परन्तु हम दूसरे पर सहज स्पष्ट यह कर भी दें तो उसे वह उमी भाँति स्वीकारता तो नहीं है न ?

नारी अन्यदा हुआ करती है, इसीलिए तुम उसे चरित्रहीन भी कह लेते हो। मैं अन्यदा हूँ, इसलिए चरित्रहीन भी हूँ। चन्द्रमा का कलंक और ग्रहण तुम पूजा-पाठ, दान-दक्षिणा, स्नान-ध्यान से दूर कर लेते हो, किन्तु हमारे कलंक को धो सकना तुम्हारे पुरुषार्थ की बात नहीं है। तुम मात्र देख सकते हो विजित पांडवों की भाँति कि कलंक की पूजा करती हुई नारी दूसरे दिन तुम्हें कोठों पर मे निमंत्रण देती है। ठीक भी तो है, वह फिर से दूसरी बन सके, यह उसके लिए तुमने सम्भव ही नहीं रखा अकलंक !"—

मैं देख रहा हूँ कि रंजना सब कुछ खोकर, यही सत्य है—को सत्योक्ति बना रही है।

“रंजना ! व्यक्ति का असामाजिक हो जाना निरंकुशता है, जो असंतोष को जन्म देता है।”

“अकलंक ! तुम्हारे इस समाज में व्यक्ति पैदा करने की क्षमता, शक्ति अब शेष नहीं है। जिसे तुम व्यक्ति कहते हो वह एक पोस्ट आफिस का टिकट मात्र है, जिसके साँचे बने हुए हैं। अपनी शक्ति के अनुसार तुम उन्हें बड़े छोटे साँचे में ढालते हो। व्यक्ति बनाया तभी जा सकता है जब वह पैदा हो। जाने कितने संस्कार, समाज रूप में, उसके चारों ओर खड़े कर देते हो कि उसमें का वह व्यक्ति ही नष्ट हो जाता है। तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा से विद्रोह कर यदि कोई ‘व्यक्ति’ बनना चाहता है, तो उसे तुम पथभ्रष्ट, अनागरिक, चरित्रहीन कहकर बहिष्कृत कर देते हो। क्योंकि वह तुम में की एक भेड़ नहीं है। किन्तु तुम्हारा महापात्र समाज, श्मशान की अशुभ पीली लपटों की तरह हिलता हुआ हँसने लगता है।”

और रंजना के उन हरे नैनों में सोता फूट निकला है।

मेरी खाक समझ में नहीं आ रहा है कि मैं ऐसा क्या कुछ करूँ कि इस नारी का मन प्रतारणाओं से परे हो सके। यह मुझसे, जो मैं अकलंक न होने के कारण नहीं समझ पा रहा हूँ—क्या चाहती है? यह कहती है, व्यक्ति पैदा होता है। जबकि व्यक्ति समाज का पुत्र है—व्यक्ति नदी है, समाज समुद्र है न कि रेगिस्तान। काश ! मैं एक क्षण को वह हो पाता तो मैं इसे वह सब दे देता जो इसके मन को खायें जा रहा है और फिर मैं वापिस अपने विजगापट्टम में पहुँच जाता। तब सिर्फ़ बनियानों के बारे में ही सोचता और कभी एक क्षण को भी नहीं ध्यान में लाता कि मैं कभी रंजना नाम की किसी रमणी से मिला भी था और उसका प्रभाव मेरे मन पर सदा के लिए कसौटी की लीक की भाँति है और रहेगा भी, चाहूँ तो भी वह मिट नहीं सकता है। मैं तब स्पष्ट रूप से जाकर अपनी पत्नी से कह देता कि तुम अपने पति को सम्हालो। जानता हूँ वह स्त्री, बल्कि वही क्या कोई भी स्त्री, अपने पति को न खोने देने के लिए क्या कुछ नहीं करती है—वह भी बहुत कुछ करती। उसे भरतनाट्यम् आता है, उसका देवदामियों की तरह सुन्दर शरीर है, उसकी आँखें जो कि कुछ दिनों से चूल्हे के धूँ के कारण हल्की पीली हो चली हैं—वह उन सवसे मुझे मोह लेती। मुझे रंजना को छोड़कर और कोई स्त्री अपनी पत्नी से अधिक आकर्षक नहीं लगी है। परन्तु प्रश्न है कि मैं वह सब कैसे करूँ, और मुझे पहली बार उस अकलंक नाम के व्यक्ति से चिढ़ हो रही है जो मुझ जैसी शकल लिए जाने कहाँ घूम रहा होगा।

“अकलंक ! क्षमा करना, भावावेश में मुझे ख्याल नहीं रहा।”

और वह मुँह धोने के लिए शायद उठ गयी है।

“नहीं ऐसी कोई बात नहीं है, मुझे दुःख है”—मेरा वाक्य शायद उसके परदे तक पहुँचने पर पूरा हुआ है। उसका मुँह, आँखें सब आँचल के छोर से ढँका हुआ है। अब शायद वह बाथरूम में पहुँचकर अधिक फूट कर रो सकती है। अपने मन के दवाव या बोझ को हम दो ही अवस्थाओं में रूप दे पाते हैं, या तो नितांत एकाकीपन में या किसी घनिष्ठ के सामने। इस समय रंजना बाथरूम में विलकुल एकाकी होगी। उसके जीवन की कड़वाहट आज कदाचित्त उसके आँसुओं में बाहर आना चाहती है किन्तु उसके जीवन में एक भी ऐसा साथी नहीं जो उसके कंधों को विश्वास बनकर छू सके। मेरा मन जाने कैसा हो रहा है, किन्तु मैं अपनी सारी कमज़ोरियाँ जानता हूँ, इसीलिए घुटकर बैठा रहूँगा पर जा न पाऊँगा वहाँ—जहाँ इस समय रंजना है और जिसे महानुभूति की सबसे अधिक आवश्यकता है।

वह लौटी है। उसकी आँखें एकदम मेंदूरी लग रही हैं। लगता है, वह अधिक रोई नहीं है, पर घुटी अधिक है। आत्मा का विवेक रोने नहीं देता बल्कि घुटने देता है। वह अब इस समय आकर बरामदे के एक गोल खंभे पर हाथ टिकाये दूर-दूर तक बिछे दृश्य को देख रही है।—यह दाहिने हाथ पर मोटर कम्पनी वालों के अहाते का पिछला भाग है जो अभी बनाया जा रहा है। लोहे की फ्रेमें लगायी जा रही हैं, जैसे-जैसे फ्रेमें लगती गयी हैं उन पर टिनें भी वैसे ही वैसे लगती गयी हैं। यह उनका कारखाना होगा, इसलिए

दीवाल में बड़ी बड़ी खिड़कियाँ बना दी हैं और जिनमें नई जालियाँ लगी हुई हैं। कारखाने में भाप के इंजिन के लिए चिमनियाँ टिनों को छेदकर ऊपर निकली हुई हैं। टिनें कैसी उम्दा तरीकों पर उजली दिखायी दे रही हैं। दीवार पर लम्बे मोटे-मोटे अक्षरों में “मोटर सर्विस कम्पनी” लिखा हुआ है। यूकेलिप्टिस के पेड़ों के पार भी शायद कुछ बैंगले हैं जो अधिकतर इकहरे हैं। वहाँ जो औरतें इस समय दिखायी दे रही हैं उन्होंने चैकवाले फ्रॉक पहन रखे हैं जो बतलाते हैं कि वे ज़रूर ही क्रिश्चियन हैं। हम पुरुषों ने अपने लिए सूट तो ज़रूर शोभा के लिए चुन लिया है पर सारी भारतीय संस्कृति और धर्म हमारे घरों की स्त्रियों की साड़ी पर निर्भर है। शब्दकोश में हिन्दू धर्म का पर्यायवाची अगर कोई शब्द दिया जाना चाहिए तो वह ‘साड़ी’ होगा।

रंजना ने मेरी ओर मुड़ते हुए कहा—

“अकलंक ! देखती हूँ आज तुम्हें जाना है और प्रत्येक क्षण एक अनागत चिड़िया की भाँति उड़ता चला जा रहा है। चलो अन्दर चला जाये, क्योंकि यहाँ बैठकर फिर चर्चा चलाना मेरे लिए सम्भव नहीं। तुम कह सकते हो तो क्या मैं बिना चर्चा चलाये नहीं रह सकती ? तो मान लो कि सचमुच ही आज अगर समय भी चलना बंद कर दे तो भी रंजना का कहना बंद नहीं हो सकता। आज तक तुम्हारी और इस क्षण की प्रतीक्षा में थी, तुम क्या आये जैसे मेरा विगत लौट आया। द्वार पर आये को लौटाना तब सीख लूंगी जब देने को मेरे पास कुछ न होगा, आज है और आगे भी रहेगा, कदाचित्त जीऊँगी तब तक रहेगा। इसलिए विगत को अपने वर्तमान के कुछ क्षण देने ही होंगे, चाहे इच्छा से चाहे अनिच्छा से। लेनेवाला केवल लेना जानता है, उसे देनेवाले के मन और सामर्थ्य से क्या ! इसलिए अंदर चलना होगा और सुनना भी होगा।”

“और वे चार वर्ष, पाकों में बैठकर, चाँदनी रात में राबी की लहरें गिनते हुए, पुल की मेहराबों में बैठे हुए कबूतरों की नकलें करते हुए, अखरोट खाते हुए कब बीत गये, पता नहीं चला। मुझे कितना साफ़ याद है कि जब तुम नीला बेदिग सूट पहनकर नहर में नहाने के लिए धँस जाया करते थे और मैं किनारे पर बैठी हुई अपने दोनों पैरों से छोटी-छोटी लहरों को तोड़ती हुई बिलकुल धूप की उजली हँसी से भर जाया करती थी तब तुम मुझे “नरगिस का बासी फूल” कहकर चिढ़ाया करते थे और मुँह के पानी से छोटे-बड़े इन्द्रधनुष बनाते-विगाड़ते थे। हँसी की चट्टान पर पानी की बूंदों की तरह चार वर्ष फिसलकर कौन जानता है कहाँ चले गये अकलंक ! मैं किनारे पर बैठी हुई, जानते हो, उस धूप और सैयदवाली काली रात में तुलना और साम्य खोजा करती थी। मैंने पिताजी से साफ़ कह दिया था कि मुझे अकलंक से विवाह करना है। अपने पिता की एकमात्र संतान और वह भी इतनी रूपवती !! क्या वे अस्वीकारते ? बेचारे कितने सीधे थे ! फ्रंटियर छोड़ने के बाद कभी भी सैयद के बारे में मुझसे कुछ न पूछा। मैंने भी तुमसे सैयद के बारे में नहीं कहा था। तुम यह विश्वास रखो कि अगर मेरा मनचीता, मनसोचा होगया होता तो मैंने कभी भी तुम्हें अंधकार में नहीं रखा होता। परन्तु न तो तब और न अब मेरी समझ में आया कि ऐसा क्या होगया था तुम्हें, जो तुम्हें मुझसे अलग ले गया। क्योंकि अगर नंद-लाल ने तुम्हें कभी मेरे विषय में द्वेषवश कुछ बता दिया था, तो अकलंक ! तुमने उस बारे में मुझसे पूछना तक उचित नहीं समझा ?

“मैं जानती हूँ तब तक तुम राजनीति में कूद चुके थे। तुम्हें ‘रंजना बाँध लेगी’ का भी ज्ञान था और तुम दिन रात मीटिंगों, सभाओं, जलसों में लग गये। तुम्हें देखकर सच ऐसा लगता था कि अगर मिल जाओगे तो मेरे वे सपने जो मैंने तस्वीरों को देख-देखकर बनाये थे, पूरे हो जायेंगे। मैं लाहौर के पाकों में घंटों बेचों पर बैठी हुई लाइब्रेरियों से लायी हुई वायरन और टेनीसन, शेक्सपीयर और ज़ोला की किताबें पढ़ा करती थी। फ्रांस की कुमारियों की भाँति सोचा करती थी कि सब कुछ नील-कमल की भाँति ही सुन्दर है। मैं हूँगी और मेरा राजकुँवर सा होगा अकलंक—जीवन, फूलों के कुंजों की तरह, रंग और गंध की कुंद-कलियों से भर जायेगा। मेरा मन, साँझ के तारों के साथ चाँदनी में उड़ते मेघपालों के सपनों में डूबा रहता था। कोई मेरी कमर में हाथ डालकर चलेगा और अपने महल के बड़े हॉल में आसव में डूबी सिफ़नीज़ और नृत्यगतों के संसार में सदा नृत्यमयी बनी रहूँगी। जब कभी तुम मेरे पार्श्व में होते थे अकलंक ! मैं अपना पूरा मन तुम पर इसीलिए नहीं प्रकट करती थी क्योंकि डरती थी कि कहीं कोई सुन न ले और हम फिर सदा

के लिए... किन्तु आज एक पर्यवेक्षक की भाँति सोचकर कह सकती हूँ, क्या न कहकर भी वह हो सका जो मनचीता और मनसोचा था ? कई बार बोलकर हम बात बिगाड़ते हैं, किन्तु कोई ऐसा भी क्षण होता है अकलंक ! जिस समय न बोलने से सामने वाला व्यक्ति अन्यथा समझ जाता है । फिर प्रेम में तो पुरुष चाहता है कि जिस तरह वह बढ़कर बोलता है ठीक उसी तरह नारी भी उसे उसी प्रकार की भाषा में सुनाये ।

“और कदाचित् तुम्हारे मन में भी यही प्रश्न था, है न ?

“तुमने कभी मुझसे कोई अपेक्षा नहीं की । प्रत्येक क्षण लगता था कि अकलंक शायद मुझसे दूर चला जायेगा । तुम नहीं जानते कि मैं नहर के किनारे कितनी बार तुमसे ‘घर पर काम है’ का वहाना बनाकर गयी हूँ और रात-रात भर रोयी हूँ । क्योंकि मुझे वह खायें जाता था कि मैं ऐसा क्या कुछ कहूँ कि तुम मेरे, केवल मेरे होकर रहो । परन्तु अकलंक ! कितनी झूठ, मिथ्या बात लगनी है आज कि कोई क्यों ओर कैसे जीवन भर के लिए किसी का हो जाया करता है या हो भी सकता है । मैंने बीसियों डिकेन्स, ह्यूगो, मोपासाँ, तात्सत्वाय के उपन्यास और कहानियाँ पढ़ीं कि कोई मुझे इस तूफान में सहायता दे । किन्तु कोई नहीं ; वह अन्नाकेरिना, लूमीमैनेट, मैडम बावेरी, सब उस पार्कत क आती-आती न जाने कहाँ रह जाती थी ! झुरमुटों की हरी छाँहों के नीचे दूब पर औंधे लेटे हुए, कोहनी पर ठोड़ी टिकाये, घंटों उन उपन्यासों में आँखें गड़ाये सोचा करती थी कि ये नायिकाएँ सत्य हैं या मैं—क्योंकि मैं प्रत्येक नायिका और अपने बीच में जिस प्रकार एक सम्बन्ध देखती थी, ठीक उसी प्रकार उनके नायकों से और अपने नायक अकलंक के बीच में भी सम्बन्ध खोजा करती थी । प्रतिदिन पार्क में चढ़ी दोपहरी, गुलाबी साँझ से पीली भाँझ तक हो जाया करती थी, किन्तु मेरा स्वप्न समस्त आकाशों को चीरकर जाने किस मोह के लोक से मुझे पुकारता था और मैं कल्पना में खो जाती थी कि मेरे स्वर्ण के डैने हैं, जीवन न मुझे तारों का मुकुट पहनाया है, और मेघों ने मुझे इन्द्रधनुष का लॉकेंट प्रदान किया है । पार्क के सेव जैसे-जैसे लाल होकर गदराने लगते थे, मेरे अंगों में भी वैसी ही गदरायी भरी उभरन ओर लालिमा छा जाया करती थी । मैं बी० ए० में तब फ़ेल होगयी ।

माल रोड की शाम ओर वह तुम्हारा दिया हुआ गुलमोहर के फूलों का केसरिया रंग का गुच्छा !! — आज भी लगता है, मैं उसे थामे हुए जीवन की सड़क पर चल रही हूँ । तुम उन दिनों जेल से लौटे थे । जाने किस परेशानी ने तुम्हें दुबला और काला भी कर दिया था । तुमने मेरे फ़ेल होने पर मुझे काफी फटकारा था । मैं मन ही मन मुस्करा रही थी कि कारण तो इस सबके तुम हो । उस दिन जब तुम रेलवे मालगोदाम के मजदूरों की मीटिंग से वापस आ रहे थे और फिर हम तुम दोनों रेल की पटरियों के सहारे बहुत दूर निकल गये थे । तुम्हें याद है, चारों ओर कैसे हरे-हरे खेत लहरा रहे थे, हवा की नील गोफ़नें गेहूँ के सोने से सागर के ऊपर ‘सूँ, सूँ’ आवाज़ें करती हुई दौड़ रही थीं । जब साँझ का पहला तारा उग आया था तुमने दोनों हाथ थामते हुए सहसा सूर्यास्त की ओर हाथ

उठाते हुए कहा था—

‘रंजना, मुझे विवाह करोगी ? देखो, गोरज की लग्न वेला है ?’—

“जब कि मैं जानती हूँ कि ऐसे प्रश्न पूछे नहीं जाते । तुम नहीं जानते कि उस समय मेरे मन में खुशी ठीक बैसे ही भर उठी थी जैसे आकाश की नीली बाँहों में कोटि-कोटि चमकने वाले तारे ! ! क्या आकाश एक साथ इतने तारों के चमकते आशीर्वाद झेल सकेगा ?

“तुमने जब मेरे पिताजी से बिना कुछ सोचे हुए विवाह कर डालने की बात कही, तब मुझे याद है उस दिन के बाद से मैं तीन महीने तक घर से बाहर नहीं निकलने दी गयी । उसके बाद मुझे जो मालूम हुआ वह यही कि तुम हजारीबाग में किसी संगीन राजनीतिक मुकदमे के बंदी हो ।

“एक और घटना याद पड़ती है अकलंक !

“जैसी कि तुम्हारी आदत थी तुम कई बार मुझे भी बिना कहे राजनीतिक काम से गायब हो जाते थे और मैं अनुभव किया करती थी कि मैं तुम्हें जितना बाँधने का प्रयास करती हूँ तुम उतने ही उन्मुक्त हो जाते हो ।

भगतसिंह, राजगुरु वगैरह फाँसी पा चुके थे और गांधीजी की राजनीति ने एक करारी हार खायी थी । सभी नौजवानों में भगतसिंह की फाँसी को लेकर गुस्सा था । उधर लाहौर में भी सरकार बड़ी सक्ती से लोगों पर निगाह रखे हुए थी । तुम हफ्तों तक क्रांतिकारियों के साथ जाने कहाँ-कहाँ चले जाया करते थे ।

“उन दिनों तुम लगभग दस दिनों से कही गये हुए थे । मैं अपने आपसे संघर्ष कर रही थी, क्योंकि पिताजी ने तुम्हारे साथ सम्बन्ध न रखने के लिए पूर्ण चेतावनी दे दी थी । मुझे सबसे अधिक तुम पर क्रोध आता था कि जिसके सहारे मैं चलना चाहती हूँ जब वही मेरी उपेक्षा करके इस प्रकार अपनी राजनीति में व्यस्त है कि उसकी ओर से रंजना जैसे है ही नहीं, तब कोई क्या कर सकता है ? लाहौर में आये दिन पड़यंत्र होते रहते थे और धीरे-धीरे क्राप्ती लोग पकड़े जा चुके थे ।

“उस शाम बहुत उदास, खिड़की पर कुहनी टिकाये बैठी हुई, अपने विगत और अनागत को लेकर सोच रही थी । विगत पर खेद नहीं किया जा सकता था, किन्तु अनागत उस अकलंक पर निर्भर करता था जो दिनरात पिस्तौल ताने हुए जंगलों-जंगलों षडयंत्रकारी बना घूमता फिर रहा था । उसकी क्रान्ति, विद्रोह, विध्वंस किसी भी मूल्य पर समझौता नहीं करना चाहते थे ।

“मैंने कई बार पूछा, अकलंक ! तुम क्या राजनीति से अलग नहीं हो सकते ? क्या मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं हूँ ? तुमने सदा हँसकर कहा कि “रंजना ! तुम मेरे लिए बहुत कुछ हो, किन्तु राजनीति से पृथक होने का अर्थ जानती हो ? राजनीति इसलिए है क्योंकि जीवन है । साधारण जन के लिए जीवन से अलग होने पर मौत होती है, मेरे लिए यही बात राज नीति के साथ समझ सकती हो” —और मैं सदा घुटकर रह जाती थी अकलंक !

“मैंने कई बार क्रान्ति, विद्रोह, विध्वंस में और अन्य हिंसा में साम्य बतलाते हुए कहा भी था कि यह मात्र दानवी भावना है, गांधी बाबा भी यही कहते हैं, जब कि समाज के लिए एक सुव्यवस्थित आधारभूत नीतिमय प्रणाली की आवश्यकता है, न कि लोगों को इस प्रकार एक दूसरे को हमेशा मारने के लिए पिस्तौल लिये घूमना आवश्यक है; इसलिए कि तुम्हें खतरा है, क्योंकि हमारा वर्तमान शासन-प्रणाली से विरोध है। विरोध शांति के साथ भी अभिव्यक्त किया जा सकता है। क्या आवश्यकता है कि उसके लिए बमों की मोटी मोटी आवाजों की जायें? और तुमने हमेशा यही कहा—

“रंजना ! व्यक्ति-संकट के दृष्टिकोण से उठाये गये अस्त्र में और एक विराट् सामूहिक एवं जनहित प्रणाली के लिए उठाये गये अस्त्र में क्या कुछ भी भेद नहीं देखती ? इस मामले में अहिंसा की दुहाई गलत है।”

“और हम हमेशा अपनी विरोधी धारणाएँ लेकर चुप हो जाते थे। दस दिन पहले कुछ ऐसी ही क्रान्ति के सम्बन्ध में अपनी ‘आतंकवादी’ तर्कप्रणाली तथा दलील देकर तुम एकाएक गायब हो गये थे। यह सब था, किन्तु मैं तुम्हें सभी खतरों से बचाना इसलिए चाहती थी कि ताकि तुम केवल मेरे होकर रह सको ! मैं तुम्हारी जनहित के लिए आतंकवादिता कभी नहीं समझ पाती थी।

“खिड़की पर कुहनी टिकाये हुए मैं ऐसा सब कुछ जाने कब तक सोचती रहती कि कॉलेज के एक विद्यार्थी ने आकर सूचना दी कि अकलंक ने रावी के उस पार कामरेड रॉय के घर बुलाया है। शायद अँधेरा भी हो चला था। उस बुलानेवाले के चेहरे पर भय की रेखाएँ साफ दिखायी दे रही थीं। मैं जिस समय कॉमरेड रॉय के घर तुमसे मिलने पहुँची तुम खून से भरे हुए कपड़ों में एक फटी दरी पर कराह रहे थे। तुम्हारे पैरों से खून बहुत बह चुका था। जाने कितनी पट्टियाँ कोने में खून से गीली तरबतर पड़ी थीं। तुम्हारे साथी लोग उन पट्टियों को जलाने की चिन्ता में लगे हुए थे। मैंने देखा कि तुम आँखें बंद किये हुए लेटे हो किन्तु तुम्हारी बंद आँखें किसी की प्रतीक्षा में हैं; यह मैंने तुम्हारे चेहरे से ही अनुभव कर लिया था।

“जब तुम्हें मेरे आने की सूचना दी गयी तुमने एक कराह के साथ अपनी आँखें खोली थीं, मुझे अभी तक याद है। मैंने तुम्हारा हाथ अपनी दोनों हथेलियों में लेकर अपनी आँखों पर फेंरा और फिर एकटक तुम्हारी ओर देखना शुरू किया था, जिसका अर्थ था कि क्या यही सब तुम्हारी आतंकवादी क्रान्ति है ?—और तुमने साँस भरते हुए उत्तर दिया था—

“रंजना ! उम्मीद तो कम ही थी कि तुम इस बेला घर पर मिलोगी, किन्तु क्या करूँ, लाहौर अभी अभी आया हूँ और आध घंटे के अंदर ही कुछ दिन के लिए मुझे पेशावर की ओर जाना पड़ेगा, क्योंकि पुलिस बहुत बुरी तरह मेरे पीछे पड़ी हुई है।”—गोली लगने के बारे में न तो तुमने ही बताया और न मैंने ही उचित समझा कि पूछूँ। कामरेड रॉय से पूछने पर मालूम हुआ था कि तीन गोलियाँ पैर में अभी भी धँसी हैं, पर इस समय अकलंक का यहाँ

से चले जाना ही श्रेयस्कर है ।

“और कामरेड राय शायद किसी काम से नीचे गये थे; कमरे की खिड़कियाँ सब बंद थीं, तब मैं तुम्हारे सिरहाने कितनी फूट-फूटकर रोई थी । मुझे वे क्षण और शब्द अभी तक याद हैं—

“मैं तुम्हें किसी भी तरह यहाँ से अब नहीं जाने दूंगी । क्या तुम्हारी राजनीति ही सब कुछ है ? तुमने अपनी राजनीति के पीछे अपने साहित्य की हत्या कर रखी है और, और फिर अकलंक ! मैं, हाँ मैं कुछ भी नहीं ?”

“डरो मत रंजना ! मैं पेशावर से शीघ्र ही लौटकर आऊँगा । और पगली ! तुम्हें मेरी राजनीति से क्या लेना-देना ?” तुमने कहा था अकलंक ! मैं उस समय विरोध या विवाद बचाना चाह रही थी, इसलिए मैंने बात बदलते हुए कहा था—

“मगर तुम्हारे पैर में तो गोलियाँ धँसी हैं, जाओगे कैसे ?”... और तभी राय ने नीचे से आकर बहुत दबे स्वर में घबराते हुए कहा था—

“अकलंक ! यहाँ से अब जल्दी निकल जाओ, क्योंकि पुलिस के गुर्गों को कुछ संदेह होगया है और शायद पुलिस कुछ ही मिनटों में यहाँ पहुँच भी सकती है ।”

“तब तुम कैसे लँगड़ाते हुए हँसने की चेष्टा करते हुए राय का कंधा पकड़कर उठे थे । धीरे धीरे पीछे की गली में से निकलकर अपने दो साथियों के साथ तुम चले गये । दूसरे दिन सुबह अखबार से मालूम हुआ था कि रावी में कूदते हुए पुलिस ने तुम्हारा पीछा किया और तुम पकड़ लिये गये ।”

मैं और राजनीतिक बंदी !! मेरा रोम रोम काँप रहा है । मैं किस बिना पर अपने को अकलंक के धरातल पर ले जा सकता हूँ ! वह एक फ़रार संगीन जुर्म का राजनीतिक आसामी, और मैं मात्र एक होज़री में एडवर्टाईज़िंग मैनेजर ! अब मुझे कुछ भी संशय नहीं है कि मैं और कुछ भले ही हो सकता हूँ किन्तु अकलंक तो कभी भी नहीं ।

स्वयं रंजना एक तो कहीं नहीं जाती है और कदाचित् कोई इसके यहाँ आता भी नहीं है । कैसी घुटन होती होगी इन रेशमी परदों के भीतर, और घुटन ही इस रंजना का सम्पूर्ण जीवन है—आनेवाले क्या दिन, क्या रात, सभी इन परदों के पार आकर चले जायेंगे । इसे तो जीना है । यह कमरा, ये रंगीन परदे, ये डरावनी तस्वीरें, यह ड्राइंग रूम, बस !! अपने को जीवन से अलग हटाकर इतनी चीज़ों में समेटकर यह अपनी ज़िन्दगी जी जायगी, उधार की ज़िन्दगी !! इसके नौकर बाज़ार जाते होंगे और पैसे फेंककर सड़ी-गली चीज़ें टिन के डिब्बों में बंद ले आते होंगे, जो जीवन के नाम का उपहास बनकर बाज़ारों में बेची जाती हैं । ये टिन के डिब्बों की ज़िन्दगी कदाचित् बनी ही ऐसे लोगों के लिए है । ये फ़सलों के बीच ज़िंदा नहीं रह सकते, बल्कि उसकी तस्वीरें कमरे में टाँग सकते हैं ।

“और अकलंक ! देखती हूँ कि तुम इस सीमा तक परायापन निभाने की सोच चुके

हो कि तुम्हें यह पूछना भी आवश्यक नहीं लग रहा है कि मैं तीन महीने घर से क्यों नहीं बाहर निकली। नहीं जी, आज तो तुम वैसे ही चले आये हो निर्विकार भाव से, जैसे कोई फ़िल्म देखने जाता है तो वह चित्र देखते हुए 'कब' और 'क्यों' द्वारा फ़िल्म देखना बन्द नहीं करता, क्योंकि कोई भी दृश्य या पात्र उसकी आलोचना सुनने के लिए नहीं ठहरता।

"मैं तीन महीने तक निकली नहीं, वरन् यह कहूँ कि निकलने नहीं दी गयी। और इस तरह मैंने पहली बार अनुभव किया कि प्यार, प्रेम वह किसी का हो, समाज की टेढ़ी भँवों के सामने घुटने टेक देता है। तुमसे अलग करने के लिए धमकियाँ, मार, सब सहनी पड़ी, किन्तु क्या इन सबसे मेरे विश्वास का ध्रुव तारा डिगा? नहीं। किन्तु जब बाहर आयी, तुम जा चुके थे, गायद सदा के लिए। सुना था कि वायसराय की ट्रेन पर बम फेंकनेवालों में तुम भी थे और तुम्हें आजन्म कारावास का दंड मिला था। मेरे लाख चाहने पर भी जिस जहाज़ से तुम अंडमान भेजे जा रहे थे तुमसे मिलने के लिए मुझे कलकत्ता भी नहीं जाने दिया गया। मेरे सामने फिर एक बार वैसी ही आँधी छा गयी थी जैसी कि सैयद के साथ उस दर्रे में छायी थी। मुझे विश्वास हो गया कि मेरी छाया भी चाण्डाल की छाया है अकलंक! अगर वह मनुष्य छोड़ किसी देवता या सूर्य, चंद्र किसी पर भी गिर जाये तो वह अपवित्र या उसे ग्रहण लग सकता है। जब मैंने तुम्हें इस कमरे में आज दोपहर को पूरे पच्चीस वरस बाद देखा तो क्या तुम विश्वास कर सकते हो कि मेरी इच्छा फूटकर रो पड़ने की हुई? चाहने लगी कि तुम्हारी आँखों को, बालों को, सबको चूम-चूमकर भर दूँ और कदाचित् इतना चूमना चाहती थी कि ये जो पच्चीस वर्ष बिल्कुल रीते के रीते तुम्हारे जीवन में बीते होंगे, एक बारगी ही चुम्बनों के जल से भर जायें। किन्तु क्या यह सम्भव हो पाता? मैं जानती हूँ, प्रत्येक वाक्य और घटना सुनने पर तुम्हारी घृणा बढ़ेगी ही, पर क्या करूँ? अगर तुम्हारा प्रेम, तुम्हारा साहचर्य न पा सकी हूँ तो क्या घृणा से भी वंचित रहूँ?—चाहे कुछ भी हो, वह वस्तु तुम्हारी ही तो होगी। ना-अकलंक! घृणा करके मुझे कहीं का न रखोगे। देखो, ऐसा न करना! मेरी इस इच्छा का क्या कभी आरपार आज तक मिला है, जो मैं आज ही किनारे पर बैठकर समय के कंकरो को गिन-गिनकर हिसाब लगाने बैठूँ। यह न रंजना से कभी हुआ है और न होगा ही।"

और वह कमरे में तेज़ी से टहल रही है। मैं राजनीतिक बंदी था, मुझे बीस वर्ष तक संगीन अपराध में अंडमान में भी रहना पड़ा है, जब कि इस हिसाब से मेरी उम्र कम से कम पैंतालीस की तो होनी ही चाहिये। लेकिन मैं तो अधिक से अधिक पैंतीस तक पहुँचा हूँगा। क्या आयु के इस इतने बड़े अंतर को रंजना जैसी नारी की आँखें नहीं पहचान सकी होंगी? फिर, क्यों अपने चारों ओर यह ऐसा मिथ्या का भ्रम खड़ा किये है और चाहती है कि मैं भी इस भ्रम में बँधकर क्या कुछ न कर लूँ। मैं देख रहा हूँ, रंजना की आँखों से चिनगारियाँ फूट रही हैं। कोई व्यक्ति इतनी मानसिक और शारीरिक यातनाएँ लेकर भी जी सकता है और हँस बोल सकता है! किन्तु शायद मैं इसके प्रभाव में

आकर अन्यथा सोच रहा हूँ। ये यातनाएँ इन लोगों को कष्ट थोड़े ही देती हैं, क्योंकि अगर ऐसा हुआ करता होता तो ये कभी के इन रंगीन परदों को फाड़ फेंकते। किन्तु सोच-सोच कर जीवन को नासूर बना लेना और फिर उसे भी लिपस्टिक की तरह विज्ञापन का साधन बनाना ही इनकी कला है, सम्यता है।

मैं देख रहा हूँ कि फिर अन्यथा सोच रहा हूँ।

उजालदान पर कोई कबूतर कहीं से आकर शीशे पर पैर जमाना चाह रहा है किन्तु फिसल पड़ने के कारण शीशे पर उसके पंजों के नाखूनों की 'किच-किच' की आवाज हो रही है।

“सैयद मेरी बोटी-बोटी जैसे नोंचकर चला गया। नंदलाल को मैंने कभी चाहा ही नहीं था, वह तो लेनदेन पूरा करके चलता बना। जिसे सचमुच चाहा था वह अकलंक भी उस दिन डंडा-ब्रेडी बजाता हुआ स्वाधीनता लाने जीवन भर के लिए अंडमान चला गया रह गयी मैं, और नग्न यथार्थ की क्रूर आँखें ! !

“और अकलंक ! मैंने अपने को इच्छाहीन बनाने का प्रयत्न किया। परिस्थितियों के हाथों में ढीला छोड़ दिया। मैंने अंग्रेजी साहित्य से एम. ए. किया और तब मेरा विवाह एक 'सर' के लड़के से हो गया। जानते हो वह 'सर' का लड़का मेरा दूसरा पति था। वह भद्रकुल का श्रीमंत पुत्र था। उसका दिमाग कभी-कभी पागलों की सी हालत में भी हो जाया करता था, बल्कि वह पागल ही था, मुझे हमेशा मारा भी करता था। विवाह के तीन साल के भीतर ही माँ और बाप दोनों मर गये। लोग कहते हैं उन 'सर' महोदय ने मेरी सम्पत्ति पर कब्जा करने के लिए ही दोनों को स्वर्ग भिजवा दिया। जो भी हो, मैं एकदम निःसहाय, निराश्रय होकर अपने पति के साथ जी रही थी। मेरे पति महाशय को विलायत घूमने का शुरु से शौक था और मेरे पिता की सम्पत्ति प्राप्त होने पर वे विलायत की तैयारी करने लगे। मैंने तब एक लड़की को जन्म दिया अकलंक ! जानती थी कि वह एक पागल की लड़की है, किन्तु मैं भी तो उसमें कहीं कुछ थी। मैंने अपने तन की पहली सौगात देखी। गाजर की तरह लाल-लाल और अखरोटों की तरह जिमकी नाक, तरबूज के गूदे की तरह जिसका शरीर—यह सब कुछ मैंने ही जन्म दिया था, और उसी दिन 'सर' और उनके सुपुत्र विलायत की यात्रा के लिए चल दिये थे। मेरे मन ने कितनी बार चाहा कि वे एक बार आकर इसे देख लें। किन्तु मेरी इच्छा का क्या मूल्य ! पहले कदाचित् होता भी, किन्तु मेरी सम्पत्ति मिल जाने पर तो और भी नहीं। मैं संतोष किये बैठी थी और सोच रही थी कि चलो, ऐसे ही शेष काट दूंगी।

“परन्तु अकलंक ! हम सोच कुछ भी लें, कर कुछ भी नहीं सकते ! क्योंकि सोचना हम अपने साथ करते हैं, किन्तु करने में हमें दूसरों की भी आवश्यकता होती है। दूसरे क्यों हमारे मन की बात होने दे सकते हैं ? हम सब तो शत्रुमर्ग हैं अकलंक ! इससे कुछ भी ज्यादा नहीं। सर गाड़कर समझ लेते हैं कि तूफान अब नहीं आने का। हम अपनी

मिची-मिची सी आँखें बनाये भविष्यवाणियाँ किया करते हैं, किन्तु बात पूरी होने के पहले ही हमारा किया घरा पानी हो जाता है। हम समझते हैं कि बस, अब कहाँ ? क्योंकि आगे तो कुछ है ही नहीं, और थोड़ी देर में वहीं पर पानी का सोता फूट निकलता है।”

“रंजना जी ! इतना सब कुछ सहने पर भी.”

मेरा वाक्य पूरा भी न होने दिया और वह हँस पड़ी है। किन्तु स्पष्ट है कि वह उसी तरह हँस पड़ी है जैसे आप के पेट में भयानक दर्द हो और आपका चार साल का बच्चा बुजुर्गों की तरह पूछ बैठे और सान्त्वना देने लगे तो आप हँसने लगेंगे। उसे हँसी कहना भी गलत है, उसकी इस हँसी में कितनी पीड़ा है—यह मैं समझ सकता हूँ का दावा भी मिथ्या है।

“क्या पागल हुए हो अकलंक ! तुम इसको सहना कहते हो ? आदमी सहता तो अलग से है। किन्तु जिसका जीवन ही यह हो हम उसे सहना नहीं कह सकते। जैसे आग गर्मी को अलग से सहती है ? वे तो दूसरी चीजें हैं जो आग को अलग से सहती हैं। तुम इतना भी नहीं समझ सके ? मूर्ख कहीं के ! इतनी सहानुभूति प्रदर्शित करके क्या मुझे कमजोर करना चाहते हो ? याद रखना अकलंक ! कि तुम्हारी रंजना कमजोर हुई नहीं कि टूटी नहीं। दया या सहानुभूति के लिए पहले ही कह चुकी हूँ। आज तो सब इसलिए कह रही हूँ कि तुम्हें बिना सुनाये शायद मेरी मौत भी न आती और मुझे जाने कितना और भुगतना पड़ता। अकलंक ! तन की यातना बहुत कुछ से अधिक कट गयी और शेष भी कट ही जायगी; रही मन की पीड़ा, तो वह भी कितने दिन !! तुम जो आ गये मन की यातना काटनेवाले, मन की भी कट ही जायगी—और अकलंक ! “रंजना जी” कहकर चाहते हो कि मैं और नरक में पड़ी रहूँ ?”

और वह मेरे सिरहाने खड़ी होकर मेरे बालों में अपनी कनेरी उँगलियाँ चला रही है। मैं जानता हूँ कि मेरे बाल घुंघराले हों तो क्या हुआ, कड़े तो ऐसे हैं कि सड़क साफ करने का ब्रश आसानी से वन सकता है। मेरे गालों के ठीक पास में वह भरा भरा गोरा हाथ, जो कि एकदम चिकना मुडौल है—मेरे बालों में फिर रहा है। मैं जानता हूँ कि मेरा मन इस हाथ को चूम लेने को कर रहा है। साथ ही विश्वास है कि रंजना कभी अप्रसन्न नहीं हो सकती बल्कि चूम लेने पर उसे भी कदाचित् बरसों बाद उतनी प्रसन्नता होगी जितनी मुझे कई कड़वे बरसों में न हुई होगी, पर मैं ऐसा नहीं कर सकता।

दूर पर आटे की चक्की का स्वर आ रहा है। इन परदों के पार जीवन दिन भर उत्सव मनाने के लिए ठहरकर चल निकला है। परन्तु इस कमरे में ज़िन्दगी ने बहुत बड़ा ठहराव लिया है। क्योंकि यहाँ की ज़िन्दगी चलती नहीं है, बल्कि ज्वालामुखी की भाँति फूटती है। और फिर तो वर्षों के लिए आग और गरम गरम लावा ही रह जाता है। लोग बरसों तक याद करते हैं कि उनकी जाने कितनी अंधेरी रातें उस ज्वालामुखी ने खून की तरह लाल-लाल कर दी थीं और ज्वालामुखी के उस जीवन ने न जाने

कितने पेड़, पौधे, फ़सलें, जानवर और इन्सान की पौध ख़त्म कर डाले थे ।

मुझे लगा कि रंजना के हाथों से गरम-गरम आँच आ रही है और वह आँच उँगलियों में पहुँच गयी होगी, तब बालों के घुँघरालेपन को भी निश्चय ही जला रही होगी—मैं सिहर उठा हूँ ।

रंजना और ज्वालामुखी !!

“मैं जानती हूँ अकलंक ! तुम कई तरह के संकल्प-विकल्प वाले मन को लेकर यहाँ बैठे हो, किन्तु भावुकता में कोई काम ऐसा न कर बैठना जिसमें बाद में पछतावा हो । रही मैं, तो मेरी बात न करो । और हाँ, देखो, बोलकर तुम समय को छोटा कर देते हो । मैं कथा को भी छोटा नहीं कर सकती और समय को भी बढ़ा नहीं सकती । दोनों को एक-दूसरे के साथ सामंजस्य करना ही होगा, क्योंकि अहिल्या का पत्थर अब मुझसे ढोने से रहा अकलंक !

“उन दिनों हमारे यहाँ एक पठान नौकर होकर आया । मुझे वह अत्यन्त भद्र एवं भला लगा था; वह मेरे बँगले के बाहर दिन भर स्टूल पर बैठा-बैठा मूँछों पर ताव दिया करता था और मेरी उस बच्ची के साथ खेला करता था । मेरी नन्ही मुन्नी सी बच्ची उस पठान के हाथों में देखकर कभी कभी मेरा दिल दहल उठता था, और वह काली अँधेरी रात, भयानक दरें याद आ जाते थे—किन्तु सब मनुष्यों को एक जैसा मान लेना भी कितना अन्याय है अकलंक ! किन्तु न मानना भी क्या ख़तरे से खाली नहीं हुआ करता ?”

मैंने देखा कि रंजना के चेहरे पर एकदम काली स्याही जैसे किसी ने पोत दी हो । उसकी हरिण आँखों के गोल घेरों में जैसे किसी ने काजल की अँगुली पोंछ दी हो ।

“एक दिन दोपहर की बात है अकलंक ! बच्ची के दूध का समय था और वह रो रही थी । मेरी कमजोरी के कारण उसे ऊपर का दूध दिया जाता था । मुझे आया पर बहुत गुस्सा आ रहा था, क्योंकि वह बच्ची के दूध के मामले में ही नहीं, उसे सुवह हाथमुँह धुलाने से लेकर शाम को पैरामबुलेटर में घुमाने ले जाने तक में बहुत लापरवाह थी । वह बच्ची के दूध में से अक्सर दूध चुराकर ले जाते हुए पकड़ी भी गयी थी । उस दिन दोपहर को ‘दूध डुल गया’ का बहाना बनाया और मेरी बच्ची भूख के कारण विलख-विलख कर रो रही थी । मैं उस पर चीख चीखकर ब्रिगड़ रही थी, तभी वह हमारा पठान नौकर दरवाज़े की आड़ से मुझे घूर रहा था । मैंने उसे उसकी इस बदतमीजी पर बहुत डाँटा और वह चला गया ।

“अब धीरे-धीरे वह पठान निडर होकर बेधड़क आने जाने लगा और कभी-कभी मेरी बच्ची को खिलाते हुए पेशावर की बातें सुनाया करता । दरों में वह क्या बताये, किस तरह कल्ल हो जाया करते हैं । औरतों, बच्चों को लोग ले जाकर बेच आया करते हैं । ऐसी ही बातें सुनाया करता था । मुझसे वह अब धीरे-धीरे खुलता जा रहा था और मैं पीछे हटती जा रही थी । उसने बातों ही बातों में वह घटना भी सुनायी कि ‘मेम साहब !

एक बार एक औरत चार आदमियों को क़त्ल करके भाग गयी और फिर लोगों ने उस औरत को बहुत खोजा मगर हाथ नहीं आयी ।'—उसके वर्णन से मुझे सैयद वाली घटना याद हो आयी और मैं पसीने-पसीने हो उठी । मगर मैंने अब दिल में निश्चय कर लिया था कि इस पठान को छुड़ा दिया जाना चाहिये ।

“वह पठान एक दिन जब काम पर आया, मैंने आया से कहलवा दिया कि पठान जा सकता है, हमें अब आवश्यकता नहीं । पठान ने बड़ी भद्रता से सलाम करते हुए पूछा कि अगर मेम साहब का यही इरादा है तो ठीक है ।—जिस समय वह पठान गया, अकलंक ! मैंने कितनी सुख की साँम ली कि क्या बताऊँ ! मैं अब अपने जीवन के दरवाजे हमेशा हमेशा के लिए बंद कर लेना चाहती थी जिसमें मैं और मेरी बच्ची के बीच कोई भी तीसरा आकर जीवन में कोई व्यतिक्रम पैदा न कर दे । प्रत्येक भाव, एक विकार होता है और होती है उसकी तृप्ति । मैंने अपने को सम्पूर्ण रूप से अपनी बच्ची में केन्द्रित कर लिया था । मैं उसे 'रिनी' कहकर पुकारती थी । वैसे अकलंक ! सभी माताओं को अपने बच्चे प्यारे लगते हैं, किन्तु मेरी रिनी सचमुच में ही बड़ी सुन्दर थी । जब वह अपने छोटे-छोटे गोल गदराये हाथ फैलाकर मेरी ओर देखने लगती थी तब मुझे ऐसा लगता था जैसे रिनी अभी भी नाल द्वारा मेरे शरीर से संबंधित है और मेरा रोम-रोम उसे ढँक लेना चाहता था । मैं जानती हूँ अकलंक ! कि तुम हँसोगे, किन्तु यह सत्य है कि प्रत्येक नारी माँ बनना चाहती है, किन्तु यदि मुझे वास्तविक जीवन जीने को मिलता तो सच कहती हूँ कि मैं प्रत्येक वर्ष माँ बनना चाहती । तुम कभी भी नहीं सोच और समझ सकोगे कि माँ बनना किसे कहते हैं । क्या प्रत्येक वर्ष धरती पुष्पवती और फलवती नहीं होती ? सृजन का सुख केवल नारी ही पहचान सकती है । अकलंक ! सृजन की पीड़ा जिसे कहते हैं वह मिथ्या, अनैसर्गिक है, अवैज्ञानिक है । यदि प्रजनन में, सृष्टि उत्पन्न करने में पीड़ा होती तो पशु, पक्षी, प्रकृति सब में वह पीड़ा होनी चाहिये थी ? सृजन एक क्रिया है । पता नहीं किसने, कब और कैसे इतनी महान क्रिया को पीड़ा कहकर लोगों के मनोविज्ञान तक पर उसका प्रभाव डाला । उषा प्रतिदिन सूर्य को जन्म देती है, फिर भी वह चिर-यौवना बनी रहती है ।

“बहुत कुछ ऐसे ही विचार मेरे मन में उठते रहते कि गांधारी की भाँति मेरे चारों ओर मेरे ही शरीर से उत्पन्न प्रजा का सुख-संसार हो । मुझे कई बार लगता कि यदि मैं यह सब किसी से कह दूँ तो वह निश्चय ही अन्यथा समझ सकता है । अपने बँगले के पास वाले पार्क में बैठे प्रतिदिन यही सब सोचा करती थी ।

उसी पार्क की नित्य की सी निर्जन सांझ :

आया रिनी को लेकर नहर गयी हुई थी । यह पार्क कभी विश्राम का केन्द्र रहा होगा पर तब तो वह उपेक्षित था । शहरी फूलों और लताओं के स्थान पर वनलताएँ और जंगली फूल, कास-घास के साथ-साथ मनमाने तरीके से उग आये थे । उपेक्षित पेड़ प्रारम्भ में तो देखभाल की आशा में रहे होंगे किन्तु धीरे-

धीरे वे भी जंगली होगये । चीलों, कौबों के साथ साथ चिमगादड़ों और उल्लुओं ने उन्हें अपना आवास बना लिया । कुंजों की लताओं की हड्डियाँ तक सूख गयी थीं । बिल्लियों ने उस पार्क को अब अपना जच्चाखाना घोषित कर रखा था । पार्क की सड़क पहले गंजी और फिर धीरे धीरे उसके कूबड़ निकल आयी थी । अड़ोस पड़ोस के मोचियों, कुम्हारों ने उसे कचराखाना बना दिया था । घोसियों ने जगह-जगह कंडे पाथे हुए थे । पता नहीं कैसे वहाँ पर पुरानी स्मृति के रूप में एक लोहे की बेंच, प्रस्तर रूप में, अभी भी पड़ी हुई थी । उस बेंच के काले कीट खाये लोहे पर लोगों ने अपने मन के उद्गारों को स्पष्ट रूप से तथा नाम पते सहित लिखा था । साँझ, गोरजी हो चुकी थी जिस समय में वहाँ पहुँची । कोई भी थोड़े से और घने अंधकार में देखता तो निश्चित ही मुझे इस पार्क की प्रेतात्मा समझ कर डरकर भाग जाता । एक क्षण को मुझे स्वयं अपनेआप से ही आज जाने क्यों भय मालूम हुआ । मेरी पीठ पीछे कलासे हरे रंग की कोई झाड़ी एकदम घनी ऊँची ऊँची सी फैली हुई थी । पता नहीं क्यों, मेरे मन में बहुत ही उद्विग्नता और बेचैनी थी । चिमगादड़ों ऊपर घूमना शुरू होगयी थीं । एक अजीब सन्नाटा सा बाहर और भीतर मिलकर मेरा गला दबोच रहा था । सन्नाटा जैसे जंगली भैंसा हो जो कि अपनी थूथ लटकाये और सींग ताने सारी चीजों पर दौड़ रहा हो । मैं बहुत घबरा गयी और मैं चलने को उठी । मैंने देखा कि एक पठान और एक तहमत पहना हुआ व्यक्ति तेजी से पार्क में घुसे और जिधर मैं बैठी थी उधर ही बढ़े । मैं इस सुनसान जगह से जल्द से जल्द निकल जाना चाहने लगी कि तभी उन दोनों ने मेरा रास्ता रोक लिया । मैं कुछ कहूँ इसके पूर्व ही एक ने मेरी कलाई ज़ोरों से पकड़ी और दूसरे ने मेरा मुँह कमकर दाब दिया । मेरे मुँह से चीख ज़रूर निकली किन्तु वह पार्क के प्रस्तरों के वाहर गायद ही पहुँची हो । उसके बाद क्या हुआ, मैं नहीं जानती ।

“मैं देखती हूँ अकलंक ! कि तुम कथा की चट्टानों के ऊपर खड़े हुए देख रहे हो कि नीचे, हज़ारों फीट नीचे घाटियों की काली डाढ़ों को चीरती हुई रंजना नाम की प्रचंड, उद्दाम वेगवती बह रही है । मुनो, मुझे बीच में टोकना मत । मेरे वेगनाद में तुम्हारे प्रश्नों की चिड़ियों के कोमल स्वर डूब जायेंगे, और मैं नहीं चाहती कि तुम किसी भी प्रकार से मेरे द्वारा अब उपेक्षित बनो । आज तक तुमने सुन्दर रमणी का तन देखा है अकलंक ! लो, मैं तुम्हें सौंदर्य की विभीषिका वाला मन और उसकी ऐंठन दिखाती हूँ । अब कैसी लज्जा ! जो रोग है, वितृष्णा है, घाव है, उसे लज्जा द्वारा छुपाने का अर्थ है शव के प्रति भोगासक्ति !! विगत, शव है—मे आज अपने शव का जलप्रवाह, अग्निदाह कर देना चाहती हूँ जिसमें पिछला कुछ भी शेष न रहे । मुझे सुख होगा अकलंक ! कि रंजना अशेष बनकर समाप्त हुई । मेरा रूप फोड़े का सौंदर्य है ; लो देखो, विगत की पीप टीसों मार रही है ।”

जैसे किसी सर्जन ने आपरेशन करने के लिए मेरी सारी चेतनाओं को इंजेक्शन द्वारा अचेतनी कर दिया हो । और मैं चेतनाओं से परे होकर जड़ जी रहा हूँ ।

“तो अकलंक ! जिस समय मुझे होश आया मैंने अपने आपको एक कोठरी में कैद पाया । मेरे हाथ और पैर बँधे हुए थे और मेरे मुँह में कपड़ा-ठुँसा हुआ था । एक क्षण में पिछली साँझ का दृश्य याद आया, अन्यथा मैं इसे सपना समझे हुए थी । आया रिनी को लेकर नहर गयी थी । मैं अपने अंदर के हाहाकार से त्राण पाने के लिए एकान्त खोजती हुई रोज़ की तरह उस भुतहे पार्क में गयी थी और याद आने लगा कि किस प्रकार एक पठान और एक तहमत पहने व्यक्ति अंदर घुसे थे और तब मुझे परवश कर दिया गया था ।

“किन्तु अब ?

“ये दोनों कौन थे ? कौन हैं ? शायद पैसे चाहने हों, किन्तु मैं नारी भी हूँ—नारी का शरीर भी तो एक सम्पत्ति है । या शायद ये लोग मुझे बेच दें । कहाँ बेच सकते हैं ? कहीं भी—उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम—नारी की भूख किसे नहीं है ? उपवास करने वाले से लेकर गोश्त खाने वाले तक—सबके लिए नारी भोजन है—और मुझे अपनी अवस्था पर रोना हो आया । उस सीलन भरी कोठरी में रोती हुई आँखें अंधकार में कुछ खोज रही थीं । चूहों की खटर-पटर जारी थी । बाहर तेज़ हवा के वहने से बड़े-बड़े पेड़ों के पत्तों की सरसराहट साफ़ सुनायी दे रही थी । दूर पर एकाध कुत्ते का रोना बतला रहा था कि इस समय रात है और मैं किसी सुनसान स्थान में कारागृहीत हूँ ।

“आया रिनी को लेकर घर पहुँची होगी । मुझे न पाकर पहले उद्विग्न हुई होगी, फिर धवराकर मुझे पूरे घर में, बगीचे में खोजा होगा । फिर उम पार्क में भी गयी होगी । जब कहीं न मिली हूँगी तो फिर ‘सर’ साहब के बँगले पर खबर की गयी होगी और फिर तो ऊपर से नीचे तक कुहराम मच गया होगा । पुलिस को खबर दे दी गयी होगी । ‘सर’ महोदय की वहू का गायब हो जाना कोई आसान बात है ? —तभी मुझे दो आदमियों की हल्की बातचीत का आभास मिला । कौन होगा ? वही दोनों बदमाश होंगे !! तभी दरवाज़े पर लगे ताले के खोलने का शब्द हुआ और दरवाज़े में हल्की ‘चूँ चूँ’ की आवाज़ हुई । दोनों ने अपने साफ़ों से मुँह ढँक रखे थे और एक के हाथ में जलती हुई तेज़ टार्च थी । मैं भयभीत बच्चे की तरह उनकी ओर दहशत भरी निगाहों से देख रही थी कि एक ने पास मेरे आकर कहा ‘चल, उठ,—’

“किन्तु मैं कैसे उठ सकती थी ? उसने मुझे एक ठोकर मारते हुए कहा—‘उठती है या नहीं ?’

“और मैंने आवाज़ पहचान ली । यह मेरा वही पठान नौकर था जिसे मैंने निकाल दिया था । शायद मुझसे बदला ले रहा था ।

“क्यों, तू वही बदजात है न, जो सैयद की बीवी थी ?”

उसने तेज़ धूरती हुई आँखें मेरी आँखों में वैसे ही डाल दीं जैसे वह काले तसले में भर-भरकर बहुत सारे लाल-लाल अंगारे मेरी आँखों में झोंकने पर तुला हो । मैं समझ गयी कि यह मुझे बहुत पहले से जानता था ।

“याद है तुझे, उस रात दर्रे में तूने हम पर गोली चलायी थी ? खुदा के फ़ज़ल से मैं बच पाया । तू तब लाहौर भाग गयी थी । तब से मैं तेरी तलाश में घूम रहा था । जब तेरी शादी की खबर अख़बार में छपी तब मुझे लगा कि तू वही है । अपनी हींग को घाटे में ही बेचकर मैं दो-एक दिन में हैरान होकर वापस जानेवाला था । नानबाई के यहाँ नान की खटास के साथ बैठा पनीर खा रहा था कि अख़बार में तेरा नाम देखा । तेरे वालिद का भी नाम देखा और मैंने खुदा का शुक्र मनाया कि परवरदिगार ने मेरी मुराद पूरी की । तब मैंने तेरे यहाँ नौकरी की । मैं तुझे अच्छी तरह पहचान लेना चाहता था कि तू ही वह औरत है जिसकी गोली से मेरे दोनों भाई मारे गये थे और जिसकी गोली से मेरा दाहिना कंधा हमेशा के लिए बेकार होगया था । उस दोपहर को जब तू दूध के लिए चिल्ला रही थी कि मुझे तेरा वह दर्रवाला चिल्लाना याद आ गया । मैं तब दरवाज़े की आड़ में खड़ा-खड़ा सोचता रहा कि तेरा इसी समय क़त्ल कर दूँ । मगर तेरी खूबसूरती ने मुझे ऐमा नहीं करने दिया और मैंने तुझे बीबी बनाने का तय कर लिया । तूने मुझे डरकर नोकरी से छुड़वा दिया किन्तु मैं चौबीसों घंटे तेरी ही फ़िराक़ में रहता था । मुझे ख़बर ही नहीं, एक एक लमहे की मुझे ख़बर थी । मुझे मालूम था कि तू उस पार्क में जाती है । मोके की तलाश में था । ज्योंही मुझे मालूम हुआ कि तू उस पार्क में इतनी शाम गये गयी है—मैं तुझे पाने के लिए बेकरार हो उठा ।”

“उसने बड़े प्यार से मेरे हाथों-पैरों के बंधन छोड़े, फिर मुँह का कपड़ा निकाला । मैं सँआसी हो रही थी, भय के मारे कँपकँपी छूट रही थी, किन्तु मैंने बेहद गुस्से में उस पठान के मुँह पर एक तमाचा रसीद किया । एक क्षण को वह अपने गाल महलाता रहा और उसके बाद तो जैसे वह पागल होगया । मुझे याद नहीं, पर उसने मुझे मुँह में कपड़ा ठूसकर मारना शुरू किया । मुझे ठीक तरह याद है कि बेहोश होने के पहले उसने जूते पहने हुए पैर से मेरे पेट में इतनी जोर से लात मारी थी कि मुझे उबकाइयाँ शुरू होगयी थी और मैं औंधे मुँह कटे हुए पेड़ की भाँति गिर पड़ी । वह मेरी पीठ पर लातें मार रहा था और तब मैं बेहोश होगयी । मैं नहीं जानती कि कितनी देर बेहोश रही । पर मुझे याद है कि मैं बेहोश होते समय कटे हुए पेड़ की तरह औंधे मुँह गिरी थी, किन्तु संज्ञा लौटने पर मैंने अपने आपको सीधा लेटे हुए पाया । किसी बुढ़िया का झुर्रियों भरा चेहरा मेरे सिरहने पंखा झल रहा था । एक मिट्टी के घड़े में शायद पानी रखा था और कोने में मिट्टी के कटोरे में कोई चीज़ ढँकी हुई रखी थी । मेरी पीठ और पेट में असह्य पीड़ा हो रही थी । मेरे पैर खुले हुए थे पर हाथ और मुँह इस समय भी बँधे हुए थे । बन्दरों की सी आँखें बनाते हुए वह औरत बिना बोले हुए पंखा झलती रही थी । मेरे सिर में भयानक दर्द हो रहा था और बार-बार उबकाइयाँ आ रही थीं । मैं फूट-फूटकर रो उठी । मैं रो रही थी और निरीह आँखों से उस बुढ़िया से दया की भीख माँग रही थी—पर आज मुझे ऐसा लगता है अकलंक ! जैसे वह कोई मांस का खिलौना थी जो कि चाबी भरने पर

पंखा हिलाने का काम करती थी। वह पत्थरों की सी चुप साधे अपना काम करती जा रही थी। शायद धूप बाहर खूब सारी बिछ गयी थी, किन्तु कहीं से भी कोई आवाज़ नहीं सुनायी पड़ रही थी। मैं घंटों आँसू बहाती रही। मुझे अपनी रिनी की याद सताने लगी। उसके दूध का क्या हुआ होगा ? शायद वह 'सर' साहब के घर पहुँचा दी गयी होगी। उसकी गोल गोल आँखें मुझे खोज रही होंगी और वह बार बार रो उठती होगी। क्या मैं अब कभी भी अपनी बच्ची को नहीं देख पाऊँगी ? क्या ये लोग मुझे बेच देंगे ? हो सकता है यह पठान मुझे ले जाकर उसी दरें में कतल भी कर दे—और मैं अपनी मुक्ति के लिए फूट-फूट कर रोती जा रही थी।

“मुझे घंटों रोना देखकर वह बुढ़िया जादूगरनियों की भाँति गर्दन हिलाते हुए और आँखें मटकते हुए बोली—

‘बम अब बहुत हुआ, चल उठ खाना खा ले’—और उसने मेरे मुँह का कपड़ा निकाला। मिट्टी की रक्वाबी मेरे सामने कर दी। मैं घृणा और वितृष्णा में भरी उस बुढ़िया को घूरने लगी। उसने मुझे घूरते हुए देखकर कहा—

‘घूरती क्यों है चुड़ैल ! खाती हो तो खा, नहीं तो मर भूखी—हाँ नहीं तो, निकाह करेगी उस मरदुए पठान से—अपने ये नखरे खसम को दिखाना। मेरी ओर जो आँखें निकाली तो मुँह ही नोंच लूँगी रंडी का !!’

‘मुझ पर रहम करो—मेरी बच्ची मेरे लिए रो रही होगी, मुझे छोड़ दो’—और मैं फूट फूटकर रो पड़ी।

वह बुढ़िया उठी और दरवाजे की ओर से ही पुकारा—

‘अबे सलीम ! ओ सलीम !!’

‘क्या है बुढ़िया !’—सलीमने दरवाजे में धँसते हुए कहा। यह उस पठान का दूसरा साथी था। रात को इसी के हाथ में टार्च थी और इस समय यह भी बड़ा सा गरारा और पठानों की सी जैकेट पहने हुए था।

‘देख बे, ये रंडो तो खाने से रही। तेरा अहमदवा कब तलक आ जायेगा ? मेरी जान को राहत मिले। तुझे साले मैं ही मिली थी ?’

‘अरे फकीरे की अम्मा, धबराती क्या हो ? अहमद अब आ ही रहा होगा। इधर निकाह हुआ, उधर ट्रेन पकड़ी’—वाक्य पूरा करके अपनी मूँछे उमेठता हुआ वह घूरने लगा।

‘नहीं खाती तो न खाने दो फकीरे की अम्मा ! अहमद इस चुड़ैल की हड्डी-पसली तोड़कर साली को दुरुस्त कर देगा। अहमद को ट्रेन तक छोड़ आने का काम और बाकी है—फिर रात को तो—फकीरे की माँ—शराब और तुम्हारा चकला !!’—कहते हुए उसने फकीरे की माँ के गले में हाथ डाल दिया।

‘अबे, पागल हुआ क्या ? मुझे छोड़। कबर में पैर पहुँच गये और तुझे. . . .’

‘क्यों, कोई नयी चिड़िया फँसी है ?’

‘नयी चिड़िया तो अहमद उड़ाये ले जा रहा है’—कहते हुए उस बुढ़िया ने मेरी ओर देखा और सलीम को एक गंदा इशारा किया। दोनों हँस पड़े।

“ओफ़, तो मैं किन गुंडों के चंगुल में फँस गयी हूँ। मैं बहुत जोरों पर चीख पड़ी कि तभी एक क्राजी के साथ अहमद (वह पठान) अंदर घुसा। अकलंक! छुरे की नोंक पर अहमद ने मेरे साथ निकाह किया। शुरू में मेरे इन्कार करने पर उसने मुझे सबके सामने दो चाँटे रसीद दिये—और तब वह कानूनन और मज़हबी तौर पर मेरा शौहर बन गया। उस सलीम और बुढ़िया के कहने पर—जब क्राजी चला गया तो मेरे मुँह में कपड़ा ठूसकर हाथ पीछे बाँधकर काला बुर्का पहना दिया।

“एक ताँगे में कनात तानकर पता नहीं कहाँ से वे लोग मुझे ले चले। मगर मुझे ये मालूम होगया था कि रेलवे स्टेशन ले जाया जा रहा है।

“यह वही शहर था जहाँ मैंने एक दिन सैयद वाली घटना के बाद आकर अपने माता पिता के साथ शरण ली थी और जहाँ नहर के किनारे बैठ अपने अकलंक के साथ जाने कितने स्वप्न रचाये थे। पाकों की हरी दूब पर औंधे लेटे हुए बायरन और कीट्स की कविताएँ पढ़ते हुए राजरानी होने के मुकुट पहने थे—और आज फिर नया तूफ़ान मुझे यहाँ से दूर जाने कहाँ और कब तक के लिए लिये जा रहा था।”

मेरे दिमाग में जाने क्या क्या विचार आ रहे हैं! मेरा दम घुट रहा है। मुझे लग रहा है जैसे वह अफ़ग़ानी मुझे ताँगे पर बैठाये हुए लाहौर की काली गलियों में से भगाये ले जा रहे हैं—मैं डर रहा हूँ कि कहीं चीख न पड़ूँ क्योंकि कहानी का युधिष्ठिर और व्यास, जो कि सुयोग से दोनों एक ही हैं, कितने शांत मन से मेरे सामने के सोफ़े पर बैठे हुए और पता नहीं अतीत की किन खाइयों में वह अपने को खोये हुए हैं।

मैं साफ़ कह देना चाहता हूँ कि रंजना न तो मैं अकलंक हूँ और न मुझे तुम्हारी इस कहानी में ही कोई उत्साह है कि शोप को भी सुनूँ और जिस पर तुमने सोच-सोचकर जाने कितना गहरा घाव अपने मन में बना लिया है—ठीक उसी तरह चाहती हो कि मैं भी सुन कर जीवन भर के लिए तुम्हारी ही तरह धुलूँ। रंजना, यह न हो पायेगा, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मुझे कल कानपुर के कई व्यापारियों से मिलना है। कल से मैं फिर बिनियानों के विज्ञापनों में डूब जाऊँगा। तुम समझती हो कि तुम्हारी तरह सोफ़े पर आराम से टाँग फैलाये केवल सोचते हुए अपनी ज़िंदगी काट दूँगा। न तो ऐसे साधन ही हैं, और साधन होने पर शायद सम्भव भी न हो, क्योंकि यह सब तो तुम्हारे वर्ग के उजले धुले कपड़े में लिपटे स्त्री-पुरुषों को ही शोभा देता है जो सड़ाँध भरे जिस्मों पर पाउडर की कितनी तहें लगानी चाहियें का हिसाब ठीक ठीक जानते हैं। मैं जानता हूँ, मेरी गरीब पत्नी को कोई आवश्यकता नहीं होती है कि वह खुशबू का बंडल बनने का प्रयास करे। हमारे उस सीलन भरे घर में हमने अपने जीवन को कितना धो-पोंछ कर रखा है कि उस पर तुम्हारे वर्ग की फफूंद नहीं चढ़ेगी। रोज़ काम करता हूँ और मेरी बीबी रोज़ मुझे रोटियाँ, चुम्बन सब

आशीर्वाद की भाँति बरसा देती है। लो, तुम स्वयं ही देखो, तुम्हारी महत्वाकांक्षाओं ने ही तुम्हें कहाँ पहुँचा दिया।

मुझे रंजना पर क्रोध भी आ रहा है कि क्यों वह मुझे सुनाने को आकुल है ! मैं अब न सुन सकूँगा।

“रंजना ! तुम बिना कहे नहीं रह सकतीं, किंतु मैं बिना सुने रह सकता हूँ।”

मैं देख रहा हूँ कि मैं कड़वा बोल गया हूँ। रंजना क्या सोचेगी !! यही कि प्रत्येक व्यक्ति ने उसे ठोकर मारी है। आज पर्व का दिन है और मैं इसको सौहार्द भी नहीं दे सकता, बल्कि उल्टे कड़वा बोलकर यह जना देने पर तुला हूँ कि रंजना, तुम जिसे सुनाकर सिद्ध करना चाह रही हो कि देखो, जिंदगी ने मुझे भयंकर ऊँचाइयों और गहराइयों में पूर्ण बना दिया है—तो तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मेरे निकट तुम्हारे इन अनुभवों का कोई मूल्य नहीं। ये खाइयाँ हैं, जीवन की ऊँचाइयों की इन्हे संज्ञा मत दो।

मुझे ये कपड़े, जो मैंने इस समय पहन रखे हैं, स्पष्ट बता रहे हैं कि अकलंक के ही हैं। वह इन कपड़ों को शायद कभी जल्दी में छोड़ गया होगा। रंजना ने इन्हें साज सँवार कर रखा है और आज फिर अकलंक से मिलते जुलते व्यक्ति को पहनाकर यह पहाड़ी नदी की तरह फूट पड़ी है। आज के दिन को वह परिवर्तन का दिन मानकर विक्षिप्त हो उठी है। कदाचित् इस समय भी विगत को नष्ट-भ्रष्ट करके एक नूतन को जन्म देना चाह रही है। अपनी परिस्थितियों से उसी भाँति विद्रोह करना चाह रही है जैसे बरसाती नदी कूल-कगारों की सीमा को कदापि सहन नहीं करना चाहती और इन सबके लिए जी तोड़कर अपने एक-एक बंधन को तोड़ने पर लगी है।

प्रत्येक के जीवन में बंधनों से हीन होने का एक क्षण आता है और हम में से अधिकांश उसे नहीं पहचान पाते। क्योंकि वह क्षण न तो असाधारण ही होता है, न सैलाब ही और न गंध भरा ही। कदाचित् दूसरे क्षणों की भाँति ही एकदम सादा होता है, कोरे कागज की तरह, तभी तो हम उस पर नया शुरू कर सकते हैं। जब कि हम सोचते हैं कि एक दिन परिवर्तन हमारे द्वार पर खून में लथपथ, रामलीला के राक्षस की तरह अजीब मुखोश में आयेगा और कहेगा ‘मैं परिवर्तन हूँ, उठो!’ और हम तब उठ पड़ेंगे; किन्तु ऐसा कहीं नहीं होता है। सीधे साधे रोज़ के क्षणों में कोई परिवर्तन का क्षण भी होता है, जो चुपचाप आकर चला जाता है और हम चूक जाते हैं। रंजना समझ रही है कि उसके सामने रामलीला के राक्षस की भाँति ही परिवर्तन उपस्थित होगया है और वह विह्वल है कि एक बार किसी तरह तोड़ फेंक दे। बस, उसके बाद तो वह वैसे ही चिकनी और बंधन मुक्त हो जायेगी जैसे केंचुली से अभी का निकला साँप !!

कड़वी परिस्थितियों की केंचुली में रंजना के मन का साँप !!

“अकलंक ! उधर क्या देख रहे हो ?”

मेरे कंधे पर अपना अँगूठीवाला दाहिना हाथ रखते हुए बोली। उसकी पतली

लम्बी गोरी सुडौल उँगली में वह अँगूठी का लाल नग अंगारे की तरह सुलग रहा है ।

“कुछ नहीं रंजना ! इन छोटे-छोटे पेराम्बुलेटरों में बैठे हुए बच्चे कैसे खूबसूरत लग रहे हैं ! सोचता हूँ, कभी तुम भी ऐसी ही, बल्कि बहुत ही सुन्दर बच्ची रही होगी ।”

वह खिड़की के निकट होते हुए कह रही है—

“अकलंक ! याद तो नहीं पड़ता कि मैं कभी बच्ची भी रही हूँ । फिर जो स्मरण है वह विष की तरह तेज है, इसलिए दूसरा सब भूल जाती हूँ । किन्तु फिर तुम व्यवधान डालना क्यों चाहते हो ? मैंने तुमसे कहा कि मुझे कहना है और तुम्हें सुनना ही है । मान लो मैं प्रकृति हूँ जो तुम्हारे नियम नहीं मानती, बल्कि तुम उसके नियम मानने को बाध्य हो । फिर क्या तुम मेरे लिए एक दिन की बाध्यता नहीं सह सकते ?”

हम दोनों ऊपर टैरेस पर आकर बैठे हैं । यहाँ से लखनऊ शहर एकदम विछा हुआ लग रहा है । सीधी-सीधी वृक्षों की पंक्तियाँ दिखायी दे रही हैं । अधिकतर गाल पत्रहीन नंगे होगये हैं और कुछ में नयी कोपलें भी आ चुकी हैं । किसी मिल का भोंपू आममान में कड़वा काला धूँआँ फँकता जा रहा है । कुछ सरकारी इमारतें दीख रही हैं जिन पर झंडे गीले सूखे होकर चुप हैं । अड़ोस पड़ोस की छोटी चिमनियों में से शाम के लिए जलाये गये चूल्हों के धूँएँ उठ रहे हैं, जो हवा में काँपते फ़ैलते छितराते हुए उड़ रहे हैं । दुमंज़िले बंगलों के ऊपर छज्जों के तार पर होली के सब रंगीन कपड़े सूखकर सलवटों से भर गये हैं । स्त्रियों के कपड़ों में उनके अंगों की ऊँचाई-नीचाई भी जैसे उन कपड़ों में सूख गयी हो और वह सूखने के बाद कड़ी होकर इस समय साफ़ दिखायी दे रही है । मुझे एकाएक अपने उस खबरपत्र और टाइम टेबल की याद आ रही है कि जिन बेचारों ने मेरा साथ यहाँ आने तक दिया है और वे इस समय गुमसुम नीचे रंजना के उसी ड्राइंग रूम में जहाँ मैं इतना मारा खो गया हूँ, पड़े होंगे । उस टाइमटेबल पर बनी उस विज्ञापनवाली औरत के भी तो इसी तरह सब कपड़े गीले हो गये थे । और मेरा मन इस समय बहुत खुश हो रहा है, मिर्फ़ इम स्त्र्याल से कि नहीं, इम अजनबी शहर में माथी के रूप में दो चीज़ें हैं जिन्हें मैं अपना कह सकता हूँ, और जो मेरे लौट चलने का भी रास्ता देख रही होंगी । दिन भर चप्पलें भीगी रहने के कारण इस समय कड़ी पड़ गयी है । और कई दिनों से पालिश न करने के कारण उनमें एक तरह से कड़ापन आ गया है । साथ ही हल्की हरी सफ़ेद फफूंद पानी ने चढ़ा दी है जो मुझे इस समय सबसे अधिक चिंतित किये हुए है । मुझे अपने वे कपड़े भी याद आ रहे हैं जो अब नौकर ने धोकर मुखा दिये होंगे, मगर उनका रंग बिलकुल नहीं छूटा होगा । और मैं उन्हें ही पहनकर ट्रेन में पूरा रास्ता तय करूँगा, कानपुर के उस होटल तथा कमरे तक जाऊँगा जहाँ मेरे, कपड़े धुले हुए ट्रंक में बन्द हैं । सचमुच रंगीन कपड़े पहनकर सेकेन्ड क्लास में जाऊँगा तो लोगों को बड़ा अजीब सा लगेगा, किन्तु उन अजीब लगनेवालों को मेरी परि-

स्थिति का ज्ञान थोड़े ही होगा ! वे तो समझेंगे कि मैं फूहड़ हूँ और कपड़ों के मामलों में लापरवाह हूँ। विशेषकर जब वे मुझे मेरी शकल से, जिसमें प्रमुखतः मेरे बाल और निचला मोटा ओठ देखकर जरूर ही पहचान जायेंगे कि मैं दक्षिण भारत का हूँ। ये उत्तर भारत के लोग दक्षिण के सब लोगों को 'मद्रासी' कहते हैं। इस तरह हर को 'मद्रासी' कह देना इन्हें नहीं मालूम हम लोगों को कितना बुरा लगता है। मगर इससे लगता है कि ये लोग अपने ही देश का भूगोल कितना जानते हैं। आप चाहे तमिल बोलिये या तेलगू, ये उत्तर के लोग कहेंगे—'मद्रासी बोल रहा है,' जब कि मजेदार बात तो यह है कि 'मद्रासी' कोई भाषा ही नहीं है। यह तो वैसे ही है जैसे कोई दक्षिणी भारत का हिंदी या मराठी, गुजराती या बँगला सुनकर कहे "यह 'दिल्ली' बोल रहा है।"

मुझे ये कपड़े जरूर ही बदल लेने चाहियें। क्योंकि एक तो ये मेरे नहीं हैं, दूसरे ये कपड़े किसी ऐसे व्यक्ति के हैं जिसके साथ रंजना नाम की स्त्री का सम्बन्ध है—जो इस समय मेरे सामने कितनी शांत होकर आराम-कुर्मी पर बैठी हुई अकलंक के लिए बेचैन है, और वह मैं नहीं हूँ। रंजना के कथनानुसार तो नहीं, पर लगता है कि बिल्कुल मुझ जैसा ही वह व्यक्ति है।

नंगी सूखी डालें लिये पेड़ आममान के साँवलेपन में कैसे नसों के छत्तों की तरह बिछे हुए हैं। खान्दार घरों की चिमनियों में से ममालों की गंध भी आ रही है कदाचित् यह काँदे की गंध है—काँदे को, इधर प्याज कहा जाता है। इस समय बँगलों में काफी सुनसान लग रहा है। नीकर लोग बँगलों के लॉनों में घूमने हुए बीड़ी पी रहे हैं क्योंकि मालिक लोग शायद बाजार या घूमने गये होंगे। दूध वाले माइकिलों पर दूध के डिब्बे लटकाये बँगलों के सामने घंटी या हॉर्न बजाने लगे हैं। रंग खेलकर जीवन फिर से ताज़े फूल की तरह गरम और रंग-गंधमय होकर खिल उठा है। दूरी पर हल्का कुहरा नीले धूएँ की तरह घिरने को हो रहा है। मार्च के इस अंतिम सप्ताह में शायद यह कुहरा आखिरी बार घिर रहा है। साँझ की जाती हुई धूप में बिल्कुल ही ऊनापन नहीं है बल्कि हल्की नमी है जो इस समय मुझे बेहद पसंद आ रही है। दिन भर कमरे में बंद रहा हूँ जिसने मुझे परेशान कर दिया था। इस समय मैं चाह रहा हूँ कि खूब सारी ठंड हो आये और अँगोठी की आँच में लहकते हुए लाल अंगारे देखते हुए अपनी ठंडी हथेलियाँ सेंकता जाऊँ और मलता जाऊँ। तब मुझे किसी चीज़ की फ़िक्र नहीं हो सकती है क्योंकि रंजना जब-तब जरूर ही सिगरेट देगी, जिसे मैं मुलगा भी सकता हूँ और धूएँ के छल्लों में खुश होती हुई छोटी-छोटी आँखें बहुत भली दिखायी देंगी—मेरी आँखों के भलेपन के सम्बन्ध में मेरे पास अनेकों प्रमाण हैं।

रंजना ने कहना शुरू किया. . . .

"देखो अकलंक ! तुम लोग न तो कभी हमें समझ सकते हो और न कभी समझ सकोगे भी। क्योंकि हम हमेशा बरसाती नदी हैं। आँखों से नापकर धोखा ही खाओगे और सत्य जानने के लिए उसमें कूदना होता है, जो तुम लोगों से कभी नहीं होने का, यह

में कहे देती हूँ। तुम कहोगे मैं किताबें बोल रही हूँ या मैंने पूरी ज़िंदगी कोई उपन्यास जीया है, है न ? तुम जो समझो, मुझे कुछ नहीं कहना। जिन लोगों ने जबरन मेरा हाथ पकड़-पकड़कर क्रसमें खायी हैं, जब उनसे कुछ नहीं कहा तब तुम तो राजनीतिक ठहरे। व्यक्ति के दुःख-दर्द से बड़ी तो, तुम्हारे गाँधी बाबा ने कहा है, देश और समाज की पीड़ा होती है। इतनी बड़ी बात एम. ए. तक मैंने भी पढ़ी थी अकलंक ! परन्तु जीना तो मुझे बहुत अलग तरह का जीना पड़ा न, जो कि डिग्री न था और न पुस्तक ही।

“बिना सुने कोई धारणा मत बना बैठना, यदि बना बैठो तो कहना मत। क्योंकि रंजना के लिए अब सब व्यर्थ है। हाँ, तो जानते हो उन दिनों ट्रेनों में तुम्हारे आज की तरह भीड़ें थोड़े ही होती थीं—फिर वह तो मेल थी। पूरे डिब्बे में छीड़ थी, तीन-चार दूसरे आदमी थे जो कि बड़े डिब्बे के एक तरफ़ कोने में बैठे हुए ताश खेल रहे थे। हम लोग बम्बई जा रहे थे। जिस समय इंजिन ने सीटी बजाकर भाप छोड़ी अकलंक ! मेरा मन खिड़की से कूद पड़ने को हुआ, चीख पड़ने को हुआ, किन्तु सब व्यर्थ था। क्योंकि मुंह में कपड़ा ठुंसा हुआ और हाथ बँधे हुए थे। मेरे सामने तो आज के दीप जलने पर जो नये पति के रूप में आया था वह अहमद-कुल्ले पर खास किसम का साफ़ा बाँधे हुए बीड़ी पी रहा था। उसका वह बड़ा सा नीचा कुर्ता जिसमें चाँदी के फूलवाले बटन और जिसके सफ़ेद कफ़ डोरे से बँधे हुए थे। उसकी वह काली जैकेट—जिसमें अंदर की जेब में रखा हुआ बड़ा सा चाकू जिसकी मूठ की काली तेल खायी हुई लकड़ी बाहर निकली हुई थी, सब के सब डर पैदा कर रहे थे। उसकी वह पूरे थान की सलवार जो जाने कितने दिनों से न धुलने के कारण मटमैली हो रही थी। उसके गोरे किन्तु जिन पर मैल साफ़ दिखायी दे रही थी, पैरों में मोटे चमड़े की पेशावरी चप्पलें थीं। वह मेरे बुर्के में आँखों के लिए बनी जाली द्वारा बराबर घूरता चला जा रहा था। उसका वह ऊँचे जबड़ों का गोरा किन्तु खूँखार मुँह, ऐंठी हुई मूछें और कानों में दो सोने की पतली मुर्कियाँ, बालों के गर्दन तक पट्टे कटे हुए साफ़े के पीछे का हिस्सा गले में लपेटे हुए—मुझे बुर्के में कँपकंपी छूट रही थी। कभी-कभी खिड़की से लाहौर की बस्ती का वह भाग दिखायी पड़ जाता था जहाँ मेरे ससुर की दो बड़ी कोठियाँ बनी हुई थीं। मैं कहाँ से कहाँ आ गयी ? और मेरा सिर घूमने लगा। आँखों से आँसू बहने लगे। इसी लाहौर में मेरी रिनी है, वह मुझे अब कभी भी नहीं देख पायेगी—वह दूध के लिए चिल्लाती होगी—मेरा वक्षःस्थल दूध से भरता जा रहा था, पर व्यर्थ !!

“लाहौर मेरी आँखों के सामने से जाने कब तक के लिए और शायद हमेशा के लिए छूट रहा था। ट्रेन में बैठे हुए मुझे याद पड़ने लगा कि जब मैं तुमसे अंतिम बार भी नहीं मिल पायी थी तब मैं कितनी बीमार हुई, किन्तु हर बीमारी का अंत तो होता ही है। हम कैसी ही भयंकर बीमारी की शरण क्यों न लें, किन्तु एक सीमा तक ही हम जीवन के यथार्थ को बीमारी की आड़ लेकर टाल सकते हैं। हमें कभी न कभी तो फिर साधारण तरीके

पर जीना होता ही है । और फिर हुआ भी वही ।

बीमारी से अच्छा होते ही माता-पिता ने मुझे घर में फिर बंद कर दिया था । मैं अधिक आ-जा नहीं सकती थी और मैंने देखा कि अब रोज़ लोगवाग मुझे देखने के लिए आने लगे हैं । मैं समझ गयी कि मेरा अब विवाह किया जायगा । मेरे पिता मेरे कारण बहुत टूट चुके थे । मेरा ब्याह जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी करना चाह रहे थे क्योंकि नंदलाल और अकलंक इन दो नामों के कारण लोगों में मुझे लेकर अक्सर कानाफूसी होती थी और खासकर जहाँ चार औरतों ने मेरी माँ को देखा नहीं कि कानाफूसी शुरू हो जाती थी ।

“और एक दिन मुझे मालूम हुआ कि ‘सर’ कपूर के एकमात्र पागल लड़के जगदीश के साथ मेरा तिलक चढ़ गया । मैं इस लड़के को खूब जानती थी, जब कभी वह मुझे नंदलाल के मैच में देख लेता मुझसे बातें करने के लिए लालायित रहता था, किन्तु हम सब जानती थीं कि वह पागल है, और मूर्ख भी । पिछले चार सालों से बी. ए. में फ़ेल हो रहा है ।

“और एक दिन बाजों के स्वरों के साथ मेरा विवाह शुरू हुआ और तीन दिन में जीवन का यह काम भी समाप्त हुआ । मेरे लिए यह सब नया नहीं था, भले ही इसका रूप नया रहा हो । सिल्क में लिपटी हुई सर कपूर के घर पहुँच गयी, फिर उसके बाद मुझे याद नहीं पड़ता कि मैं अपने पिता के घर कभी वापस गयी ।

“मैं जानती हूँ कि मेरा यह पति चाहे कुछ भी रहा हो किन्तु व्यक्तिगत रूप से अपने को मेरे सामने जाने क्यों दोषी ही मानता था । कदाचित् मेरे हँस देने पर या आलिंगन के लिए बाँहें बड़ा देने पर निहाल हो उठता था । मैंने निश्चय कर लिया था कि बिना किसी बाधा के अब मुझे इसी पागल के साथ सुख पैदा करना है । वह मुझे लेकर विवाह के पहले पहले के दिनों में डल झील, कुल्लू घाटी गया था । हम हफ़्तों पहाड़ियों, जंगलों में घूमा करते थे । मैं पहाड़ों की बरफ़ के ठंडेपन में अपने विगत जीवन के अंगारों को सदा के लिए दफ़ना देना चाहती थी । मैं सदा मन ही मन हँसती थी कि—सौंदर्य और पागल !! दोनों को एक सूत्र में बँधे देखकर—किन्तु मन में कभी हलके से उबकाई भी आती थी । मैं अपने मन का और अपने सौंदर्य का सारा विद्रोह कुल्लू घाटी की गहराइयों में हमेशा के लिए फेंक आयी थी । मैं कह सकती हूँ कि वह पागल मुझे प्यार करता था । किन्तु अनागत मशालें लिये मेरी प्रतीक्षा में खड़ा था अकलंक ! और पिता का स्वास्थ्य दिन पर दिन खराब होता जा रहा था । समय का व्यवधान और मेरे पागल पति की पैसे की बाँछाएँ—प्यार, चुम्बन और आलिंगन के बदले अब रोज़ मार पड़ती थी । पति देवता की माँग थी कि दहेज में पेंतीस हजार के बदले जो सिर्फ़ तीस हजार मिले हैं—शेष यदि शीघ्र नहीं दिया जायगा तो मुझे वे मार-मार कर ज़िंदा दफ़ना देंगे ।

“आज सोचती हूँ कि ज़िंदा दफ़ना देने का दावा उसका अकेले का झूठा हो सकता था

किन्तु मैंने अपने आपको निश्चय ही दफना दिया, इसमें कहीं कोई संशय नहीं, रंच मात्र भी झूठ नहीं, दुराव का प्रश्न ही नहीं उठता। और जहाँ आकर अब मुझे खड़ा होना पड़ा है अकलंक ! उसके आगे तो अब कोई गति शेष नहीं, इसलिए कि गति की मृत्यु हो चुकी है। गतिमान्, दुराव कर भी ले, किन्तु हकनेवाले के लिये यह सम्भव ही नहीं। उसके अपने लिए भी उचित नहीं, समझे अकलंक ! तभी तो दफना देनेवाली बात भी मिथ्या नहीं !! यदि कोई वस्तु मिथ्या है तो वह मैं, मेरा सौंदर्य और मेरे वर्ग की नारी—शेष सब सत्य है; असत्य, अशेष तो मैं हूँ, नारी है ! !”

रंजना की आँखों में साँझ जल रही है ।

“शादी के बाद से घरवालों से भेंट हुई नहीं थी। मुझे क्या मालूम था कि पिता जी ने क्यों इतना पैसा देने का वायदा किया था। और अकलंक ! मुझे रोज़ मारा जाता था। दिन भर में एक बार ही खाना दिया जाता था। मेरे मन में किसी के प्रति कोई रोप नहीं था—किन्तु हम सबसे ज़्यादा धोखा अगर किसी को देते हैं तो स्वयं को। क्योंकि हम अपने को छोटा सा तर्क देकर भी भुलावे में डाल सकते हैं, जब कि सामनेवाला कथन की सत्यता को देखता है, परखता है अपनी बुद्धि के तर्क से; इसलिए हम उसकी क्या हानि कर पाते हैं ? इसीलिए होता यह है कि जहाँ तक हम आसानी से सहन कर सकते हैं—वहाँ तक बहुत कुछ मान लेते हैं कि बस इसके बाद कुछ नहीं आने का है। किन्तु प्रत्येक बार हमारा यह भ्रम दूर होता है और एक दिन केवल अपनी मूर्खताओं के कारण शतशः खंडों में टूट जाते हैं—व्यक्तित्व के शतशः खंड-खंड ! !

“कदाचित् सर कपूर साहब ने मेरे पिता पर यह प्रदर्शित करवा दिया था कि शीघ्र ही अगर वे अपनी पूरी सम्पत्ति दामाद के नाम नहीं कर देंगे तो उनकी बेटों का जीवन खतरे से खाली नहीं।

“और अकलंक ! अपने कथन की सत्यता के प्रमाण में कपूर साहब ने मार बढ़वा दी और खाना कम कर दिया था। अकलंक ! जो बात मैं नहीं कह सकती और कहना भी नहीं चाहती, किन्तु क्या करूँ बिना कहे मेरा दम भी तो घुट सकता है—और वह मेरा पति मेरे भूखे शरीर के साथ खेलता था। दिन भर मार और रात भर पैशाचिकों की भाँति मेरा शरीर उसकी वामना पूर्ति के लिए प्रस्तुत रखा जाता था अकलंक ! क्या तुमने कभी अनुभव किया है कि पेट में एक अन्न दाने का न हो, एक बूँद पानी की न हो, बेंतों की मार से पूरा शरीर दर्द कर रहा हो और उस समय, हाँ उस समय. . . जाने दो अकलंक ! जो मैं एक बार कह गयी अब मेरा साहस नहीं कि उसे फिर से कह सकूँ। शब्दों की लज्जा एक बार आवेश में ही तोड़ी जा सकती है, बार-बार सम्भव नहीं। उन्हीं दिनों मुझे उस पागल का गर्भ रहा।

“कहते हैं मेरे माता-पिता को सर कपूर महोदय ने कदाचित् ज़हर दिलवा दिया था। उधर मैं नये प्राणी के कारण सदा बीमार रहने लगी थी। जिस दिन नौ महीने यातनाएँ

सहकर मैंने सर कपूर की पोती को जन्म दिया—पिता-पुत्र दोनों विलायत की यात्रा के लिए रवाना हो चुके थे। जिस समय मेरी रिनी पैदा हुई थी मैं बेहोश थी, क्योंकि उसके गर्भ में आने के पहले ही सारी भूख जैसे जाग्रत हो उठी थी। मेरा रोम-रोम भूखा और प्यासा था।

“मैं जब अस्पताल से लौटी, मुझे बहुत ही आत्मग्लानि थी। मुझे लग रहा था कि कहीं कुछ अमाधारण है जो रोज़ की ज़िन्दगी को ढँक लेता है, ग्रस लेता है, और मुझे चुप नहीं बैठने देता। मेरी उन दिनों यही दिनचर्या थी कि अपनी रिनी को हमेशा आया की गोद में खेलने हुए देखने रहना और एक आराम कुर्मी धूप में डलवा छतरी के नीचे बैठकर अपनी बच्ची के लिए कोई न कोई चीज़ उन की बिनते रहना। उस हरे लॉन पर कभी से आया की गोद में तो कभी पेराम्बुलेटर में मेरी बच्ची मुझे मुनगान घर की सभी चीज़ों से अधिक रंगीन, मीठी, प्यारी तथा स्वयंदाग लगा करती थी। उनके वे छोटे-छोटे लाल हाथ, छोटी हथेली, उँगलियाँ, नाखून—वे गोल-गोल काली गफेंद आँखें जो पैदा होने के पूर्व कई दिनों बाद तक हमेशा बंद रहीं—किन्तु बाद में वह जब अपनी चिकनी-चिकनी पलकों को खोलती बंद करती थी तब मुझे बेहद प्रसन्नता होती थी कि अकलक ! यह एकदम मेरी बच्ची है—अगर मेरा वम चलता तो मैं अपनी बच्ची को कभी अपने शरीर में अलग नहीं करती। मैं उसके लिए सब कुछ कर सकती थी। अगर वह किसी बात पर कभी रोती थी तो मेरा कलेजा मुँह तक आ जाता था। आया जब कभी उसे नहलाती थी, मुझे डर लगता था कि मेरी बच्ची आया का इतना कड़ा हाथ कैसे सहन कर पाती होगी। पर जब मैं उसके भूरे-भूरे बदन को बेबी पाउडर से खूब सारा खुशबू से भर देती थी तो मेरी आत्मा, मेरा मन एक ठंडी बरफ की तरह ठंडी प्रसन्नता से भर जाता था। जाने कितने मोज़े, पुल-ओवर, कनटोपा, छोटे-छोटे वूलन-फ्रॉक, लड़कों के जैसे सूट, सब के सब मैं दिन भर लॉन में छतरी के नीचे बैठी उसके लिए बिना करती थी। मेरा बस चल पाता तो मैं पूरे लाहौर की उन से अपनी बच्ची के लिए हज़ारों मोज़े, पुल ओवर बिन डालती।

“मैंने अपने शरीर में से गोشت और खून किसी दूसरे शरीर को दान में दिया था, इसलिए पूरे शरीर में हल्का पीलापन आ गया था। हरे लॉन में अपने हल्दी के रंग के पाँव की उँगलियों को देखती थी और मुझे गहरी खुशी होती थी। मैं पूरी तरह समझ चुकी थी कि जन्म देना क्या होता है। किन्तु अपनी उस बच्ची को देखती थी तो मुझे लगता था कि अंकुर जब धरती में से फूटता है तो कदाचित् धरती को भी उतनी ही पीड़ा होती होगी, किन्तु यह पीड़ा प्रसन्नता है, तभी तो धरती सैकड़ों बार अंकुरित होती है और तुमसे सच कहूँ अकलंक ! कि मेरे अंदर का कोई अंश जाने क्यों ऐसा कभी-कभी चाहता था कि मैं अधिक से अधिक बार माँ बनूँ।

“और उस दिन एक तो सुबह से गयी हुई आया जब पूरी दोपहर होने को आयी तब लौटी, दूसरे दूध डुल गया था—और मेरी रिनी के लिए आया और दूध दोनों जरूरी थे।

रिनी बहुत जोरों से रो रही थी, मैं अपनी रिनी का रोना कभी नहीं सहन कर सकती थी। जानते हो जब मेरे सम्हालने पर भी वह रोती रही, खूब रोती रही तब मैं भी उसे अपने कंधे पर थपकियाँ देते हुए रोने लगी थी—तुम समझोगे मैं मूर्ख थी, है न ? लेकिन अकलंक ! मेरी रिनी मुझे सबसे ज्यादा प्यारी चीज़ थी। मैं आया को अपनी उसी विक्षिप्त अवस्था में बहुत जोरों से डाँट रही थी और उसी दोपहर को अहमद मेरे जीवन में फिर आँधी के छोटे से बादल की तरह उठा जिसका मुझे पता नहीं, किन्तु धीरे धीरे उसने घिरकर पूरे आकाश को छा लिया कि मैं कुछ सोच सकूँ इसके पहले ही घनघोर मूसलाधार बारिश होने लगी और मैं पूरी भोग गयी।”

किन्तु मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि रंजना ने प्रत्येक घटना, प्रत्येक व्यक्ति के सामने क्यों झुकना स्वीकार किया ? और इसी झुकने को कहती है—नहीं, उसने विद्रोह किया है। विद्रोह में, पृथ्वी की भाँति, स्वयं की कील पर भी घूमती रही और सूर्य-प्रदक्षिणा की तरह घटनाओं एवं व्यक्तियों के चारों ओर चक्कर भी काटती रही—यही तो है रंजना !!

“किन्तु रंजना ! तुम्हारे इन सब कार्यों के पीछे तुम्हारा मन क्या लेकर निहित था ?”

“निहित मत कहो अकलंक ! क्योंकि निहित ही तो नहीं था बल्कि अनासक्त रहने की चेष्टा की थी मैंने। मन के निहित हो जाने पर तो हम परिस्थितियों को यथातथ्य रूप में अंगीकार करके उसी के साथ एकात्मता पैदा कर लेते हैं। उस दिन अहमद के साथ ट्रेन में बैठे हुए मैंने अपने मन को तो रावी पार करते हुए उस अंधकार में फेंक दिया या कहूँ कि न फेंकती तो क्या करती ? मैं कहती हूँ मेरे पास मन नहीं है। तुम सोचते क्यों नहीं कि जब सिर्फ एक तन के पीछे मुझे क्या-क्या न करना पड़ा, यदि लोगों को मेरे मन के बारे में भी पता लग जाता तो मेरी यातनाओं का अंत क्या आता ? और मैं तुम्हें आज यहाँ इस तरह दिखलायी पड़ती ? मन एक तो किसी ने माँगा ही नहीं, और यदि माँगा होता तो मगर से जो बात बंदर ने कही थी कि “वह तो पेड़ पर ही रह गया”—की तरह ही कुछ कहकर अपना पिंड छुड़ाती। उस रात जब लाहौर से चली, मैंने सदा के लिए मान लिया कि रंजना ! तेरे पाम केवल शरीर है और अब से इसका मालिक यह गंदा अफ़गानी है—कल यह तुझे वम्बई में बेच भी सकता है और तब यह शरीर उस खरीददार का भी होगा।”

और मैं देख रहा हूँ मेरा सिर घूम रहा है। रंजना मेरे सामने वेंसी ही गम्भीर बनी बैठी है।

आसमान की नीली साड़ी पर काली गोटा लगती जा रही है।

“मैं देखती हूँ तुम बहुत ही थक गये हो, क्यों, है न अकलंक ?”

और वह दोनों हथेलियों पर अपना सिर टिकाये आरामकुर्सी पर बैठी हुई सामने के आसमान को देखती हुई मुस्करा रही है।

“तो सुनो, बैरा को आवाज़ दे दो, वह चाय ले आयेगा और कुछ नाश्ता भी । क्या करूँ, मुझे स्वयं लाज लगती है अकलंक ! सब कहते-सुनते । किन्तु लाज लगने से ही क्या होता है ? जो हो चुका, वह हमारी-तुम्हारी वर्तमान की लज्जा से परे है, उस पर हमारा अधिकार नहीं । इसीलिए हम विगत को सम्पूर्ण रूप में कह पाते हैं । तुम कहोगे मैं बड़ी संस्कारवाली बनती हूँ किन्तु यह सब कहते हुए सोचती रहती हूँ कि यह कथा किसी अन्य की है जो मुझे इसलिए सुनानी पड़ रही है क्योंकि केवल मुझे ही अच्छी तरह याद है । वस, मात्र इतना ही सम्बन्ध है ।”—वह हल्के हँस रही है ।

“इसमें हँसने की क्या बात है रंजना ! हम हँसकर सामनेवाले को कितनी खराब स्थिति में डाल देते हैं, यह तुम नहीं मानती ?”

“अकलंक ! मैं मिर्फ इसलिए हँसी थी कि देखो, रंजना के अंदर जो व्यावहारिक और चतुर व्यक्ति बैठा है वह कितना तार्किक एवं शिष्ट है । कहीं तुम मुझ से नाराज़ न हो जाओ इसलिए उसने रंजना के मुँह में कितने सिद्धान्त की बात कहलवायी और बात का खंडन भी करवा दिया—मुझे अपने ही इन दो रूपों पर हँसी आयी थी । तभी तो दो रूप का होना चतुराई है, किन्तु बहुरूपिया होना पेशा माना जाता है ।”

शाम की हल्की हवा के झोंके में रंजना के लहराते हुए बाल हल्के उड़ रहे हैं और उसके पैरों के पास की साड़ी रह-रहकर आवाज़ करती हुई जब उड़ जाती है तब उसके अंदर का सफेद पटीकोट हल्के दीख जाता है । उसकी चप्पलों में उसके गोरे पैर कैसे चुप हैं, जैसे वे अलग से आराम कर रहे हैं ।

मैं अंतिम रूप से निर्णय कर लेना चाहता हूँ कि आज कानपुर जाकर शीघ्र ही उत्तर भारत छोड़ दूँगा और फिर कभी भी विध्या पार नहीं आऊँगा । और यदि उत्तर भारत आया भी तो लखनऊ नहीं आऊँगा, और यदि लखनऊ आया तो रंजना से तो नहीं ही मिलूँगा । मगर रंजना, इस समय तो मेरे सामने तूफान की तरह बैठी हुई है ।

कितनी शांति चारों ओर इस समय दिखायी दे रही है । अब कदाचित् साँझ का पहला तारा उगने का समय हो चला है । और फिर उसके बाद चाँदी के कलदार रूपों की तरह तारों से पूरा आकाश टकों की जगमगाहट से भर जायगा । यह जो दाहिने हाथ पर दूर यूकेलिप्टस का घना कुंज है, कदाचित् यह “जू” जिसका रंजना ने ‘वनारसी बाग’ कहकर परिचय दिया था, वहाँ से भूखे शेरों की दहाड़ें आ रही हैं, बेचारों को कल सुबह फिर नपा-तुला मांस मिलेगा । वह जो बड़े जोरों से चीख रहा है जरूर ही वह चिम्पैज़ी होगा ।—नाश्ते के साथ बैरा की लायी हुई चाय की गंध इस समय मेरे तन और मन में भरी हुई है । मुझे इस बात की ओर आकर्षित कर रही है कि मैं जल्द से जल्द दूसरा प्याला भर लूँ और इस खूबसूरत साँझ को ज्यादा से ज्यादा अपने अनुकूल बनाकर इसी में डूब जाऊँ ।

मेरे सामने बैठी हुई रंजना अवश्य ही विगत जीवन की कोई घटना चुन रही होगी,

जिसकी चौखट में यह अपने कुछ कड़वे वरसों की जाली बुनकर मुझे दिखाते हुए कह सके कि “देखो अकलंक ! यही तो मैं हूँ, न इससे ज्यादा न इससे कम”। बीत जाने पर कड़वा भी सुन्दर हो उठता है, क्योंकि तब ‘हम’ उसमें से अलग हो जाते हैं । दुःख तो उस ‘हम’ को होता है जो कि बीत जाने पर तब कहीं नहीं होता उस सबके साथ ।

“अकलंक ! रास्ते भर वह अहमद मुझसे यही कहता रहा कि उसने मुझे जब से देखा था वह मुझे बीबी बनाने की सोचे हुए था, और मैं अहमद की बीबी बनकर देखूंगी कि वह मुझे अपने प्राणों से भी ज्यादा प्यार करता है । बम्बई में वह मेरे लिए क्या कुछ नहीं करेगा । मगर वह मुझे रंजना नहीं कह सकता है, क्योंकि लोगों को शक होगा कि वह मुझे भगाकर लाया है, इसलिए जो नाम मुझे पसन्द हो उसी में वह मुझे पुकारेगा, मगर नाम होना चाहिए मुगलमानी और उसने मुझे ‘नसीम’ नाम दिया । और अहमद अपनी नसीम के साथ बम्बई पहुँचा । रास्ते भर वह बातों में भले ही नरम होगया था, किन्तु मेरे हाथों में ऐंठन रस्मी के कारण आ गयी थी । मुँह के कपड़े के कारण जो यातना मुझे हुई वह जाने दो अकलंक ! यातना कही नहीं जा सकती । अंधेरी में कुछ अफगान और फ्रन्टियर के लोग रहते थे और वह मुझे लेकर अपने भाइयों के बीच में पहुँचा । जब तक दूसरी जगह नहीं मिल जाती है तब तक अहमद वही रहना पसंद करेगा । मैंने पूरी तरह परिस्थितियों से समझौता कर लिया था । ऐसा क्यों ? तुम पूछोगे मैंने यह मौदा क्यों किया ? देखो, ऐसा पूछकर मूर्ख मत बनना, क्योंकि मुझे तब लगेगा कि मैंने उस समय गलत किया था । तुम यह क्यों नहीं सोचते अकलंक ! कि क्या मैं लौटकर वापस लाहीर जा सकती थी ? संसार का कोई पनि यदि यह जान जाये कि उसकी पत्नी पहले किसी दूसरे की पत्नी थी, तो वह उसे सहन नहीं कर सकता । ठीक भी है, कोई भी पति फ़रिश्ता तो हुआ नहीं करता है, फिर वह व्यक्ति जिसे प्रेम नहीं, मात्र विवाह हुआ हो—शरीर का सौदा—जब वही शरीर पहले किसी का होगया हो और वह भी विधर्मी का—तो धार्मिक पति के लिए अकलंक ! सहन कर जाना कभी सम्भव नहीं । समाज, धर्म, सबकी लाज एकमात्र स्त्री के शरीर पर आधार रूप से आश्रित है अकलंक ! स्त्री का शरीर दूषित हुआ नहीं कि हमारे देवताओं के मुँह पर कालिख पुती नहीं ! मेरे विचार से महमूद अज़नबी को मंदिरों पर हमला करने के स्थान पर यही करना अधिक आसान पड़ता ।”

मैं देख रहा हूँ, कुहरे भरी शाम में रंजना घटनाओं से घायल, खून से लथपथ भरी है । अपनी जलती हुई उँगलियों से इस संज्ञा काश में जैसे लिख रही हो, सबको चिढ़ा रही हो, कि तुम—हाँ तुम ! ! मुझे कुलटा, चरित्रहीन, नीच समझते हो—और मैं हूँ भी चरित्रहीन—परन्तु मैं अकेली ही नहीं, तुम जिस समाज में बैठे हुए हो वह पूरा का पूरा वेश्या का समाज है, दुर्गन्ध दे रहा है । जलते ज्वालामुखी में तुम किसे दोष देने बैठे हो ? किसी भी दिन तुम्हारे पैरों की धरती, जिसे तुम इतनी विनयशील और शांत समझते हो, सैलाब और भूकम्प बनकर टुकड़े-टुकड़े हो सकती है, और तुम उस दिन कहाँ रहोगे ?

तुम्हारी मान्यताएँ कहाँ होंगी ? तुम्हारे चरित्र और धर्म का क्या होगा ?

“दिन, सप्ताह और मास व्यतीत हो रहे थे और मैं देख रही थी कि अहमद कुछ भी नहीं करता है । जो अहमद मेरे बँगले के सामने स्टूल पर बैठा हुआ आने-जाने वालों पर रीढ़ झाड़ने के लिए मूँछों पर ताव दिया करता था किन्तु मेरे आते ही ‘मलाम मेम साहब’ कहकर एड़ियों पर जापानी खिलौनों की तरह गेंठ जाया करता था, अब मेरी बात का या तो उत्तर नहीं देता था या फिर कतराकर निकल जाता था । मेरी ममझ में यह नहीं आता था कि उसने मेरे जेवरों का क्या किया ! क्यों नहीं वह कोई होटल खोल लेता ? व्यापार शुरू करने के लायक तो पैसा था ही । किन्तु या तो वह बीड़ियाँ धौकना रहता था या फिर चार बार कच्चा ही गोयन चबाकर पानी पीकर सोता रहता था । और मैं अहमद के बच्चे की पहली बार माँ बनी । उसकी चाल-ढाल में लगता था कि वह शायद इसी दिन का रास्ता देख रहा था । ऐसा क्यों, मुझे पता नहीं, मगर अब उसे अपने बच्चे को दिन भर खिलاته रहने का काम मिल गया था । मैंने उससे कई बार कहा कि वह क्यों नहीं कोई धंधा करता ? पहले तो वह हँस दिया करता था, किन्तु बच्चा होने के बाद से तो हाथ चलाना शुरू कर दिया था । मुझे अब फिर अपने सवालियों के उत्तर में बात या जवाब के बजाय मार खानी पड़ रही थी । क्या स्त्री की वान का उत्तर तुम लोगों के पास मिवाय हाथ चलाने के और कुछ नहीं होता अकलक ? होगा भी, तुम्हारा उत्तर मेरे काम आज आने से तो रहा, फिर क्या कहूँगी जानकर कि मार के अलावा और भी कुछ उत्तर है ।

“अब वह धीरे-धीरे घर में गायब रहने लगा । कभी पूछने पर मालूम होता कि आज इतवार था और वह दिन भर ऐलीफैंटा की गुफाओं में ही पड़ा रहा । वह अब भयंकर शराबी हो चला था । उसके साथियों में पता चला कि वह किसी फ़िल्म कम्पनी की गेट-कीपरी के चक्कर में है । कभी सुनती कि वह पैसा कमाने गेला गया है ।

“मैंने एक दिन परेशान होकर, जब वह शाम को घर लौटा, तो कहा—

उसे मालूम होना चाहिए कि नसीम ऐसी बैसी नहीं है—अहमद उसके गहने लौटा दे ।—

“मुझे ठीक याद है अकलक ! तब उसने मुझे रात के आठ बजे से मारना शुरू किया और मुझे कब तक मारता रहा यह पता नहीं परन्तु होश आने पर देखा कि अहमद अपने बच्चे और सब चीजों के साथ गायब है । मैं उस समय दर्द में कराह रही थी और पूरे शरीर में इस समय इतनी पीड़ा हो रही थी कि जोड़-जोड़ तक दर्द कर रहा था । जानते हो अकलक ! जब वह मुझे अपनी पेशावरी चप्पलों से और बेंत से मार रहा था तो क्या कहता जा रहा था ? कि मैं बेश्या हूँ और उसे इस बात का हमेशा खेद रहेगा कि उसके एकमात्र लड़के की माँ बेश्या थी—और वह भी काफ़िर ! ! उसने मेरे सिर के बाल काटकर बदनूरत कर दिया था । मेरी पीठ, जाँघों पर खून की गाँठें लम्बी-लम्बी पड़ गयी थीं । एक बार फिर लगा कि परिवर्तन जैसे दुआर खटखटा रहा है । मुझे

लगता है कि यातना माता है और परिवर्तन उसका पुत्र ! देखते हो अकलंक ! क्या तन की यातना से अधिक भयंकर होती है मन की यातना ? नारी के पास जब मात्र तन नाम की ही एक चीज़ है और उसके लिए भी उसे क्या-क्या नहीं भोगना पड़ता ; यदि मन का भी इसमें संयोग हो जाये तो क्या वह कभी एक दिन भी जी सकती है ?

“बगल में एक चीनी जूते बनानेवाला रहा करता था, जिसकी बड़ी लड़की जब अहमद था तब भी कभी-कभी पहले आया करती थी। वह चीनी कदाचित् बहुत दिनों से ही हिन्दुस्तान में बस गया था। पहले वह चीनी कलकत्ते में रहता था, उसकी बीबी का चाल-चलन अच्छा नहीं था और पति की अनुपस्थिति में वह पीछे से आँखें लड़ाती थी। पहले तो उस चीनी ने वही किया जो हर पति करता है—मारा पीटा; किन्तु जब इससे भी वह नहीं मानी, तब बेचारा अपने पूरे परिवार को लेकर बम्बई आया। थोड़े दिन बाद वह चीनी औरत अपने पति को छोड़कर शरीर बेचने का अपना अलग पेशा करने लगी। उसी वर्ष उसके किसी हिन्दुस्तानी कस्टमर ने उसे दूसरे से प्रेम करता देखकर छुरा भोंक दिया—अपनी माँ की यह कथा उस चीनी की बड़ी लड़की ने मुझे बताया थी, जिसका नाम था ‘लीई’। उस ‘लीई’ ने मेरी उन दिनों सबसे अधिक सहायता की अकलंक ! वह मेरे अहमद से हुए बच्चे को खूब खिलाती थी और हँसती हुई कहा करती थी कि जब यह ‘खोखा’ थोड़ा बड़ा हो जायगा तो सबसे पहला जूता ‘लीई’ का ही पहनेगा और वह जूता भी चीनी ढंग का होगा।—आज मैं समझ पाती हूँ कि क्यों वह मेरी हमदर्द थी, कदाचित् वह मुझे भी अपनी माँ की तरह ही आवारा और बेध्या समझती होगी। और, क्या अकलंक ! उसने मुझे मिथ्या समझा ? मैं जानती हूँ तुम इस तेज़ भाले की तरह चुभनेवाले प्रश्न का उत्तर नहीं दोगे, किन्तु मेरे पास उत्तर एक नहीं है, अनेक हैं, और वे हैं मेरे शरीर पर अहमद द्वारा दिये गये प्यार के तोहफ़े, प्रेम के शब्द जो कि उसने अपने तरीके से मुझे भेंट किये—यह बात ही दूसरी है कि उसके तरीके थे जूते, दगाबाज़ी और नफ़रत का थूक मेरे मुँह पर; देखते नहीं मेरे मुँह पर पचासों उँगलियों की मार के चिन्ह—गरम सलाखों की तरह !”

ओफ़, मेरा दिमाग जलते तब की तरह होगया है। मैं अब और नहीं सुनूँगा। अपना यह दृढ़ निश्चय रंजना को चाहे अच्छा लगे या बुरा—सुनाना ही होगा, क्योंकि जब वह मेरा विचार नहीं करती तो फिर मैं ही क्यों इसका ख्याल करूँ ?

“रंजना क्या तुम इस प्रसंग को समाप्त नहीं कर सकती ?”

और मैंने सोचा कि देखें वह अब भी मेरी ओर देखती है कि नहीं। किन्तु उसने मेरी ओर न देखकर आकाश में शेष दो-एक उड़ती पतंगों को देखना कदाचित् अधिक अच्छा समझा है। और शायद एकाध कटी पतंग हिचकोले खाती हुए मकबरे के गुम्बदों के ऊपर तैर रही थी, घायल पाखी के मानी।

“अकलंक ! क्या सुनना भोगने से ज्यादा कठिन काम है ? तुम सुनकर फेंक देना। मैं यह नहीं कहती कि इस विषय की गाँठ को बाँधकर तुम अपना भी जीवन विषमय

कर लो। अकलंक ! मैंने भी जीवन प्रार्थना के श्लोक की भाँति प्रारम्भ किया था किन्तु आज मैं देखती हूँ कि उसी उषाकाल के श्लोक को जिसे मैंने 'जीवन' नाम दिया लोग सुनना भी पसंद नहीं करते—उषा के श्लोकों की गायिका साँझ होते-होते बेश्या बन गयी, है न ? —अच्छा, यह बताओ कि तुम्हें भी ऐसा सब कुछ जीना पड़ता तो तुम क्या, कितना और कैसे की सुधार गाँठें जोड़-जोड़कर जीते ? बूझो न ?” —

क्या वह मेरा उपहास नहीं कर रही है ? कागज पर शकलें खींचकर ही क्या हम जीते हैं कि इस वर्ष हम इतनी शकलें जीयेंगे ? अगर यही हो पाता तो क्या हम घटनाओं और परिस्थितियों को तोड़-मरोड़ नहीं लेते ? पर क्या कहीं ऐसा हो पाता है ? जब नहीं, तो फिर व्यंग्य क्यों ? मैं यह तो नहीं कहता, उस अहमद की भाँति, कि तुम बेश्या हो, न तो मैं ऐसा सोचता ही हूँ और न कह ही पाऊँगा क्योंकि बेश्या कोई व्यक्ति नहीं होता, वह तो पूरा वर्ग होता है, वह समाज होता है। जैसे कोई नहीं कहता कि मैंने खून किया है, वैसे समाज थोड़े ही कहता है कि वह बेश्याओं का समाज है या नारकीय कीड़ों का वर्ग है। रंजना को क्या कभी ऐसा समझना चाहिए था ? जो कुछ आज वह है उसके वर्ग की उपज है, उसकी अपनी नहीं।

“कदाचित्तुम सोच रहे हो कि रंजना अपने तर्क से अपने को छिपा रही है। किन्तु अकलंक ! मैं प्रतिदान में नहीं चाहती। जब चाहने से बहुत कुछ मिलता और जिसके कारण इस नरक की सीमा पर भी आ खड़ी न होती, तब नहीं माँगा तो आज तुमसे कुछ माँगकर तुम्हें अपने इस नरक के धरातल पर बुलाकर क्या उजले वस्त्रित समाज की दृष्टि में गिराऊँगी ?”

“रंजना ! समाज की दृष्टि का मूल्य तुम भी मानती हो ?”

“देखती हूँ, तुम प्रसन्न हो रहे हो कि रंजना समाज की दृष्टि की चर्चा कर रही है। हाँ, कुछ मानती भी हूँ, और इस मानने से बहुत कुछ अधिक तो है मेरा न मानना, मेरा बहुत बड़ा अस्वीकार—स्वीकारो तुम, या अन्य। मेरे पास तो है नरक की मशालों से आलोकित या जलता हुआ मेरा हाहाकारमय एक नकारात्मक अस्वीकार !! समाज की संज्ञा मानती हूँ सिर्फ दूसरों के हित-अहित तक। मेरे द्वारा दूसरा गिरा हुआ न माना जाये इसी अर्थ में समाज की संज्ञा मेरे लिए है; किन्तु मेरे व्यक्ति के लिए तुम्हारे इस समाज की संज्ञा गौण, मिथ्या, प्रवंचना एवं चींटी सा न कुछ ! क्योंकि पूरे समाज की तो नहीं, किन्तु जिस वर्ग से मैं आती हूँ, जो कि उच्च वर्ग है—उसकी आत्मा को अगर रूप देने को कहा जाये तो जानते हो मैं क्या रूप दूँगी ?—स्वयं का, बेश्या का, नारी की देह का !! मेरे वर्ग का रूप और उसकी आत्मा, रंजना के या उसके वासना के सड़े अंगों के सिवाय और क्या है अकलंक ! बताओ ! बोलो !! इस वर्ग के लिए नारी माँ नहीं है, बहन नहीं है, मात्र शरीर है और जिसे ये रौंधते हैं—नारी का शरीर, फिर वह कोई भी क्यों न हो, उनके पुरुष की उत्तेजना मात्र है !!”

ट्रेस से नीचे उतरते हुए रंजना ने कहा कि “अकलंक ! आज कदाचित् जाना न हो पाये । पता नहीं सब तरह के व्यवधान मेरे ही लिए क्यों पैदा हैं, और मैं न रहूँगी तो कदाचित् ये व्यवधान भी न रहेंगे ।”

कहते हुए रंजना ने इस बार पहली बार बहुत ही मीठा हँसा । मेरा मन करने लगा कि कहूँ—

“नहीं रंजना ! व्यवधान कैसा ! ! मैं चला जाता तो व्यवधान मानता—फिर इस रुकने को व्यवधान मानूँगा तो रहूँगा कहाँ ?”

मैं जानता हूँ कि मुझे अपने अनिर्णयी मन को लेकर कोई व्यवस्थित कार्यक्रम बनाने का अधिकार नहीं है । क्योंकि ऐसा कोई पहली बार हो रहा है सो नहीं । हमेशा काम न करना पड़े के लिए निमित्त खोजनेवाला व्यक्ति, कभी भी जिम्मेदार नहीं माना जाता, यह मेरी पत्नी एक बार नहीं बीसों बार कह चुकी है, और मुझे अपने पर गुस्सा भी आता है । फिर सोचता हूँ किसी दिन करारी ठोकर खाने पर हो सकता है सम्भल जाऊँ । किन्तु पगडंडी पर चलनेवाला कभी दुर्घटना का शिकार होता मैंने नहीं मुना । कहीं कोई बाँक-पन नहीं । प्रतिदिन समय से आफ्रिस जाना हूँ, विधिपूर्वक विवाह किया है और नियमपूर्वक पिता भी बना हूँ । मेरी पत्नी ने नियमों की सूची भी बना रक्खी है, किन्तु मेरा मिद्धान्त है—प्रत्येक को अपना-अपना काम करने दो, न बाधा पहुँचाओ और न बाधा पहुँचने दो । मेरी पत्नी के सामने बैठकर मैंने इस टाइमटेबल पर—जो कि इस समय मेरे विस्तरे के सिरहानेवाली तिपाई पर खूबसूरत पेपरवेट के नीचे रखा है—हर ट्रेन के सामने तारीख और संभ्रमिता अनुसार घंटे भी लिख लिये थे । आज तक मैं नियमित चला हूँ किन्तु आज लौट जाना था और ठहर गया हूँ । मेरे इस ठहरने में यदि कोई इस समय मुझसे पूछ बैठे कि क्या तुम रंजना के प्रति आकर्षण नहीं रखते ? इसी आकर्षण ने तुम्हें नहीं रोका ?—मैं जानता हूँ कि यह सत्य है, किन्तु मैं इतने कटु सत्य का सामना न कर सकूँगा । क्योंकि जानता हूँ यदि रंजना को मेरे इस आकर्षण का आभास भी हो जाये तो—मैं अपने इस वाक्य को पूरा नहीं करूँगा । किन्तु यह निश्चित था कि यदि रंजना ने रुकने को न कहा होता तो मैं अवश्य ही इस समय रेल के डिब्बे में बैठा हुआ या तो सामने की सीट पर बैठे हुए लोगों के मुखों को घूरता रहता, या फिर रेल के डिब्बे में “सावधान ! सावधान ! !” करके जो लोगों की नींद हराम करने के लिए लिखा रहता है—पढ़ता रहता । और उस पहली दुर्घटना के बारे में सोचा करता कि कभी किसी ने गिड़की से मिर बाहर निकाला होगा और कोई घटना घटी होगी और तब रेलवालों को जाने कितने डिब्बे सफ़ेदी के खर्च करके साफ़ चिकनी लकड़ी की दीवारों पर व्यर्थ की बच्चों की सी बातें लिखवानी पड़ी होगी और वह भी अशुद्ध हिंदी में । कदाचित् मव भापाएँ शुद्ध लिखी जा सकती हैं, अकेली हिंदी को छोड़कर । क्योंकि रेलवालों का ख्याल होगा कि हिंदी की लिपि और उच्चारण में भेद जो नहीं है । मगर यह मैं क्या व्यर्थ का ऊलजलूल सोच रहा हूँ ।

यह पीछे के बरामदे से सटा हुआ कमरा है जहाँ इस समय मैं लेटा हुआ हूँ। सिरहाने सागौन की बनी एक नक्काशी की हुई तिपाई है जिस पर मेरा सुबह का रंग खाया अखबार और टाइमटेबल दोनों पेपरवेट के नीचे दबे हुए रखे हैं। ठीक पैताने की दीवार से सट कर एक उम्दा किस्म की आलमारी, जो ज़रूर ही वर्मा सागौन की होगी, जिसके एक पल्ले में लम्बा किन्तु अंडाकार शीशा लगा हुआ है, जो बतलाता है कि यह रंजना के कपड़ों की आलमारी है। रंजना साड़ी या सलवार पहनकर इसी शीशे के सामने खड़ी होती होगी। इस समय शीशे में ममहरी का एक डंडा और पीठ पीछे की दीवार का प्रतिबिम्ब उसमें गिर रहा है। वह दाहिने हाथ के कोने में रखा है बड़ा सा ऊँचा लाइट-स्टैंड—जिसका वादामी रंग का शेड, बल्ब की रोगनी के कारण वादामी ग्राउंडग्लाम की तरह लग रहा है। ठीक स्टैंड के पास ही कपड़े में लिपटी हुई कोई लंबी सी चीज एक खूँटी पर झूल रही है जो किसी भी अपरिचित को बताने की है कि वह या तो मितार है या फिर वीणा है, और जो कई दिनों से नहीं बजायी गयी है, इसके प्रमाण में कपड़े पर धूल की हल्की तह बल्ब की रोगनी में भी दिखायी दे रही है। कपड़ों की आलमारी के ठीक ऊपर एक सुंदर बच्ची का चित्र टंगा हुआ है जिसकी ठोड़ी और आँखें साफ बताती हैं कि यह रंजना की किसी बच्ची का चित्र है। हो सकता है यह रंजना की बही रिनी हो। रंजना के मन को रिनी ने आज तक इतना प्रभावित कर रखा है कि रंजना को उसे चित्रित करवाना पड़ा है। किन्तु यह कोई भी किसी की भी बच्ची हो, मुझे इसमें मोह हो रहा है—और मैं कल्पना कर रहा हूँ कि यह बच्ची इस समय मुलायम बिस्तरे पर अपनी छोटी नरम-नरम उंगलियों से मेरे इस गद्दे में छेद बना रही है और मैं बहुत प्रसन्न हूँ, और प्रसन्नता में मेरी आँखें छोटी हो जाया करती हैं।

छत के बीचोंबीच एक बड़ी सी कागज की लालटेन, जो कि बनावट से चीनी मालूम होती है, टंगी हुई है और आकार में अष्ट पहलू है। इस लालटेन की आठों छोटी दीवारों पर कुछ चीनी शकलें और कुछ गमलीला के चित्र बने हुए हैं। लालटेन में इस समय मोमवत्तियों की जगहें खाली हैं। हो सकता है इस लालटेन के पीछे भी रंजना का कोई बहुत बड़ा भेद, रहस्य बनकर मौजूद हो और जो कभी जलता रहा हो, किन्तु इस समय इसमें प्रकाश ही नहीं बल्कि यह उपेक्षित कर दिया गया है, इसका भी भाव स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ रहा है।

चारों कोनों में चार, सारंग की तरह पतले लम्बे ऊँचे स्टैंड जिन पर मफ़ेद चीनी मिट्टी के बने हुए गाँधी, बुद्ध, ईसा और एक किसी चीनी संत के बसट रखे हुए हैं। मुखों की बनावट, रेखाओं के उतार-चढ़ाव यह स्पष्ट बताते हैं कि इनका मूर्तिकार निश्चित रूप से चीनी रहा है, तभी तो लगता है जैसे ये चारों वहीं चीन देश में पैदा हुए हों।

दरवाज़ों और खिड़कियों पर एकदम लाल सुर्ख रेशमी परदे सीधी लंबाई लिये हुए टंगे हैं। जिनमें नीचे की ओर बहुत ही हल्के छोटे घुंघरूँ टंके हुए हैं; जो बताते

हैं कि जब कभी ये हवा के कारण झूलते होंगे तब इन घुँघरुओं का मीठा स्वर वातावरण को संगीतमय बना देता होगा। दायें हाथ के सिरहाने की तरफ़ किताबों की दो आलमारियाँ, एक छोटा रैक जिस पर मीने के कप का एक फूलपात्र रक्खा हुआ है। मैं नहीं जानता कि अंग्रेजी साहित्य से एम. ए. करनेवाली और जीवन को इतने नीचे उतरकर देखनेवाली रंजना के क्या प्रिय विषय हैं तथा किन लेखकों की ही कृतियाँ इसे पसंद हैं, और पढ़कर क्या करती है? किन्तु यह जानता हूँ कि शीशों के पल्लों के भीतर से चूड़ी उतार रखी हुई पुस्तकें दिखायी दे रही हैं। रंजना ने उन्हें पढ़ा है कि नहीं यह मैं नहीं कह सकता।

इस कमरे से सटा हुआ ही उस गुसलखाने का दूसरा दरवाजा इस कमरे में आता है, जहाँ सुबह मैंने गुसल लिया था और अब इस समय शायद रंजना गुसल कर रही है, क्योंकि टेप से पानी गिरने की आवाज़ बराबर आ रही है। साथ ही बहुत ही मंद मीठी आवाज़ में कभी-कभी किसी बँगला गान की पक्ति। यह रंजना नाम की स्त्री मीठा गाती है, कदाचित् पहले बहुत ही मीठा गाती रही हो। मेरे मन में रंजना को लेकर बहुत विचार आ रहे हैं। साबुन के झाग से भरा हुआ चीनी का टप, उसके साबुन भरे हुए काले लहराने हुए बाल, वे पुष्ट किन्तु गोरी उजली मुलायम बाँहें और बड़े गुलाब की तरह उसका आरक्त वदन—मुझे इस समय आकर्षित कर रहे हैं यह मैं जानता हूँ। मैं मानता हूँ कि मुझे ऐसा नहीं सोचना चाहिए परन्तु विचार तो अपने अनावृत रूप में ही हमारे दिमाग में आते हैं—बोलते समय ही हम विचारों की अनावृतता काट फेंकते हैं और उन्हें वास्तव्य कर देते हैं। क्योंकि बोलते हम दूसरों के लिए हैं पर सोचते हम अपने लिए हैं। सभ्य हम दूसरों के लिए हुआ करते हैं, अपने लिए हम दिगम्बर तथा नियमहीन होकर सोचते हैं। बाह्य सौजन्यता अंतर में अनावृत भी हो सकती है।

दरवाजा खोलकर रंजना अपना स्लीपिंग सूट पहने निकली है, जो ढीले गाउन की तरह का है और जिसका नीला रंग है। अपने बाल कंधे पर फैलाये तीलिये से हीले-हीले पोंछते हुए आकर एकदम सामने खड़ी हो गयी है। दायें हाथ पर जो ड्रेसिंग टेबल है उसके सामने बैठकर अब वह कंधी से अपने इन केशों को, जो अंधकार की तरह तो अब काले नहीं रहे, उनमें चार चमकते सफ़ेद बालों की चाँदी है, जमा रही है। उसके बाद रंजना का रूप फिर धुला-गुँछा, ठीक उसी तरह से लगेगा जैसे रातभर ओस-धुला आरक्त कमल !!

मैं जानता हूँ कि जब कोई स्त्री इस तरह शृंगार कर रही हो तो पुरुष का धर्म है कि वह वहाँ से उठ जाये। मुझे प्रसन्नता है कि व्यवहार और शिष्टता की जो बातें मुझे अवसरों पर सदा विस्मरण हो जाती रही हैं, आज सहमा याद हो आयी हैं, और मैं इस शिष्टता को अभिव्यक्त भी करना चाह रहा हूँ—

“क्षमा करना रंजना ! मैं उस कमरे में चला जाता हूँ। तुम निश्चिन्त होकर शृंगार कर सकती हो।”

मैंने अपने दोनों पैर पलंग के नीचे रखते हुए अपनी चप्पलों में डाल दिये हैं और

कुर्तों की जेबों में हाथ डालकर खड़ा हुआ रंजना के एक छोटे से उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ और तब दूसरे क्षण में इस दरवाजे के लाल पर्दों के बाहर होऊँगा, जहाँ वरामदा है, झूलती हुई बेलें हैं। बेलों में कोमल छोटे-छोटे फूल लगे हुए हैं, और जहाँ खड़े होकर लॉन के छोर पर लगे अशोक, यूकेलिप्टस देखे जा सकते हैं। उन पेड़ों के मुकुट जैसा नीला आममान, जिसमें बड़े-छोटे तारे वैसे ही चमक रहे होंगे जैसे कलदार रुपये, अठन्नी, चवन्नी हों। रंजना ने वालों और मुँह को तौलिये से अंतिम बार पोछते हुए हल्की मुस्कराहट से भरा एक प्रश्न किया—

“सचमुच अकलंक ! इस शिष्टता का अनुभव करने हो ?”

और वह ठहाके के साथ हँस पड़ी है।—तो क्या बाहर जाने की बात मिथ्या थी ? क्या मैंने ऐसा नहीं चाहा था ?

“किस उलझन में पड़े हो अकलंक ! जाने दो शिष्टता को। शिष्टता का या तो पूरी तरह निभाना ही ज्यादा अच्छा होता है या फिर बिल्कुल ही नहीं। यह मैं जानती हूँ कि शिष्टता तुम्हारे वस की कभी नहीं थी। यह कोई आवश्यक है कि सिर्फ़ इसी समय, आज ही के लिए और वह भी केवल मेरे ही साथ अपनी शिष्टता दिखाओगे ? बैठो, कहीं भी तुम्हें भागने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ेगी। शृंगार करके मुझे अब किसी में छुपाना तो है नहीं कुछ। और जब मन नहीं छुपा पा रही हूँ तब तो शरीर की इस जूठन को छुपा भी लूँ तो क्या होगा ? और फिर मुझे कोई कपड़े तो बदलना है नहीं—जैसे बाल बंधे हुए, वैसे फैले हुए। सामने पाउडर नहीं लगाऊँगी, परन्तु पाउडर लगा चेहरा तो दिखाऊँगी ही—तब फिर क्या फर्क पड़ता है अकलंक ? शायद तुम्हें भी कभी जरूरत पड़े। देख सुन लो कि क्यूटेक्स कैसे लगाया जाता है और लिपस्टिक ओठों की चीज़ होती है, नाखूनों की नहीं ?”

और वह हँसते-हँसते हँसी की फूल बनती जा रही है।

“राजनीतिक आदमी जो हो, जेलों में ज़िन्दगी काट दी है। गवर्नमेंट और स्टेट, तानाशाही और साम्यवाद का अंतर जानते होंगे, किन्तु ब्रेसरीज़ और ब्लाउज़ का अंतर न जानना तुम्हारे लिए कोई बड़ी बात हो, सो नहीं है। हम तो औरत ठहरीं भाई ! एक शरीर को सुबह से धोते-धोते शाम हो जाती है, तब जाकर कहीं हम शाम को घर से बाहर निकलने के योग्य हो पाती हैं। कभी तुम्हें हमारी जगह होना पड़ता तो मालूम होता कि कितनी मुश्किलों से हम लोग तैयार हो पाती हैं। रंगों का मेल, साड़ियों का चुनाव, ब्लाउज़ की स्मार्ट कटिंग, ब्रेसरीज़ फिट है कि नहीं, नाखूनों की लम्बाई और उन पर क्यूटेक्स, ब्रशिंग, पाउडर—रूज़—और अकलंक ! जाने कितनी आपत्तें !! इस सब पर अगर कोई पुरुष उपेक्षा करके हमें न देखे, तो जानते हो उससे बड़ा अपमान हमारा और कुछ हो ही नहीं सकता। हाँ अकलंक ! कभी प्राइमरी स्कूल के ब्लैकबोर्ड के इस्टर याद आते हैं ? बिल्कुल वही हाल हम लोगों का भी समझो—हम उस समय औरत थोड़े ही होती

हैं—खुशबूदार पाउडर का डस्टर समझ लो !! ढेरों पाउडर की तहें, जिनके नीचे हड्डियों पर मढ़ा हुआ गाल का पीला-पीला चमड़ा—जिसे कभी तुम वास्तविक रूप में देख लो तो नफ़रत हो जाय अकलंक ! —फ़िनिश फ़ॉर्म होता है रोज़ शाम को हमारा । हमें छुआ नहीं जाता, देखा भर जाता है ।”

और वह हँसती जा रही है, उसका शृंगार भी समाप्त होगया है । ड्रेसिंग टेबल के शीशे में उसका एकदम गोल भरा चेहरा कैसा खूबसूरत लग रहा होगा ! रंजना में स्पष्ट-वादिता तो सीमातीत है ।

में इसकी इन बातों से कोई अच्छी धारणा बना पाऊँगा सो नहीं है । जो व्यक्ति स्वयं को, अपने वर्ग को यथार्थ की इस सीमा तक ले जाकर धिक्कार सकता है उसमें शक्ति हो—किन्तु विध्वंस की । इसीलिए रंजना ने निर्माण के नाम पर क्या किया ?

रंजना इस समय मेरे मिरहाने आकर ममहरी का डंडा पकड़कर खड़ी होगयी है । उसका नीला रेशमी स्लीपिंग गाउन जो कि कितनी ही लहरों के साथ कमर के यहाँ से ढीला होकर धरती तक झूल रहा है । कमर में उसी कपड़े का बेल्ट जिसमें पीठ पर एक बड़ी सी ‘बो’ बनी हुई है । सामने हल्के तौर पर ढीली गाँठ बँधी हुई है । कमर के ऊपर का भाग गाउन से एकदम सटा हुआ साफ दिखलायी दे रहा है । कितने साँचे में ढला हुआ उसका यह पूरा शरीर एकदम ऐसा लग रहा है जैसे संगमरमर में से किसी ने एक-एक इंच तराशते समय बहुत सोचकर, नापकर, साँस रोककर उत्कीर्ण किया हो । उसके दोनों स्तन गाउन के नीले रंग में बँधकर दो मुँदे नीलकमल की भाँति लग रहे हैं । दोनों बाँहों का चिकनापन अपनी पूरी गोलाई के साथ कितनी आमानी से शरीर से अलग होता हुआ लग रहा है—जैसे दो पिघले मोती के गोल प्रपात, शांत भाव से पहाड़ से अलग हो रहे हों । रंजना के गले में इस समय मोने का बहुत बारीक लॉकेट चमचमा रहा है—और इन सबके ऊपर उसका मुँह ऐसा लग रहा है जैसे मोरपंख की छाया में शरद्काल का प्रथम उज्ज्वल नील चंद्रमा !! कान में दो लाल टॉप्स केशों की पृष्ठभूमि में दो लाल मंगल तारों की भाँति लग रहे हैं ।

आकाशे मिहासने उज्ज्वल नील चंद्रमा को दो अरुण मंगल नक्षत्र चाँदनी के चँवर डुला रहे हैं ।

“क्या देख रहे हो—रंजना को ? क्या कभी पहले नहीं देखा ?”

और उसका गोरा चिकना मुलायम हाथ मेरे कंधे पर आकर रुक गया, जैसे किसी हरे द्वीप के कंधों को जलमृणाल की चिकनी बाँहें छू रही हों ।

“कुछ नहीं रंजना, बैठो ।”—

और मैं जानता हूँ कि मैं रंजना के इस प्रश्न से एकदम सटपटा गया हूँ, मुझे इतना तक याद नहीं रहा है कि मैं क्या बोल गया हूँ । सुबह का कहा हुआ वाक्य मैं दोहरा भी सकता हूँ, किन्तु इस क्षण की कही बात मुझे याद नहीं । रंजना को इस रूप में देखना मेरे लिए वैसा ही

महत्वपूर्ण है जैसा कि चंद्रमा तक पहुँचना। मैं जानता हूँ यही मन की बात अगर मुझे कहनी पड़े तो मैं कदापि नहीं कह पाऊँगा किन्तु न कहने से भी सत्य सत्य रहता है। मैं रंजना को प्यार करता हूँ, किन्तु क्या यह कह सकता हूँ ?

“रंजना जी !”—

और यह कहकर मैं रंजना के मुँह की ओर देख रहा हूँ। कंधे पर रखा हुआ उसका वह हाथ, वे कनेर की पत्तियों की तरह लम्बी उँगलियाँ अब मेरे वालों में धूमने लगीं। मेरी पूरी देह में हज़ारों विजलियाँ कौंधती सी लग रही है—और मैं पागल हो रहा हूँ। रंजना कदाचित् रंजना की ही भाँति सुन्दर है और मेरा प्यार निश्चित रूप से इसे नहीं पा सकता है। मुझे अपने प्यार को रंजना के इस हाथ को चूमकर अभिव्यक्त कर देना चाहिए। जब वह मुझे अपना अकलंक मानती है, तो क्या वह अपने अकलंक द्वारा हाथ चूम लेने पर अप्रमत्त होगी ? और मैंने अपने मिर पर चलता हुआ हाथ ओठों पर लाकर बड़ी ज़ोरों से चूम लिया। मेघ के ओठों ने चन्द्रमा का चुम्बन किया—शारदीय नीला चुम्बन !!

उमने एक क्षण बाद ही मेरे ओठों से अपना हाथ छीनते हुए हटा लिया। स्वस्थ होने हुए रंजना बोली—

“अकलंक ! मैंने अपना हाथ इसलिए नहीं हटाया है कि मुझे कुछ बुरा लगा हो। ना अकलंक ! किन्तु मैं अब इसके लिए पात्र नहीं रही, इसकी पात्रा तो मर चुकी. . . .”

उमने बहुत तेज़ी से अपने दोनों घुटने गाउन के अंदर मोड़कर मेरे सामने मुँह करके पलंग के नीचे ही बैठते हुए कहा—

“अकलंक ! पिछले में से कुछ भले ही लौटा दूँ किन्तु अब कुछ भी नव दे सकना मेरे लिए संभव नहीं।”

और उमकी दोनों हथेलियों में मेरा मुख ठीक वैसे ही लग रहा होगा जैसे कमल की अंजलि में जल की कुछ छोटी-छोटी रंग लहरे !! और मैं उमकी आँखों में वैसे ही झाँक रहा हूँ जैसे किसी नदी के प्रसन्न पानी में उसकी तह में चमकनेवाली सीपों और रंगीन पत्थरों के देखने के लिए झाँका जा रहा हो।

वह अब तेज़ी से उठ खड़ी हुई है और झटके के साथ परदा ऊँचा करके वह केवल इतना भर कह सकी है—

“स्वस्थ होने की चेष्टा करो अकलंक ! मैं आती हूँ।”

उसका आदेश परदे के बाहर से भीतर आया है और परदा हिल रहा है, जैसे परदा हिलते हुए कह रहा हो. . . ‘सुना तुमने ?’

मुझे जिस सीमा तक आत्मग्लमनि होनी चाहिए उस सीमा तक नहीं होरही है। इसका कारण, बिल्कुल नहीं जानता। रंजना ने कदाचित् न तो बुरा ही माना है और न इसका स्वागत ही किया है। वह फिर बहुत तेज़ आयी है और वहीं परदे के पास खड़ी

होकर परदे को राँड में खिसकाते हुए बोल रही है—

“उठो अकलंक ! मैंने जल्दी खाने के लिए कह दिया था, क्योंकि तुम तो जानते ही हो कि मैंने प्रथम तो कहना समय के अंदर नहीं किया और दूसरे तुम्हें आज शाम कानपुर जाने से रोका, पता नहीं कल जाने क्या हो— कह पाऊँ या न कह पाऊँ, यह बोझ तो है ही । मैं तो इसे ऋण मानती हूँ, पहले शरीर से चुकाना था, चुका दिया—अब मन का ऋण रह गया था, चुकाना है ही—फिर मोह कैसा ? ऋण कन्या है, जो दूसरे का स्वत्व है ।”

और हम लोग अभी अभी खाना खा कर लौटे हैं, डिनर के पूरे समय तक यह रंजना, यहाँ लखनऊ में क्या करती है, कौन-कौन आते हैं, सब बताती रही है। अधिकतर वह पढ़ती रहती है। उसके पति जॉस्टिन के पैसों के कारण वह आर्थिक दृष्टि में निश्चिन्त है। शिष्टभेंटों तक में वह कहीं नहीं जाती। उसने अपने आप को इस सीमा तक काट रक्खा है कि गवर्नरों की पार्टियों में मुश्किल से एकाध बार ही गयी हो। किन्तु जब भी वह कही गयी है लोगों ने उसे ठीक वैसे ही आश्चर्य से देखा है जैसे किसी ने मोंदय पहले नहीं देखा था, हाँ नारी अवश्य देखी थी। कुछ दो-चार लोगों ने रंजना से परिचय को घनिष्ठता में परिणत भी करना चाहा, किन्तु वह इस सबका मतलब न जानती हो मो नही। इसीलिए रंजना ने हमेशा बीमारी या तटस्थता को ही अपने और समाज के बीच मध्यस्थ रक्खा है। तब जाकर रंजना को आज थोड़ा सा अवकाश मिल पाया है कि सोच सके कि रंजना एक व्यक्ति भी है और अब जिसके निकट इन सामाजिक शिष्टताओं एवं वाक्चतुराइयों का कोई अर्थ नहीं रह गया। मेरी मिगरेट जलाते हुए वह कह रही है—

“तुम मेरी चिन्ता न करो अकलंक ! मैं इसी भाँति तुम्हारे मिरहाने कुर्मी पर बैठे हुए सुनाती जाऊँगी और तुम सुनोगे।”

मैं इसको अभद्रता मानता हूँ कि कोई बैठा हुआ आपसे बातें करे और आप पैर फैलाये सुनते रहे; विशेषकर सुनानेवाला कोई महिला वर्ग का हो। किन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि रंजना की बात काट पाना अब मेरे लिए सम्भव नहीं है।

“सुनो अकलंक ! मैं जानती हूँ कि मैं यह सब कोई असाधारण या विशेष समझकर तुम्हें नहीं सुना रही हूँ, क्योंकि यदि तुम किसी भी नारी की ऊपरी परागी सतहों को खरोँचकर देख पाओ तो हमारे वर्ग की प्रत्येक नारी में मेरे जीवन की अधिकतर घटनाओं से तुम साम्यता पा जाओगे। किन्तु कई बार हम छोटी-छोटी बातें सुनना पसंद करते हैं। वह मेरा पति अहमद अपने बच्चे को लेकर कहाँ चला गया, मुझे आज तक पता नहीं चला। मेरे लिए इस तरह किसी का सहसा आ जाना और फिर चुपचाप चला जाना अब बहुत छोटी घटना हो चली थी। कोई क्यों आ जाता है का कारण भी मुझे स्पष्ट मालूम था, चाहे वह अपने इस प्रकार के आगमन के लिए कितने ही बड़े आदर्श की दुहाई क्यों न देता हो— और फिर एक दिन सहसा वह क्यों चला जाता है का कारण भी मेरे निकट पानी से धुली चिकनी पत्ती की तरह स्पष्ट था—तभी तो मन बारबार खरोँच उठता था पर धाब नहीं बनता था।

“बम्बई मेरे लिए बिलकुल अजनबी रही हो ऐसी बात नहीं थी। क्योंकि क्या लाहौर, क्या बम्बई और क्या लखनऊ, जीवन के नाम बदले मिलेंगे, रूप क बाह्यावरण का अंतर

हो सकता है, किन्तु आत्मा वही। मैं जिस मकान में थी वह मेरे लिए बहुत था और अब मैंने हाथ का काम सीखकर रोटी कमाने की सोची, क्योंकि पढ़ाने का काम मिलता नहीं। सिफारिश और सर्टिफिकेट कहाँ से लाती ! लीई मुझे जूता बनाने का काम इसलिए नहीं सीखने देना चाहती थी क्योंकि एक तो सबके पैरों में झुकते फिरो और फिर दूसरे उसमें जूतों के लिए चमड़ा बनाना बहुत ही गंदा और दुर्गन्ध का काम था।

“लीई ने मुझे कागज में फूल कैसे बनाये जाते हैं, यह सिखाया। दिन भर पतंग के कागजों के तरह तरह के फूल और आकाशदीप बनाये जाते थे। दूसरे पहर होने पर उन सबकी गिनती करती कि मैंने कितने बनाये हैं और उसने कितने बनाये हैं। वह उन सबको लेकर कभी चौपाटी, कभी फ़ोर्ट आदि जाया करती थी। मैंने उससे साथ ले चलने के लिए बहुत कहा मगर वह जाने क्या सोचकर कभी भी मुझे बाहर ले जाने के पक्ष में न थी। उसे लोटते में रोज़ रात के नौ या दस बजे जाते थे और उस समय वह बड़ी खुश होकर बताती थी कि बाज़ार में फूल कम क्यों विकते हैं। फूल बंगाली अधिक खरीदते हैं या महाराष्ट्री। गुजराती औरते आकाशदीप खरीद लेती हैं किन्तु फूल नहीं खरीदती। अगर फूलों की डालियों के स्थान पर गुलदस्ते बनाये जायें तो अधिक विक्री बढ़ सकती है। हिन्दुस्तानी लालटेन में ज्यादा अच्छी और मज़बूत चीनी लालटेन होती है, पर भद्रलोक इन चीनी लालटेनों को खरीदकर घर ले जाकर ड्राइंगरूम में लगाना ज्यादा पसंद करते हैं, इसलिए लालटेन अधिक विक मकनी है।

“इस तरह की आलोचना के आधार पर ही लीई और मैं दूसरे दिन चीजे बनाया करती थीं। गर्मियों में हम लोग बाँस की खपच्चियों को हल्दी से रंगकर उन्हें रेशमी तागे से ढीले-ढीले बाँधकर पंखे बनाया करते थे और लीई इन पंखों को अधिक सुन्दर बनाने के लिए उनमें चीनी पेड़, पौधे, फूल, पत्तियाँ बनाती थी और मैं टावर या वंशी, हाथी का मस्तक, हरिण का मिर आदि बना दिया करती थी। इस प्रकार लीई कहती थी कि यदि साथ में और कोई भी रहे तो मुझे बेचने में भी आसानी हो और चीजे ज्यादा विकें, क्योंकि कुछ हिन्दुस्तानी लड़कें और आवारा उसे अकेली देखकर घूरते हैं और सीटियाँ बजाते हैं। जब कभी कोई आँखों में इशारे करता है तो—

‘नसीम बहन, मेरे तों कान तक लाल हो जाते हैं और मुझे वहाँ से जल्दी ही भागना पड़ता है।’

“फिर एक जगह निश्चित न होने से लीई कहती थी कि गाहक भी रास्ता नहीं देखते हैं, समझते हैं इन धूम धूमकर बेचनेवालों का क्या विश्वास ! मैंने लीई से एक दिन कहा कि अब से मैं भी तेरे संग फूल बेचने चला करूँगी। बेचेगी तू और मैं तो उठाकर चलूँगी।

“और इस तरह हम घर से ठीक तीन बजे निकलते थे। लीई ने पहले तो मेरे चलने पर आपत्ति की। मैं कारण जानती थी कि वह क्यों मना करती है। मगर जब मैंने उससे कहा कि जिस डर से—कि मुझे जो भी देखेगा वह फिर हम लोगों की बाड़ी के चक्कर

काटेगा—नहीं जाने देना चाहती, उसके लिए मैंने कह दिया था कि मैं बुर्का पहनकर चला करूँगी। तब वह भी मान गयी क्योंकि वह जानती थी कि यहाँ मुसलमानों में बुर्का ही पहना जाता है, यद्यपि वह भी चीनी मुसलमान थी और कदाचित् इसी नाते वह मुझे बहुत प्यार और स्नेह करती थी।

“मगर मैं अनुभव कर रही थी कि मुश्किल से कभी दो रुपया और कभी ढाई रुपया मिलता था और हम लोगों को फ़ोर्ट, चौपाटी, इडिया गेट, या फिर दूर-दूर तक समुद्री तट पर बैठे हुए लोगों के पास तक जाना पड़ता था और लौटने में रात बढ जाती थी। किन्तु मिवाय इसके और कोई रास्ता नज़र भी नहीं आता था। अड़ोम-पड़ोम के कई लोगों की निगाहें मुझ पर थी, किन्तु लोई से जब कोई पूछता था कि इस नमीम का पति अहमद कहाँ और क्यों चला गया है और कब लौटेगा, तब लोई अपनी बटनों की तरह छोटी गोल आँखें घुमाते हुए कहा करती थी कि वह अहमद अपने घर ईद मनाने गया है और जल्दी ही आ जायगा।

“नारी बिना तुम्हारी सहायता के घर में नहीं निकल सकती। तुमने उसे ‘देवी’ ‘देवी’ कहकर किसी भी काम के योग्य नहीं रक्खा। तुम ज़बन रहोगे तो वह अपना जीवन कमाने के लिए साहम के साथ सड़को पर नहीं आ सकती। उसे पूरी दुनिया और स्वयं के बीच एक माध्यम, आवरण, दूरी की आवश्यकता होगी है अकलंक ! और जानने हो नारी जब कभी तुम्हारी वनायी परम्परा को तोड़ तुम्हारे इस माध्यम, आवरण को नहीं मानना चाहती तब उसे जीवन चलाने के लिए शरीर, जाँघें, बॉहें—मव, शरीर का एक-एक अंग, अपने आप को पूरा का पूरा नीलाम करना पड़ता है अकलंक ! चार आने के पैसे तक की कीमत पर सम्पूर्ण नारी समझौता करती है। चार आने के पैसों में पेट नहीं भरा करता इसलिए एक रात में कई बार यह नीलामी होती है—रात भर अकलंक ! तुम्हारी देवी का शरीर—बम्बई, लाहौर, लखनऊ, कलकत्ता मव जगह चार आने में थोक माल की तरह गोरा, काला, मोटा, दुबला, सस्ता, महंगा, रोगी, कोढ़ी, तुम खरीदने जाते हो। तुम्हारे देवी-देवताओं का यह समाज, नारी के गर्मी-मुजाक में भरे चार आने के शरीर से ज्यादा क्या है ? तुम्हारी संस्कृति, कला, सभ्यता मव की मव चार आने के नीलामी वाले मुहल्लों में टाट के परदों के पीछे गंदी नालियों में त्रिल्व-पत्र और निर्माल्य की तरह हैं। जिसकी नीलामी हो रही है वह ‘देवी’ है और हँसता हुआ नीलामी के चार आने फेंकनेवाला ‘देवता’ है।

“अकलंक ! यह वेश्याओं का समाज नहीं है तो और क्या है ? तुम्हें माँ नहीं चाहिए, तुम्हें बहन नहीं चाहिए, तुम्हें पत्नी नहीं चाहिए—तुम्हें तो चाहिए वेश्याएँ, जो कहाँ नहीं हैं ?”

वह कुर्सी से उठकर पूरे कमरे में तेज़ी से चक्कर काट रही है। लैम्पस्टैंड की रोशनी में उसकी छाया तक ऊँची लग रही है, और ऐसा लग रहा है कि रंजना और दूसरे

उसकी छाया, दोनों ही इस घर पर, घर में घिरी हुई इस रात पर और इस रात में उसकी कहानी के श्रोता 'मे' पर, सब पर हावी हो रही हैं।

मैं रंजना के इस रूप की कभी प्रशंसा नहीं कर सकता हूँ। मैं बोलकर यह जता देना चाहता हूँ।

“रंजना ! तुम यह नहीं मानती कि जो कुछ तुम कहती हो वह आंशिक सत्य है ?”

और वह मेरी बात पर कितने जोरों से ठहाका मारकर हँस पड़ी है कि कदाचित् उसकी रिनी जो कि चित्र में बनी हुई है—डर गयी है, और अब की बार रंजना फिर हँस दे तो वह रिनी अवश्य ही रो पड़ेगी।

“अकलंक ! आंशिक सत्य, पूर्ण सत्य, अर्ध सत्य, सत्यासत्य, मिथ्या सत्य—यह क्या भापा तुमने सीख ली है कि बात न कहकर आदर्श बोलते हो। वह आदर्श, जिसने भेरे, तुम्हारे, सबके शरीरों को काटकर आफ़िमें में, बाज़ारों में, चंद रुपयों के मोल के बदले टाँगकर लटका दिया है। पहली तारीख को इन टुकड़ों में थोड़ी सी कम्पन होती है, बाकी के दिन वही कसाई के मे गोश्त की हालत—मृत, मौन !! कुछ भी बना लीजिए, कोमा, कबाब, दोप्याज़ा। मैं कहती हूँ अकलंक ! कमरे में बैठकर सत्य जीवनभर खोजोगे तो भी हाथ न आने का।

“किन्तु मैं भूल करती हूँ। मेरा लेनदेन ही जब समाप्त हो चुका तो फिर यह दीप और आक्रोश कोई अर्थ ही नहीं रखता। क्षमा करना अकलंक ! पुराने घावों में अभी तक ऐमा लगता है कि दर्द हो रहा है।

“मैंने तब धीरे-धीरे छोटे चित्र बनाने शुरू किये, जिन्हें हम गर्मियों में बेचे जानेवाले पंखों के साथ बेचा करते थे। जानते हो भयंकर गर्मी में भी कोई मेरे शरीर का भाग न देख ले इसलिए मैं हाथों में दस्ताने, पैरों में मांजरे और बुर्क से अपने आपको पूरी तरह ढँके रहती थी। क्योंकि लोगों का उमूल तो तुमने भी सुना ही होगा कि गोरे पैरों पर मे ही तो 'चिड़िया' की चोंच पहचानी जाती है—और इसलिए अपने आपको ढँकना पड़ता था।

“जब रात को लीई भी अपने घर चली जाती थी तो उस 'खोली' के दरवाज़े बंद कर पड़ जाया करती थी। रात को बाहर इसलिए नहीं सो पाती थी कि जाने कब और कौन. . . . और तब ज़िदगी उम गर्मी भरे कमरे में फ़िल्म की तस्वीर की तरह गुज़रती थी।

“मेरे सामने बिल्कुल अंधेरा था। आशा के नाम पर मोमबत्ती के प्रकाश का नाम भी नहीं था। कभी-कभी सोचते-सोचते रोने लगती थी, और रोते-रोते थककर नींद भी आ जाती थी। पन्द्रह, बीस मील रोज़ चलकर पैरों में दुखन, ऐंठन, सब भर जाती थी—तब जीवन की इस दुखन का कोई अंत दिखता था ?

“रोज़ मुझे चकलों से बुलावे आते थे। खूँख़ार बुड्डी कुटनियाँ—जब मैं बाँस की

खपच्चियों पर चीनियों की तरह उकड़ूँ होकर बैठती और लीई की तरह चित्र बनाती थी—तो वे बैठी हुई मुझे उकसाती रहती थीं। मेरे मन में वितृष्णा, उबकाई हमेशा भर जाया करती थी। लीई सब जानती थी मगर बेचारी गरीब मेरी क्या सहायता कर सकती थी ! और मैं धीरे-धीरे बीमार होगयी ।

बीमारी कई दिनों तक चली और मैंने उसकी परवाह नहीं की। मगर फूल, कंदील और लालटेन, पंखे और चित्र बनाने का काम चल रहा था। हाँ, जब हालत बिलकुल चलने जैसी नहीं रही तब लीई ने फिर दोनों की चीजें बेचने का काम अपने सिर ले लिया और इस तरह ज़िदगी खजेले कुत्ते की तरह घिसट रही थी।

मैं समाज के उम्र भाग में पहुँच गयी थी अकलंक ! कि जहाँ मे केवल एक ही व्यक्ति किमी औरत के शरीर को निकाल लाया करता है, और वह है यम !! और जिसकी काली छाया मेरे जीवन पर बहुत बुरी तरह घिरनी जा रही थी। मेरे सारे कपड़े फट गये थे। पड़ोस के शोहदाँ की अब सरेआम हिम्मत हो चली कि वे मुझसे भाग चलने का प्रस्ताव रखते थे। मैं दिन भर उम मीलन भरे कमरे में फटी चटाई पर बुखार में पड़ी, आँसू बहाती सोचा करती थी कि क्या इस सबका अंत कभी सम्भव है ? और अनुत्तरा हो प्यासी पड़ी रहती, पानी देनेवाला भी अब कोई नहीं था—क्योंकि लीई को कोई चीनी, जो किमी दाँत बनानेवाले के यहाँ काम करना था, अपनी बीबी बनाकर ले गया था। लीई के बाद से तो मिवाय चकलेवाली गंदी खूमट औरतों के या मनचले शोहदाँ के और कोई नहीं आता था। उन सबकी समझ में यह नहीं आता था कि इतना रूप जो मुझे मिला है और जिसके बल पर मैं बम्बई में लाखों कमा सकती हूँ, क्यों अपने को सड़ा रही हूँ ? यही तो तीन-चार बरस का और समय है कि अपने शरीर की ज्यादा से ज्यादा कीमत लगाकर शेष जीवन के लिए कुछ जमा कर सकती हूँ। तुम सच मानो अकलंक ! मैं कई बार सोचा करती कि इन चकलेवालों में मैं कहाँ अलग होती हूँ, जो मुझे इनमें जाकर बैठने नहीं देता ? और जानते हो मुझे वेश्या बनने से किस चीज़ ने रोका ? मुझे वेश्या बनने से रोकने-वाली थी मेरी रिनी, जिसका मैंने यह चित्र उन दिनों बनाया था, जो कि तुम्हारे सामने इस समय टंगा हुआ है। समाज ने और परिस्थितियों ने तो मुझे बाध्य किया कि मैं वेश्या बनूँ, किन्तु क्या कोई सन्तान अपनी माँ को वेश्या बनने दे सकती है ? और अकलंक ! यदि मेरी रिनी न होती तो क्या मैं वेश्या न होती ? कदाचित् वेश्या ही बनती ।”

और रंजना बिलकुल बच्चों की तरह फूट फूटकर रो पड़ रही है।

मैं देख रहा हूँ रंजना की रिनी का चित्र !! वह बच्ची मुझसे जैसे कह रही हो, मैंने उसकी माता को हलाया है।

मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है कि रंजना को क्या कहकर सात्वना दूँ।

“रंजना !” रंजना !!—

बहुफिर भी रो रही है। मैं जानता हूँ कि रंजना ने अपने जीवन में इतना सहा है

जितना कभी भी सहन नहीं किया जा सकता है ।

“रंजना ! रंजना !!”

और मैंने उसके वालों में बहुत ही प्यार से अपनी उँगलियाँ डाल दी हैं। आज दोपहर तक की पूर्ण अपरिचितता, इस समय मुझे ऐसा लग रहा है कि अगर मेरे निकट कोई हो सकती है तो वह है रंजना !! सिवाय रंजना के और कोई नहीं हो सकती—रंजना, मेरी सब कुछ है !!

“क्षमा करना, अकलंक ! कभी-कभी ऐसा तो हो ही जाता है । अपने मन का अब मैं कभी विश्वास नहीं कर पाती हूँ । मैंने उन वच्चे हुए रंगों से अपनी बच्ची का चित्र बैठे-बैठे पूरा किया । तुमसे अब दुराव ही क्या रहा अकलंक ! क्योंकि नारी तुमसे तन का दुराव चाहे न करे, किन्तु मन का दुराव वह सदा ही करती है । मन का दुराव वह इसलिए करती है क्योंकि पुरुष को जिस दिन भी नारी के मन का एक भी संकल्प-विकल्प ज्ञात हो जाय वह कभी भी उसे सहेज कर नहीं रख सकता । और आज मैं तुमसे तन का दुराव भले ही कर जाऊँ, किन्तु मन का दुराव नहीं कर रही हूँ । जिस दिन वह चित्र पूरा हुआ तो जानते हो मुझे कैसा लगा—जैसे मैं फिर से गर्भवती हुई और अपनी इसी रिनी को फिर से जन्म दिया हो । मेरे सारे वच्चे अलग कर दिये गये मुझसे, किन्तु इस चित्र का कोई भी क्रूर पिता नहीं था जो इसे मुझसे ले जाता । यह केवल माता की ही सन्तान थी । मैंने चित्र को आनेवाले सभी संघर्षों में अपने प्राणों से अधिक मूल्यवान समझा । आज मैं कह सकती हूँ अकलंक ! कि मैं भले ही नारी के रूप में चरित्रहीन मानी जाऊँ, किन्तु मैं इसकी माँ के रूप में वैसी ही पवित्र हूँ जैसी कि कोई माँ होती है । और यह रिनी मेरे साथ हमेशा उसी तरह रहती है जैसे कंगारू अपनी थैली में अपने वच्चे रखता है ।”

अब रंजना स्वस्थ होगयी है । उसके चेहरे पर उत्तेजना और शांति ठीक उसी तरह स्पष्ट देखे जा सकते हैं जैसे संगम के संधिस्थल पर गंगा और यमुना का अलग-अलग जल ।

“मैं एक दिन विस्तरे पर लेटी हुई तीन-चार दिन पुराना कोई अखबार देख रही थी । उस अखबार में एक चकलेवाली मेरे लिए किसी सेठ की भेजी हुई नकली सोने की चूड़ियाँ लायी थी । अखबार गुड़ीमुड़ी करके कोने में वह बुढ़िया फेंक गयी थी और मेरे हल्दी से पीले बीमार हाथों में जबरन वह चूड़ियाँ पहना गयी थी जो मैंने उसके जाने के पश्चात् अपने गंदे तकिये के सिरहाने रख ली थीं । घंटों मैं उस चकलेवाली की उकसानेवाली बातों पर सोचती रही और फिर मैंने एकाएक सिरहाने रक्खी हुई चूड़ियों को तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दिया—किन्तु अखबार पड़ा हुआ था ।

“जाने कितने बरसों बाद लगा कि मैं पढ़ी-लिखी भी हूँ, और एक क्षण को अपने विश्वविद्यालय, कालेज के वे दिन, कनवोकेशन का दीक्षान्त समारोह, लोगों की चारों ओर से मुझे देखती हुई लालायित आँखें, आँखों के आगे उन दिनों जो स्वर्णिम भविष्य था उसका

ध्यान, विलायत पढ़ने के सपने, सब वर्तमान की नंगी अवैध्य अंधेरी रातों में बिजली की तरह कौंध उठे। और मैं, जैसे बहुत दिन के भूखे व्यक्ति को कोई बामी रोटी का टुकड़ा मिल जाय और उसके मन में यह आशंका हो कि कोई यह भी न छीन ले इसलिए वह जल्दी जल्दी खाता है—वैसे ही एक साँस में अखबार पढ़ने लगी। लड़ाई के समाचार थे। मुझे यह भी नहीं मालूम था कि सन् १९३९ वाली लड़ाई अभी तक चल रही है। मुझे अपने आप पर आश्चर्य हो रहा था कि दुनिया कहाँ की कहाँ चली गयी है और मैं कितने गहरे, कितने रसातल में पहुँच गयी हूँ या पहुँचा दी गयी हूँ। एक क्षण को आँखें भर आयीं। चीखने को मन करने लगा, किन्तु मन के विवेक ने, जो उस समय बरसों वाद जाने कहाँ से उस अखबार के साथ चला आया था—साथ दिया। मुझे इस रसातल से तो त्राण पाना ही होगा !

“अखबार में मैंने देखा, स्त्रियों की एम्बूलेंस में भर्ती की जा रही है और वे नर्सिंग, मिलिट्री कैम्पों, कैदियों के कैम्पों में काम करने के लिए शौक से शरीक हो सकती हैं। मेरी आँखों में एक क्षीण प्रकाश की रेखा आयी। अकलंक ! मैंने अपनी रिनी का चित्र सीने से लगा लिया और मैं चीख पड़ी अकलंक ! कि मैं वेश्या बनने से बच गयी। चित्रवाली इस रिनी की माँ वेश्या नहीं है। मैं वेश्या नहीं हूँ ! !

“मैंने अपना सामान जल्दी-जल्दी ठीक किया। मैं जानती थी कि मैं कई सप्ताहों से बीमार हूँ, परन्तु मेरा अब इस स्थान रहना नहीं हो सकता। मैंने अपना सब एक बार फिर छोड़ा अकलंक ! मैं प्रत्येक बार छोड़कर आगे बढ़ी और प्रत्येक बार मुझे लगा कि मेरा यह मात्र भ्रम था कि मैं चल रही हूँ या मैंने इतने कदम चलकर रास्ता इतना और समाप्त किया। पथ न कभी समाप्त ही होता था और न मैं चल ही पाती थी। किन्तु यह सब तो मैं आज कह पा रही हूँ, तब तो यही सोचती थी कि मैं चल रही हूँ।”

मेरे समझता हूँ, और मुझे अपने इस समझने में कहीं कोई संदेह नहीं है कि रंजना में चुम्बक है सुन्दर शरीर का, और अपने को अभिव्यक्त करके दर्प की कुतुबमीनार बनकर खड़े रहने का भी। वह स्वयं ब्रह्मपुत्र के उद्दाम वेग की भाँति अरहराकर विद्रोह कर सकती है तो साथ ही सामनेवाले व्यक्ति के प्रवाह को वह उसी भाँति बाँध सकती है जैसे ब्रह्मपुत्र गंगा के प्रवाह को चीर भी देता है और गंगा का प्रवाह बेचारा स्थिर हो जाता है। ब्रह्मपुत्र को काट सकना गंगा के प्रवाह का बस नहीं। वैसे ही मैं भी प्रवाहहीन होकर अपने सामने की इस ब्रह्मपुत्र को केवल देख भर सकता हूँ। एक उद्दाम, पागल, वेगवान प्रवाह है जो—जो कि नियमहीन, कुलहीन, केवल भयानक सुन्दर ! ! किसी की वीर्यवान वर्चस्व बाँहें इसे बाँध सकें, ऐसा मैं नहीं समझता।

“क्या सोच रहे हो अकलंक ! पहले तो तुम्हें सुनना है; सोचना फिर कर लेना। सोचने के क्षण तो तुम्हें मिल भी सकते हैं, किन्तु तुम्हें फिर सुनने के न मिलेंगे। यदि ऐसे बीच-बीच में बारम्बार सोचते रहोगे तो मैं समझूंगी कि तुम मेरी उपेक्षा कर रहे हो।

और, उपेक्षिता होना क्या मैं सहन कर सकती हूँ ? इस तरह तो मुझे अपने आप से घृणा हो जायेगी और स्वयं से घृणा करने का क्षण, किसी प्रकार आज तक रोकती आयी हूँ अकलंक ! केवल कुछ क्षणों के लिए और चाहती हूँ कि रंजना स्वयं से घृणा न करे । क्योंकि, फिर घृणा का मन ले क्या यह सब कुछ कह सुन पाऊँगी ?”

वह मेरी और कैसी निरीह दृष्टि से देख रही है ! अपनी हथेली पर मेरा हाथ रखकर वह कितने कोमल तरीके से सहला रही है ।

“जानते हो, मैं अपनी दो-चार आवश्यक चीजें लेकर, जिनमें मेरी रिनी का यह चित्र भी था, घर से निकल पड़ी । अंतिम बार उस घर, उस मोहल्ले को छोड़कर जा रही थी और इस विचार ने मेरे दिमाग में जाने कितना सुख और कड़वाहट भर दी । मुझे ठीक तरह स्मरण है कि लीई प्रतिदिन इसी जगह सुबह होने ही मुझे किस तरह काम में मदद पहुँचाती थी । लीई अहमद को पसंद नहीं करती थी । यों लीई ने कभी कुछ कहा तो नहीं परन्तु मैं जानती थी कि अहमद उसे अच्छी निगाहों से नहीं देखता था और दो-एक बार तो छेड़ भी चुका था । लीई के वे छोटे-छोटे पैर, मुझे हमेशा लगा करता था कि लीई अब ज़रूर ही गिर जायेगी—परन्तु म्युनिसिपल नल पर खड़ी लीई अपनी पानी की बालटी लिये हमेशा हँसते हुए काम करती थी । नल के पास ही एक नीम का पेड़ था, जहाँ अहमद वाला बच्चा जब हुआ था तब मैंने किस तरह अपने तरकारी काटनेवाले चाकू से बच्चे की नाल काटी थी और कमज़ोर होते हुए भी अपनी दोनों हथेलियों में खून में तरबतर नाल समेटे उसी नीम के पास एक गहरा गड्ढा खोदकर उस नाल को बहुत गहरा गाड़ दिया था, जिसमें मेरे बच्चे को भूत न लग जाय या चीलें उसे खोदकर खान सकें जिसमें अपशकुन हो । अहमद उस समय शराब में मस्त औधा पड़ा हुआ सो रहा था । लीई ने उस रात जागकर मेरी कितनी सहायता की थी यह मैं नहीं जानती, किन्तु अकलंक ! यह मैं जानती हूँ कि इस पूरी धरती पर मुझसे प्रतिफल में जिसने कुछ नहीं चाहा बल्कि मुझे दिया ही—तो वह लीई थी । लीई ने नोसिखिये हाथों से दायी का पूरा काम किया । उसने मुझे उस रात प्रसव की यंत्रणा से त्राण दिया ।

“मेरे पैर एक क्षण को रुके अकलंक ! उस नीम के पास पहुँचने पर मुझे लगा कि जहाँ मैंने नाल गाड़ी थी वहाँ एक छोटा पौधा, बिलकुल मेरे बच्चे जैसा, उग आया है और जो बहुत भूखा प्यासा है और मैं इसकी माँ हूँ । मेरे स्तनों में दूध भर आया । मेरे बीमार स्तन अपने उस धरती में उगे लाल की भूख में गुनगुने दूध से भर आये थे । मुझे लग रहा था कि लीई और वह बच्चा दोनों मुझे आँचल से पकड़कर खींच रहे हैं ।

“और मैं फिर आकाश की नीली छाया के नीचे खड़ी हुई थी—निरुद्देश्य, विपथगा । बिलकुल श्मशान की धधकती हुई ज्वालाओं की भाँति जो कि न तो यज्ञ ज्वाला की भाँति आशीषमती है और न वह आग जो कि घर के चूल्हे में होती है—जिससे खाना बनता है, झाड़ों में घर गरमाये जाते हैं, बल्कि चिरायूँ और दुर्गन्धयुक्त, महान अकल्याणकारी ।

मन बार-बार कुछ पुकारना चाहता था, किन्तु किसे ? किसके लिए ?? सब व्यर्थ ! !”

“मुझे से पूछकर क्या करोगी रंजना !”—मैंने कितने निरीह होते हुए यह बात उससे कही है यह मैं ही जानता हूँ ।

“किन्तु तुम्हें भी तो राजनीतिक परिस्थितियों ने, जेल की दीवारों ने बहुत कुछ दिया और लिया होगा ।”—रंजना ने हल्के मुस्कराते हुए कहा ।

मेरी समझ में यह नहीं आता कि मैं किस तरह समझाऊँ इस नारी को कि मैं अकलंक नहीं हूँ । मैं कभी जेल नहीं गया हूँ । जेल जाना तो दूर, मुझे पुलिस की भूषा तक से डर, डर नहीं तो डर जैसी कोई चीज है जो मुझे लगती है, तभी तो बिना टाचें लिये साइकिल पर नहीं चलता । मैं कैसे समझाऊँ कि ट्रेफिक को देखकर मैं जब होजरी से लौटता हूँ और अगर मेरी साइकिल में बत्ती नहीं होती है तब कितने धीरे से उतर जाता हूँ; यह रंजना क्या जान सकती है ? कहां मैं और कहां इसका अकलंक ! ! जो किसी बात से नहीं डरता, जो किसी राजनीतिक षडयंत्र में पड़कर जीवनभर के लिए अंदमान तक जा चुका है ।

“अच्छा जाने दो अकलंक ! —मैं उन दिनों बहुत बीमार थी इसलिए पैदल चलना कठिन था । मैं किसी भी कीमत पर जल्द से जल्द शाम होने के पहले रेक्यूटिंग केन्द्र पहुँच जाना चाहती थी । मैंने विक्टोरिया ली । उस समय लगभग दूसरा पहर था । ठीक तो याद नहीं, जून या जुलाई का महीना होगा । मानमून उठते थे और पश्चिमी घाट की ऊँची-ऊँची शृंखलाओं से टकराकर खूब वरम जाते थे और बेचारा बम्बई का पूरा का पूरा टापू भीग जाता था । मगर उस समय आकाश विलकुल साफ़ था । दूर-दूर तक धूप लोहे किये हुए टेबलक्लाथ की तरह उजली लग रही थी । लोग अपने-अपने कामों में, दूकानों में, फ़र्मों में व्यस्त थे । गुजराती और महाराष्ट्रीय औरतें घर के सारे कपड़े धो-धोकर अपनी छोटी बालकनियों के तारों पर टाँगे हुए थीं । बच्चों के नेकर, फ़ाँक, मर्दों की कमीजें, पाजामें सब सूख रहे थे । मजदूर औरतें या तो काम पर गयी हुई थीं या जो घर पर थीं वे अपने वर्तन साफ़ कर रही थीं, या नल पर खड़ी-खड़ी वाल्टियों के भर जाने का रास्ता देख रही थीं और साथ ही बँधे हुए सिर के वालों में काटती हुई जूँओं को मारती जा रही थीं । मजदूरों के बच्चे साइकिल के पुराने टायरों को या तो दौड़ाते हुए घूम रहे थे या फिर बुढ़ी के मोठे बाल वाली मिठाई खाते हुए एक दूसरे को टाँगें मार रहे थे । सड़क पर आने-जाने वाले व्यक्ति किसी अकेली औरत को बैठे देखकर उसके पूरे शरीर को घूरना अपना अधिकार समझकर आ-जा रहे थे ।

“मैं बम्बई की उन भीड़प्रिय सड़कों पर से गुजरती हुई रेक्यूटिंग केन्द्र पहुँची । मुझे स्वयं ही नहीं मालूम था कि मैं क्यों जा रही हूँ, और अगर ले भी ली जाऊँगी तो मुझे क्या करना होगा । किन्तु जब आज तक बिना सोचे हुए ही आगे बढ़ना पड़ा था तो फिर आगे सोचकर क्यों अपने सिर भले-बुरे की जिम्मेदारी लेती ! मैं जिस समय रेक्यूटिंग अफ़सर के सामने पहुँची वह खाकी भूषा पहने थी जिससे मुझे साफ़ लग रहा था कि मैं मिलिट्री

अफसर के सामने हूँ और मिलिट्री में कुछ काम खोजने आयी हूँ ।

“सेन्टर के अहाते पर एक काले बोर्ड पर साफ़ साफ़ लिखा हुआ था ‘डब्ल्यू. ए. सी., इंडिया’ और अहाते के बँटीले तार तथा मिलिट्री गारद ने यह स्पष्ट कर दिया था कि आज तक जो मैं जीती चली आयी हूँ वह इससे भिन्न था ।

“जिस समय मैं वेंटिंग रूम में पहुँची थी वहाँ कई जवान लड़कियाँ साड़ियाँ और स्कर्ट्स में ‘कॉल’ का रास्ता देख रही थीं । रह रहकर बगल का दरवाज़ा, वहीं पहने एक औरत खोलती थी और बहुत ही रूखे स्वर में किसी का नाम लेकर पुकारती थी । मैंने भी अपना नाम लिखवा दिया था ।

“काफ़ी देर के बाद मेरा नम्बर आया । मेरी बीमारी के कारण पहले मुझे इंडियन मिलिट्री अस्पताल में स्वस्थ होने के लिए जाना पड़ेगा—तब डाक्टरी परीक्षा होगी, उसके बाद मुझे लिया जायेगा ।

“इंडियन मिलिट्री अस्पताल में मेरे दिन भर अपने विस्तरे पर पड़ी रहती थी । मैंने अनुभव किया वरसों बाद, उस दिन धुली हुई बेड शीट पर लेटते हुए कि मैं भूल ही गयी थी कि जीवन में मुझे अब फिर इतनी साफ़ बिना बदबूदार ज़िंदगी भी जीने को मिलेगी । वहाँ रहकर मैंने नर्सिंग से संबंधित कुछ किताबें पढ़ीं और मैं दो महीने में विलकुल स्वस्थ हो गयी । मुझे कितने साफ़ तरीके पर याद है वह छोटी सी घटना आज तक अकलंक ! जब मैंने महीनों बाद अस्पताल के शीशे में अपना चेहरा देखा । मैं नहीं कह सकती कि कालेज के दिनों में मैं जब रोज़ वन सँवर कर जाती थी तब के बाद अपने को सुन्दर समझने का मौका मिला हो । परन्तु उस दिन मैंने अनुभव किया कि मैं सुन्दरी ही नहीं, बहुत सुन्दरी हूँ और अपने से मोह हो आया अकलंक ! जब व्यक्ति को अपने से मोह हो जाता है तो वह किसी भी मूल्य पर मृत्यु स्वीकार नहीं करता । जीवन के एक क्षण के लिए वह बड़ी से बड़ी चीज़ दे सकता है क्योंकि जीवन में व्यक्ति की मत्ता है और मृत्यु में सर्वज्ञता, सम्पूर्णता का अंधकार ! !

“उस समय मुझे अपने चारों ओर के उजले धुले पलंगों पर लेटी हुई दूसरी बीमार औरतों पर दया आयी, तरस आया । मुझे लगा कि मैं अपनी काली ज़िंदगी जी चुकी हूँ और मेरे सामने धोबी के धुले कपड़ों की तरह सफ़ेद उजली ज़िंदगी जन्म ले रही है—मेडीकल टैस्ट के बाद मैं नर्स हूँगी और मेरी एक प्रेस्टिज भी होगी । कदाचित् मुझे पिछला कालापन भूलने का अवसर भी मिले । अस्पताल की बड़ी-बड़ी खिड़कियों से तेज़ साफ़ धूप उस वार्ड की विशाल दीवारों पर प्रतिबिम्बित हो रही थी । धूप का उजलापन मेरे तन-मन को धो रहा था । मैं एक क्षण को फिर जीवन के मोह में आबद्ध होगयी । अकलंक ! मुझे लग रहा था कि नहीं, ज़िंदगी ही जीने की चीज़ है और जो मैं आज तलक जीती आयी थी वह थी मृत्यु—कितनी सीलन भरी गंदी बम्बई के साथ ही उजली धुली बम्बई भी है और मुझे इस वार्ड के सफ़ेद धुले-पुते जालियों वाले दरवाज़े, खिड़की, पलंग, आलमारियों, सब

में लगा कि ज़िंदगी इतनी ही साफ़ होनी चाहिये और जो काला, सीलापन इसे गंदा बनाये हुए हैं—जहाँ मैं थी, और दूसरे कई व्यक्ति अभी भी वहाँ हैं, किसी को भी वहाँ न रहना चाहिये—और न वे वहाँ रहेंगे ही। मेरे हाथ की नमों में नई ज़िंदगी का गरम खून दौड़ रहा था।

“मैं बिल्कुल नये उत्साह के साथ टेस्ट के बाद अपनी ट्रेनिंग ले रही थी। मैं सुबह पी. टी. करने के लिए अपनी खाकी साड़ी की वर्दी पहनकर जब कतार में खड़ी होती थी तब मैं अनुभव करती थी कि हर व्यक्ति मुझे देख रहा है और देख रहा है मेरी ये मोतिया छाँह की मुडौल बाँहें और लहराते हुए मेरे कुन्तल !! और मैं गर्व से अपने क्रदमों को मिलाते मुट्ठियाँ कसे हुए चलती थी। मेरे मन में हमेशा यह उठता था कि अगर मुझे यहाँ इस समय कोई इस प्रकार पी. टी. करते हुए देख ले तो वह निश्चय ही मुझे हँसा सकती है और मैं जरूर ही साजेंट द्वारा पनीश की जा सकती हूँ।

“रात में जब मैं थककर अपने बिस्तर पर हॉस्टल के कमरे में लेटती थी तब एक एक घटना, एक एक व्यक्ति सामने आता था। परन्तु दूसरे ही क्षण अपनी इस नई ज़िंदगी के प्रति गर्व और मोह दोनों ही होता था। ट्रेनिंग के बाद मैंने अपनी रुचि मूह के मिलिट्री अस्पताल के लिए भेज दी।—और मैं मूह भेज दी गयी।

“जब मैं छोटी-छोटी पहाड़ियों और विंध्या की गोद में बसे हुए मालव के इस मिलिट्री सेन्टर में पहुँची तो मुझे लगा कि जैसे पहली बार सब कुछ नये रूप में प्रारम्भ कर सकूंगी। क्योंकि बम्बई में मेरी कड़वी स्मृतियाँ कई बार मुझे यन्त्रणाएं देती थी और मन हमेशा बुझ-बुझ जाता था।

“हमारा हॉस्टल एक टेकरी के ठीक बगल में था। मैं जब वहाँ पहुँची मितम्बर प्रारम्भ हो चुका था। जामुनें अपने फल देकर फिर बन्ध्या खड़ी हुई थीं और बेर के पेड़, सांगौन के दरख्त, आम के कुंज, सब शरद ऋतु के उत्सव में निमग्न थे। मेरे कमरे की पीछेवाली खिड़की से साफ़ दिखायी पड़नेवाला विंध्या, जो कि बहुत ही लम्बा चला गया था, प्रतिदिन सुबह धूप के संग उग आता था, और अधकार के संग डूब जाया करता था। नीम, पीपल, बरगद, जामुन के बड़े-छोटे पेड़, छोटी तथा कम चोड़ी तारकोल की सड़कों के दोनों तरफ़ दिन भर कुहरे और नंगी हल्की धूप में खड़े हुए तमाशबीन औरतों-बच्चों की भीड़ की तरह दिखायी देते थे।

“सुबह की ड्यूटी पर जब मैं हुआ करती थी तब चार बजे उठकर नहा धोकर अपने मोज़े, स्कर्ट और हुड लगाकर, ओवरकोट पहने, पैदल ही निकल पड़ती थी। हालाँकि एक मील से ज़्यादा दूर अस्पताल पड़ता था, किन्तु मूह की उन सर्दियों में मुझे इस तरह निकल पड़ना सुहाता था। सुनसान सड़क होती थी और भंगी लोग अंधेरे ही अपनी लम्बी-लम्बी सड़क साफ़ करनेवाली झाड़ू लिये सड़क साफ़ करते हुए मिलते थे। सड़क साफ़ करने वाली औरतें, गंदी साड़ियों के छोर लपेटे हुए और मदद अपने साफ़ों का एक भाग मुँह

पर लपेटे हुए अपनी पीठों पर हाथ उलटा धरे सड़क साफ़ किया करते थे । धूल और कड़ाके की इस सर्दी से अपने मुँह को वे इस तरह बचाते थे कि उन कपड़ों में से उनकी सिर्फ़ आँखें ही दिखलायी पड़ती थीं । ठंड के कारण उनकी नाक आगे से एकदम ठंडी हो जाने के कारण लाल सुर्ख दिखलायी देती थी । मुझे दूर से ही आता हुआ देखकर वे लोग सड़क साफ़ करना बंद कर दिया करते थे और अपने बंधे हुए मुँहों से भरी-भरी आवाजों में 'सलाम मेम साहब' कहकर एक क्षण को पीठ ऊँची करके देखने लगते थे । मुझे अपना जीवन और भी याद आ जाता था जब उनके जाड़े में बिलबिलाते वच्चे फटे कम्बल ओढ़े, जल्दी जग जाने के कारण और ठंड के कारण गंदी टोकरियों के पास नाक बहाते हुए रोते हुए मिलते थे । और एक क्षण को कँपकँपी आ जाती थी कि कभी मेरा वच्चा भी ऐसे ही रो सकता था और मैं इस काम करनेवाली मेहतारानी से भी ज्यादा गंदी जगह पहुँच गयी थी । मेहतारानी होना कोई गंदा नहीं, क्योंकि यह किसी की पत्नी है, काम करती है; पर मैं क्या करती थी ? मैं कहाँ नहीं पहुँच गयी थी और मेरे क़दमों में गुस्से की तेज़ी आ जाती थी । अपने ओवरकोट की गरम-गरम जेबों में मेरी मुट्ठियाँ कस जाया करती थीं । और अगर उस समय घोड़ों पर जाने हुए जब कभी मिलिट्री अफ़सर हवाखोरी से लौटते हुए दिखायी पड़ जाते थे तो जानते हो अकलंक ! मन में आता था कि ऑपरेशन थियेटर में रखे हुए वे सब के सब तेज़ चाकू, छुरियाँ इनके पेट में घुमेड़कर इनकी अँतड़ियाँ बाहर निकाल लूँ, और घृणा का थूक इनके लाल मेव की तरह गालों पर भर जाये—क्योंकि तुम, तुम्हारे वर्ग, तुम्हारे समाज, सबने चाहा था कि मैं वेश्या हो जाऊँ । अकलंक ! नारी को वेश्या बनाने के लिये तुम लोग ठीक इसी तरह से उमे घेरते हो जैसे तीतर या बटेरों को लोग बहरा करने के लिए चारों ओर से घेर लेते हैं और तीतर की कोई अपनी संज्ञा न रह जाय इसलिये तुम चारों ओर दिन भर चिल्ला-चिल्लाकर उसे बहरा कर देते हो । ठीक उसी तरह 'तुम वेश्या हो' 'तुम वेश्या हो' कह-कहकर नारी की अपनी संज्ञा को इसलिए समाप्त कर देना चाहते हो कि जिममें उसका शरीर लूले, लंगड़े, रोगी, किसी को भी जब चाहे चार आने में मिल सके ।

“दूर चले गये घोड़ों पर बैठे हुए अफ़सरों की सीटियाँ, जिनमें रात में देखी हुई किसी फ़िल्म का कोई सस्ता सा गाना 'दिम इज़ लव' या 'यू मेट भी ब्रियाण्ड द होराइज़न' वगैरह सुनायी पड़ती थीं । उनके वे मोटे-मोटे खूँखार कुत्ते सड़कों पर, फुटपाथों पर, बिजली के खम्भों पर गंदगी करते हुए पीछे-पीछे दौड़ते फिरते थे । पैरेड ग्राउण्ड पर खाकी वर्दियाँ पहने हुए कंडेड लोग अपने मुँहों से गरम-गरम भाप छोड़ते हुए कभी अटेन्शन कभी एट-इज़ की हालत में खड़े होते थे । ज़िन्दगी हालाँकि बँधी हुई थी अकलंक ! किन्तु नियम था और ताँगे के घोड़े की तरह नाक की सीध सामने थी । मैं तब तक ईसाई नहीं हुई थी, किन्तु हर इतवार को नियमपूर्वक दूसरी नसों के साथ चर्च जाती थी । इतवार के दिन में अन्य दिनों के बँधे हुए जीवन से काफ़ी अंतर होता था । उस दिन हमारी प्रसन्नता ठीक उसी तरह हो

जाती थी जैसे चुपचाप सोयी हुई झील को हवा का एक हल्का झोंका थोड़ी-थोड़ी देर में आकर छोटी-छोटी लहरों में हँसा जाये और कानों में फुमफुसा जाये कि—

‘जीवन सोने का नाम नहीं है झील ! वरन् छोटी-छोटी लहरें बनकर हँसने का नाम है ।’—

और हम लोग उस दिन, दिन भर अपने नर्सवाले कपड़े नहीं पहनती थीं ।

हमारे बैरेकनुमा हॉस्टल में गिनती के ही स्नानघर थे और रविवार को अगर नहाने में थोड़ी-सी भी देर हो जाती थी तो फिर बारह बजे के पहले नम्बर नहीं आ पाता था । वे नर्स जो इसाई नहीं थीं, नहाने के मामले में सबसे देर लगाती थीं । यद्यपि मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिये, मगर हम औरतों के जैसे छोटे-छोटे शरीर, हाथ-पैर वगैरह होते हैं कदाचित् दिमाग और ईर्ष्या तथा द्वेष भी इतने ही छोटे और हल्के हुआ करते हैं । हम में से प्रत्येक को यह मालूम होता था कि किमने आज कब और कहाँ पर किससे मिलने का आयोजन कर रक्खा है, और हमें आपस में ही कुड़न होती थी । कोई लाल रंग की साड़ी क्यों पहनकर जानेवाली है, कोई नहाने में इतनी देर क्यों लगा रही है, और कौन ड्यूटी करके हॉस्टल रात देर आयी थी—जैसी छोटी-छोटी बातें लेकर हम अपना समय नष्ट करती रहती थीं और अपना भूल जाती थीं कि हम भी जो कुछ करती हैं वह भी तो दूसरे के लिए आलोचना का विषय हो सकता है ।

फिर भी हम में से प्रत्येक, रविवार की प्रतीक्षा करती थी । हम लोगों में से जो जल्दी तैयार हो लेती थी, या यों कहो जरा भी देखने में मुँदर होती थी वह जरूर ही उस दिन आठ बजे के बाद कहीं न कहीं, किसी न किसी के साथ या तो चाय पर, या फिर किसी इन-डोर खेल के लिए आमंत्रित होती थी । उस समय हम लोगों के हाथों में जाने कहाँ से फुर्ती आ जाती थी । वैसी फुर्ती कदाचित् ही कभी किसी बहुत ही मेजर ऑपरेशन के समय देखी जा सकती थी ।

वहाँ एक कर्नल टॉमस था । जिन दिनों में मूह पहुँची थी, उसका ‘हरनिया’ का आपरेशन होनेवाला था । मैं उसके उस स्पेशल वार्ड में ड्यूटी पर लगी थी और तभी से हम एक-दूसरे से परिचित हुए । कर्नल टॉमस सीमाप्रांत में बहुत रहा था इसलिए हम लोग घंटों बैठकर सीमाप्रांत के बारे में बातें किया करते थे । उसको हमेशा एक बात का बहुत खेद रहा करता था कि उसे मोर्चे पर नहीं भेजा जा रहा है । यद्यपि वह इस बारे में कई बार लिख भी चुका था । अभी वह चालीस का ही था । हम लोग घंटों फुटबाल वाले ग्राउंड पर बैठे हुए बातें किया करते थे । वह अपने कुत्ते की जंजीर हाथ में बाँध लेता था जिसमें वह कहीं भाग न जाये । उसे दो बातों का हमेशा शक रहा है कि उसे एक तो उसकी पत्नी ने और दूसरे उसके कुत्ते ने कभी नहीं चाहा है । मेरा विश्वास है अकलंक ! उसने जरूर ही अपनी पत्नी को तलाक दे दिया होगा । वह हमेशा अपने गंदे पीले तेज चाकू-से दातों को खोलते हुए और नीली आँखों को अजीब तरह से

मींचते हुए कहा करता था कि अगर उसकी पत्नी को वह तलाक़ दे सका तो वह मुझे निश्चय ही शादी कर लेगा। वह मेरा नाम कभी ठीक तरह नहीं ले पाता था सदा “रैन्तना”— या कुछ ऐसे ही कहा करता था। हम दोनों शादी की बात पर खूब हँसते थे। उसी कर्नल टॉमस के यहाँ मुझे हर रविवार को निमंत्रण पर जाना होता था। मैं कारण जानती थी कि वह अनायास ही मुझे नहीं बुलाता है, किन्तु जानते-बूझते भी उसका मन नहीं तोड़ पाती थी ऐसा क्यों? पता नहीं, वह अक्सर कहा करता था कि उसका पिता, लिवरपूल की सड़कों और गलियों में पुराने पाँच कार्कों के बदले में एक नया कार्क बेचने का काम किया करता था। जब टॉमस पाँच वर्ष का हुआ, तब उसका पिता एक दिन समुद्र में कुछ लोगों के साथ मछली पकड़ने गया था। उस दिन कुहरा बहुत था और नाव एक स्टीमर से टकरा जाने के कारण उलट गयी और वह डूबकर मर गया। टॉमस की माता अपनी इकलौती सन्तान को छोड़कर लिवरपूल के एक रेल्वे ड्राइवर के साथ विवाह करके चली गयी थी और टॉमस तब से बिल्कुल अपने पैरों पर खड़ा हुआ और आज वह किसी प्रकार कर्नल तक बन सका है। अब वह चाहता है कि युद्ध में जाकर ज़रूर ही अपने ओहदे में वृद्धि करवाये। उसकी पत्नी से उसकी बिल्कुल नहीं बनती है इसलिए वह बहुत दुखी रहता है। इसलिए अगर मैं कभी वहाँना बनाकर अस्वीकार करती थी तो वह इतनी निरीह आँखों से मेरी ओर देखने लगता था कि मुझे अस्वीकार कर देने पर भी ‘हाँ’ भरनी पड़नी थी, और तब वह कितना प्रसन्न होकर अपने खाकी हाफ़पेंट में से सिगरेट निकालते हुए कहा करता था —

“हाउ स्वीट ऑफ़ यू माइ लव !”

बहुधा मैं उसके साथ रविवार रात या तो सिनेमा जाती थी या फिर रात्रि क्लबों में नृत्य वगैरह के लिए जाया करती थी। जब कभी हम लोग सिनेमा में होते थे तब टाभियों की वे सीटियों और अश्लील गालियाँ कितनी बुरी लगनी थीं। कर्नल टॉमस के साथ जो सबसे बड़ी कमज़ोरी थी, वह थी शराब और इसमें मुझे भी साथ देना होता था। वह साथ देना जानते हो, अकलंक ! धीरे-धीरे मेरी वृत्ति बन गया। रात को मैं अपने हॉस्टल में समय-असमय शराब के नशे में लौटती थी। मुझे टॉमस ने नृत्य करना पूरी तरह सिखाया था, और पूरे मूह में मैं नृत्य के लिए प्रसिद्ध हो गयी। जब कोई मेरे नृत्य की प्रशंसा करता था तो टॉमस फिर बंटों तक शराब के नशे में पूरी गाथा सुनाने लगता था कि उसे इस हिन्दुस्तानी औरत को सिखाने में क्या नहीं करना पड़ा। और मुझे यह प्रसंग सदा अप्रिय लगता था, कारण कि कर्नल टॉमस सब कुछ होने के बाद भी यह कभी नहीं भूल पाता था कि वह अंग्रेज़ है, और अंग्रेज़ इस देश का शासक है।

मुझे उन दिनों भूलकर भी हफ्तों तक पिछले दिन याद नहीं आते थे—बस, एक बँधा हुआ जीवन चल रहा था। ड्यूटी पर आठ घंटे लग जाते थे। जनरल वार्ड की ड्यूटी मैं हमेशा पसंद करती थी, क्योंकि बहुत सारे रोयी होते थे और हमेशा ही कोई न कोई काम।

‘सिस्टर टेम्परेचर देख लीजिए!’—

‘सिस्टर दवा का समय हो गया।’—

मैं ही समय कट जाया करता था। स्पेशल वार्ड में जब कभी रात की ड्यूटी होती थी तब अधिकतर तो आराम ही रहता था क्योंकि रोगी आखिर एक ही तो होता था और वह कभी न कभी सो ही जाता।

“किन्तु एक घटना जो वहाँ के जीवन में कड़वी विषरेखा की भाँति लगी, वह थी— एक बटेरलियन आफिसर के टान्सिल्स बढ़ गये थे और ऑपरेशन द्वारा वे काट भी दिये गये थे। मैं सबसे कुशल नर्स मानी जाती थी, डाक्टरों और सर्जनों का तो मुझ पर काम के कारण विश्वास था, किन्तु मुझे सदा हँसी आती थी कि रोगी क्या देखकर चाहा करते थे कि मेरी ड्यूटी उनके ही जनरल वॉर्ड या स्पेशल वार्ड में लगे।”

मैं देख रहा हूँ कि रंजना इस समय जैसे किसी उपन्यास के पन्ने पर पन्ने पढ़ती जा रही है और मैं कदाचित् आँखें बंद किये हुए सुन रहा हूँ, पर सत्य तो यह है कि मेरे स्थाने उसकी आँखें बंद हैं और मैं जाने कितनी देर से इसके मुँह की ओर देख रहा हूँ। मुझे बिल्कुल ही ध्यान नहीं रहा था कुछ देर से, कि मैं रंजना की ओर देख रहा हूँ। वह जो कुछ कह रही है उसे एकाग्र होकर सुन रहा हूँ। कदाचित् सब अपने आप होता चला जा रहा है, किसी को कोई विशेष अड़चन नहीं है। रंजना की इन गोरी पलकों के पीछे उसकी झील जैसी आँखें जाने क्या-क्या काला, सीलनभरा तथा धूप-रचा उजला भी देख रही होंगी। परन्तु घटनाओं के उतार-चढ़ाव, व्यक्तियों की आकृतियों की रेखाएँ इन आँखों में समायी हुई होंगी, जिन्हें मैं केवल सुन रहा हूँ और देख नहीं पाऊँगा। रंजना तब आज जैसी ही शांत तथा गम्भीर और घटनाओं से अपने को तटस्थ रख सकनेवाली थोड़े ही होगी। और यदि होती, तो इतना सब हुआ कैसे होता? मुझे अपने पर तरस आ रहा है कि किस सीमा तक मूर्खता की बात सोच सकता हूँ। अगर यह सोचा हुआ मैंने कहीं कह दिया होता तो चारों ओर के बैठे हुए लोग सब इस तरह देखते कि जैसे ‘कोई इस तरह की बात कर सकता है? जो इतनी तर्कहीन भी हो!’—और विशेषकर महिलाएँ निश्चय ही घूरती हैं, और ऐसे समय लिपस्टिक लगे ओठों को बिचकाना वे कभी नहीं भूलती हैं। तब सब एक दूसरे की ओर देखकर अत्यंत भद्रता के साथ हँसने लगती हैं, जैसे बहुत सारी चाय की चम्मचें किसी ने एक साथ गिरा दी हों—बस इससे अधिक इनकी हँसी का क्या मूल्य होगा?

मैं देख रहा हूँ कि रंजना आगे का कुछ सोच रही है। इस गाउन में—जिसमें यह इस समय मेरे सामने है—देखकर मेरे मन में जो बात आ रही है, वह यही कि मैं इस नारी को न चाहूँ, तब भी मोहित ही हूँगा, एकदम कैसी सुन्दर लग रही है।

“तो मैं कह रही थी अकलंक! उस टान्सिल्स वाले बटालियन आफिसर के बारे में। उसने मुझे कई बार टॉमस के साथ सिनेमा में, रेस्तराँ में, रात्रिक्लबों में, देखा था और हमेशा वह सामने की टेबल पर आकर बैठ जाता था और मुझे घूरने लगता था।

हमारा यद्यपि एक दूसरे से परिचय यदाकदा से अधिक निकट का रूप ग्रहण नहीं कर सका था, क्योंकि उसके बारे में मुझे मालूम था कि वह इतना बड़ा अफसर होने पर भी आवारा व्यक्ति है और शराब पीकर सड़कों पर या फिर बिलियर्ड्स की सैलून में जाकर अत्यधिक हुल्लड़ मचाया करता है ।

छावनी से लगे हुए मुहल्ले और बाज़ार बहुत जल्दी बंद हो जाया करते थे । बहुत रात तक चलनेवाला वह पारसियों का मुहल्ला था, जो वदनाम था । सिविलियन लोग ओर विशेषकर औरतें अँधेरा होने के बाद कभी उधर जाने का साहस नहीं करती थीं । पारसियों के कुछ बँगले, कुछ चीनी वार और छोटे-मोटे दूसरे रेस्तराँ ही आबाद रहा करते थे । उस बटालियन आफिसर ने मुझे बीसियों वार आमंत्रित किया था, मगर मैं जानती थी कि यह आमंत्रण मात्र एक आड़ है—और हँसकर टाल जाया करती थी ।

एक बात कहूँ अकलंक ! नर्सों या वेकाई गर्ल्स के बारे में जो कुछ कहा जाता है वह सम्पूर्ण नहीं तो अधिकांश सत्य ही होता है, और विशेषकर सैन्य अस्पतालों में तो हम लोग, उन लोगों के बीमारों की सेवा करने के लिए रहती हैं, किन्तु अस्पताल की ड्यूटी के बाद जो यह सब हम सरेआम होटलों, वारों और क्लबों में बैठकर करती हैं, वह मात्र बाह्य आवरण ई इसमें केन्द्र में जो रहता है भोग, उसका मुझे पहले ज्ञान नहीं था ।

एक रात बटालियन आफिसर को बहुत दर्द हो रहा था और मैं तीसरे पहर ही जब ड्यूटी पर पहुँची थी तब से बराबर सेवा कर रही थी । वह रात को दस बजे तक डाक्टरों को काफी परेशान करता रहा और उसने मुझ पर सिद्ध कर दिया कि मुझे अपने रोगी को एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ना है, और मैं उसके सिरहाने कुर्सी डालकर बैठी रही । परेड ग्राउंड के बाद एक पहाड़ी झरना पड़ता था और फिर सागौन का बहुत ही झीना—किन्तु अत्यंत सुन्दर जंगल । वहाँ कई अफसरों के बँगले थे और इस बटालियन आफिसर का बँगला भी इन्हीं में से एक था । इस बँगले के दाहिने हाथ पर कुछ बँगले थे किन्तु बायें हाथ पर बहुत दूरी पर 'सी' और 'डी' कम्पनी के मेमेम थे—और बम, उन मेमेम के बाद फिर बैरकें थीं ।

जाड़े की रात, कदाचित् अगहन का अंतिम सप्ताह था या फिर पौष का प्रारंभ था । खिड़कियों के पल्ले, पीतल के चमकते हुए बोल्टों से एकदम बंद थे क्योंकि बाहर तेज़ ठंडी हवा चल रही थी । शाम को कोई भी उम्मीद नहीं कर सकता था फिर भी काफ़ी तेज़ ओले गिर चुके थे । चारों ओर एकदम घना कुहरा घिरा हुआ था । शीशों के पार कुहरा ऐसा लग रहा था जैसे कोई काला साँभर खिड़कियों के इन शीशों से अपनी पीठ और पुट्टे रगड़ रहा हो, और बेचारे शीशे चूर-चूर हो जायेंगे । लड़ाई के दिन थे, जापानी लोगों का बढ़ाव असम मोर्चे की ओर बढ़ रहा था और किसी भी क्षण लड़ाई के बम भारतवर्ष की धरती पर गिर सकते थे । बटालियन आये दिन विंध्या के जंगलों में ट्रेनिंग पाती थीं और फिर वे एक दिन मूढ़ के उस छोटे से स्टेशन से ईराक या मित्र, जर्मनी या फ्रांस, सिंगापुर

या मलय कहीं उसी तरह भेज दी जाती थीं, जैसे यह सब भी लगेज हों और थोक माल की तरह आपने गाड़ी पर चढ़ा दिया, बस !! इसलिए हर कंडेट, अफसर यही सोचता था कि आज का दिन उसका है, कल के बारे में वह नहीं जानता। इसलिए उसकी इच्छाएँ और उच्छृंखलताएँ बहुत बढ़ जाती थीं। नर्सों और बेकाइयों को लेकर वे लोग क्या क्लबों, वारों, सड़कों, परेड ग्राउंडों तक पर देखे जाते थे। उन दिनों छावनियों में लाइटों का प्रयोग नौ बजे के बाद नहीं करने दिया जाता था। इस कुहरे में से कभी-कभी सर्चलाइट आकाश की ओर तेज़ी से जाती हुई दिखायी देती थी और फिर गहरा सन्नाटा हो जाता था। सैनिक आफिसरों के टेबल-लैम्पों पर गहरे काले शेड्स का प्रयोग करने की आज्ञा थी। उस दोपहर मैं स्टेशन गयी थी, क्योंकि कर्नल टॉमस की वटालियन को सहसा बम्बई के लिए रवाना हो जाने की आज्ञा मिली थी। यह वटालियन आफिसर आने वाले आठ दिनों में ही स्वयं के भी रवाना होने की आशा कर रहा था, और इसे इस बात का दुःख था कि इन दिनों जब कि वह नाच गा सकता था, बेचारा बीमार बनकर लेटा हुआ है।

मैं उसके सिरहाने बैठे हुए सोच रही थी कर्नल टॉमस के बारे में कि कितना सभ्य था वह। कभी उसने कोई अशिष्टता का व्यवहार नहीं किया। जबकि मिलिट्री की शिष्टता सिविलियन लोगों की अश्लीलता की समाप्ति पर प्रारम्भ होती है। पर टॉमस ने मुझे शिकायत का कोई अवसर नहीं दिया। जब वह मालाओं से लदा अपने कम्पार्टमेंट के दरवाजे पर खड़ा बहुत उदास लग रहा था, मेरा मन जाने कैसा-कैसा हो गया था। लड़ाई में जाना किसी को भी अच्छा नहीं लगता है। कदाचित् विदा होने हुए टॉमस की आँखों के आगे कुछ लोग स्मरण आये होंगे। मैंने तब कितने प्रेम से उसकी मिगरेट जलायी थी और वह तब कितना प्रसन्न दिखने लगा था। उसके बायें तरफ के एक दाँत में सोने की पत्ती जड़ी हुई थी, जो उस दोपहर जब हँसता था तब कितनी अच्छी लग रही थी। पूरा स्टेशन सैनिकों के भारी बूटों की आवाज़ से भर गया था। उन बूटों के नीचे लगे हुए गोखरू कैसे 'किचिर' 'किचिर' बोलते जा रहे थे। कई नर्स, बेकाई गर्ल्स, कुछ की पत्नियाँ ट्रेन के समय अपने परिचितों, डार्लिंगों और पतियों को विदा देने के लिये आयी हुई थीं। पूरा स्टेशन एक बार चुम्बनों और आलिंगनों के रस में डूबा हुआ लग रहा था। कइयों के बच्चे लाल-लाल पुलोवर पहने कैसे उम्दा तरीके से अपने भरे हुए गोल छोटे हाथ हिलाते जा रहे थे। इस हाथ हिलाने का अर्थ अभी वे आनेवाले कई वर्षों तक नहीं जान पायेंगे। मैंने भी कर्नल टॉमस के ओठों को तीन बार अपने चुम्बनों से भर दिया था।

ट्रेन चलने के पहले पूरी कम्पनी एक बार 'फ़ाल इन' हुई थी। एक बारगी ही चिकने पथरोंवाँला छोटा-सा प्लेटफ़ार्म राइफलों के कुंदों और एड़ियों की खटाकों से भर गया था। उसके बाद साजेंट मेज़र की 'शोल्डर-आम्स' 'आर्डर आम्स' की तेज़ आवाज़ सुनायी दे रही थी। सहमे हुए कुली लोग धीरे-धीरे पान की टोकरियाँ और दूसरा सिविलियन माल ढो रहे थे।

“और तब तीन ‘हिप् हिप् हुर्रे’ के साथ ट्रेन की खिड़कियों में से पचासों हाथ खिड़कियों से बाहर निकल पड़े थे —स्टेशन के प्लेटफार्म को पकड़ने के लिए जैसे ट्रेन ने हाथ बढ़ा दिये हों। एक क्षण को टॉमस का इस तरह हमेशा के लिए चला जाना मेरे मन को बहुत बुरा लगा, ऐसा क्यों ? मैं नहीं जानती पर मैंने उसका हिलता हुआ हाथ, भूरे बालों से भरा हाथ, अपनी ओर खींचकर गालों से सटाकर उस पर दो गरम-गरम बूंद गिरा दीं, और फिर मेरे ओंठों ने तीन चुम्बन उसकी हथेली और कलाई पर टाँक दिये । उसी हथेली और कलाई पर, जो लड़ाई के मैदान में मशीनगन चलायेंगे । मशीनगन चलाते समय वे तीन चुम्बन उसके दाँत की सोने की पत्ती से भी अधिक चमकदार होकर चमकेंगे। वह कितना खुश था, कितना खुश था अकलंक ! कि मैं कुछ बता नहीं सकती । मुझे हमेशा वह टॉमस इसलिए याद रहता है कि वही एक व्यक्ति मेरे जीवन में ऐसा आया जिसे हँसता पाया और जिसने मुझे भी हँसाया । बस, और कुछ भी तो याद नहीं पड़ता । बताओ अकलंक ! क्या मैं उसका वह गोरा, भूरे बालों से भरा हाथ जिसे मैंने तीन चुम्बनों के सलमे-सितारों से टाँका था, भूल सकती हूँ ? भूल जाऊँ ? इतनी कड़वाहट को अगर भूल जाने को कहोगे तो भूल सकती हूँ किन्तु उस गोरे, भूरे बालों भरे हाथ की मिठास को इस जन्म में तो क्या, कभी भी नहीं भूल पाऊँगी । काश, ऐसी मिठास जीवन भर मिल पाती । कदाचित् इसी मिठास के लिए तो इतना भटकी भी थी अकलंक ! और वह मुझे मिली भी तो प्लेटफार्म पर ; अगर रोकना चाहती तो रुक भी तो नहीं सकती थी ? मैं कितनी देर तक खड़ी रही प्लेटफार्म पर । चारों ओर से कुली ठेलों पर सामान लादे हुए जाने क्या समझते हुए बचते-बचाते गुजर रहे थे । जाड़े की उस कुहरे भरी मंद मीठी दोपहरी में दोनों रेल की काली पटरियाँ पृथ्वी पर लेटी हुई कोसों बिछी हुई दिखायी दे रही थीं और, और उन्हीं दो पटरियों पर वह ट्रेन चली जा रही थी जिसमें टॉमस मुझे एक क्षण को जीवन की मिठास देकर चला गया था ।”

रंजना कितनी उत्तेजित हो उठी है कर्नल टॉमस की स्मृति में । यदि सम्भव होता तो निश्चित ही रंजना ने उसे पति तक बना लिया होता । किन्तु इतनी कड़वाहट के बाद जो मिठास बनकर आया था क्या उसकी भी यह उपेक्षा कर देती ?

रंजना ने एकदम चौंककर अपनी आँखें खोल ली है और—

“जानते हो अकलंक ! मैंने इस व्यक्ति के साथ शायद विवाह किया होता, शायद नहीं निश्चय ही किया होता । और यदि विवाह करती तो बिल्कुल अपनी ज़िम्मेदारी पर करती । और, अगर इस व्यक्ति ने भी वही किया होता जो औरों ने किया है तब कदाचित् मैं इस टॉमस का उल्लेख तक भी नहीं करती । अकलंक ! वह और सब कुछ था लेकिन उसे केवल शरीर की अपेक्षा कभी नहीं थी ; मैं कहती हूँ बिल्कुल नहीं थी अकलंक ! अन्यथा यदि वह शरीर लेकर संतुष्ट होनेवाला व्यक्ति भी होता तब भी मुझे बहुत प्रसन्नता होती । मैं समझती, कि मेरे नारी शरीर की नदी के लिए सिंधु यही व्यक्ति

है और आज इसका उपयोग हो गया; जिसकी मैं प्रतीक्षा कर रही थी, और जिसकी प्रत्येक नारी सहज प्रतीक्षा करती है ।

“किन्तु मैं देखती हूँ अकलंक ! कि न तो अच्छे क्षणों को बाँध रखने की क्षमता एवं शक्ति है मुझमें और न बुरे क्षणों को दूर रखने का साहस एवं बल । कटी हुई पतंग की भाँति, हवा की इच्छा पर निरंतर पतनोन्मुख—यही तो कदाचित् तुम भी सोच रहे हो, क्यों ठीक है न अकलंक ?”

मुझे रंजना का मेरे प्रति इस प्रकार कटु मोचना अच्छा नहीं लगा है ।

“ऐसा सोचने का कारण, रंजना !”—

आरामकुर्सी पर बहुत देर से विश्राम करती हुई अपनी टाँगों को हिलाते हुए वह बोल रही है —

“ऐसा न सोचने का क्या कारण है अकलंक ? कदाचित् दयावश स्वयं तुम ऐसा मोचना चाहकर भी नहीं सोच रहे हो, या फिर.”

और अब की बार उसने फिर आँखें बंद कर ली हैं—टाँगें हिल रही हैं ।

“या फिर. . . के आगे तुमने वाक्य पूरा करने के स्थान पर आँखें बंद कर ली, रंजना ! और जानती हो मैं वाक्य पूरा होने की प्रतीक्षा में तुम्हारी इन बंद पलकों की ओर देख रहा हूँ, कुछ सुना रंजना !”—

“मैंने किस-किस की प्रतीक्षा नहीं की अकलंक ! तुम्हारी भी की थी, और आज तक की थी—किन्तु व्यर्थ ! ! और हाँ देखते हो, तुम वाक्य जरा देर में पूरा होगा इस तक की प्रतीक्षा न कर सके और कह बैठे । जब कि मैं तो आज अपने ओठों के बाहर यह सब ला सकी हूँ जब कि एकदम किनारे पर आ खड़ी हुई हूँ, क्योंकि पथ समाप्त-मा ही तो लगता है—वल्कि पथ की परिसमाप्ति, शून्य के किनारे पहुँचकर क्षितिज का व्यास बन गयी है अकलंक !”

“मैं समझा नहीं रंजना ।”—

“तुम्हें थ्योरी समझ में नहीं आ सकती यह मैं लिखकर दे सकती हूँ—सिवाय प्रैक्टिकल डेमान्स्ट्रेशन के और कुछ भी कहना-सुनना सिर खपाना है । सब कुछ समझ में आ जायगा । मेरी समझ में यह सब इसलिए आ रहा है कि कुछ अनागत भी देख पा रही हूँ विगत के आधार पर । तुम विगत सुन रहे हो, वर्तमान को मैंने तुम्हें देखने दिया ही नहीं, तो अनागत तो बिना आँखें फ़ाड़कर देखे तो समझ में नहीं आ सकता; है न ? भ्रम में तुम नहीं मैं हूँ अकलंक ! सब कहीं मैंने ही भूल की है; जब मैंने भूल की है तो फिर तुम जैसे भी समझोगे, समझाऊँगी तुम्हें तो ।

उस टान्सिल्स वाले बटालियन अफसर के सिरहाने बैठी मैं कर्नल टॉमस के बारे में यही सब सोच रही थी, किन्तु वह अफसर जाने कब करवट बदल चुका था और बहुत देर से टकटकी बाँधकर मुझे घूर रहा था। उसका पूरा नाम तो बहुत बड़ा था मगर सब उसे 'रेनाल्ड' कहकर ही पुकारते थे। रेनाल्ड हम लोगों की 'जनरल सर्विस' की परेड पर भी हमेशा पहुँच जाया करता था और हाथ में हमेशा एक छोटा-सा हंटर लिये, कंधे पर बटालियन आफ्रिसर का 'लाल फूल' लगाये तथा हैट में लाल रिबन लगाये हुए, स्लेटी या नैवी-ब्ल्यू साड़ियों में लिपटी हुई 'जनरल सर्विस' की लड़कियों को घूरने के मामले में वह छावनी में प्रसिद्ध था। एक बार यह सोचकर पूरी कॅपकॅपी आ गयी और मुझे पहली बार डर जैसी चीज़ अनुभव हुई कि इतनी रात में बिल्कुल अकेले बँगले में इस रेनाल्ड जैसे आवारा की देखभाल कर रही हूँ।

कमरे को गरम रखनेवाला हीटर अपने तारों में लाली भरे हुए फुँके जा रहा था। डाक्टरों को गये एक घंटे से अधिक हो चुका था। मैंने उसका टेम्परेचर भी लिया था और वह नार्मल से कुछ ज्यादा था। मैंने वातावरण को भयहीन करने के लिए बोलना चाहा, किन्तु मैं जानती थी कि रेनाल्ड को बोलना मना है। और न बोलने देने में कदाचित् वह परिस्थिति ही न आये जिसकी आशंका से इस ठंडे और घने कुहरे में भी हल्का पसीना अपनी दोनों वगलों और भाल पर मैं अनुभव कर रही थी। क्योंकि बोलकर कोई भी अपना मनोभाव तो प्रकट कर ही सकता है, चाहे फिर आप उसकी उपेक्षा ही कर दें। किन्तु दबा हुआ भाव स्पष्ट कर दिया जाने पर, व्यक्ति अपनी तृप्ति और वांछा के नखों से उसी तरह धरती को कुरचने लगता है जैसे विल्ली के पंजे।

सामने एक जाली वाली छोटी आलमारी रखी हुई थी उसमें ओवल्टीन, हॉर्लिल्स और कुछ विटामिन टॉनिक, साथ ही कुछ उजली पट्टियाँ रखी हुई थी। रेडियम डायल की टेबल-क्लाक में इस समय ११.३० हो रहे थे। घड़ी के अक्षर और काँटे हरे-हरे चमक रहे थे। उसकी 'किट्' 'किट्' उस गहरे सन्नाटे में ठीक वैसे ही लग रही थी जैसे वह अंधकार की नाड़ी की आवाज़ हो। मैंने अपना डर दूर करने के लिए रेनाल्ड के ठीक इसर की तरफ़ रखी दो-तीन लड़ाई की पत्रिकाओं में से एक उठाकर देखनी शुरू की। मोटे-मोटे टैंक, स्टील के हैट पहने हुए फ़ौजी और जाने क्या-क्या, मैं रात भर देखती ही रहती यदि बिस्तरे की उजली बेडशीट पर रक्खा हुआ मेरा हाथ किसी ने न छुआ होता तो, और मैं एकदम डर गयी। मेरी वगलें पसीने से लथपथ होने लगीं, अंदर की ब्रेसरी जैसे एकदम पानी से भीग गयी हो, ब्रेसरी की डोरियाँ जो कि पीठ पर बँधी हुई थी गीली लग रही थीं। मुझे लगा मेरी पिंडलियों पर से अवश्य पसीने की धारा बह रही है जिसके कारण मेरे लम्बे मोझे गीले हो रहे होंगे, परन्तु कहीं किसी भी ओर देखने का मेरा साहस नहीं हो रहा था। मेरा उजला हुड जो कि गले से कुछ ऊपर था, बालों की जड़ों से निकले पसीने से भीगा-भीगा लग रहा था। उसकी दो डँगलियाँ बहुत अधिक सिगरेट

पीने के कारण पीली-पीली दिवायी दे रही थीं और वह मेरी ओर घूरता हुआ कह रहा था—

“रेनाल्ड क्या इतना बुरा आदमी है कि उसे स्नेह का एक चुम्बन तक नहीं मिल सकता ?”—

और मैं जानती हूँ कि मेरी तबियत इतने जोर से चीख पड़ने का कर रही थी कि वस!! साथ ही मुझे मालूम था कि बाहर के उस छोटे से गार्डरूम में जो गार्ड पहरें पर है वह चीख सुनने पर भी यहाँ नहीं आ सकता है। रेनाल्ड अब तकिये के सहारे और ऊँचा हो गया था। बार-बार अनुनय करना जा रहा था तथा मेरा हाथ अब उसके सीने पर पहुँच गया था। मुझे अपने इस बेकाई गर्ल के रूप की विपन्नावस्था पर बम्बई के वाद आज पहली बार तरस आ रहा था। मैंने अपने हाथ को झटका दिया अकलंक! पर वह वैसे ही झटका खाकर पड़ा रहा जैसे किसी बंदी की एक टाँग जेल की दीवार की साँकल से बँधी हो और वह बंदी, जब टाँग निकालना चाहता हो तो बारबार झटके खा जाती हो। मैंने रेनाल्ड से विनती की—उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। किन्तु अब मेरे दोनों हाथ उसके जलते गरम दोनों फ़ोलादी हाथों में पहुँच चुके थे। मैंने—‘आप को टेम्परेचर है’—कहकर हाथ खींचकर थर्मामीटर लाने का बहाना बनाया परन्तु तब तक मेरे ओठ उसके मूँछों भरे आँठों पर जा चुके थे। उसके दाँतों आँठ बेतहाशा जल रहे थे, कदाचित्त उसे अनायास ‘हाई फ़ीवर’ हो आया था—मैं एक बार जोरो से चीखी, परन्तु तेज ठंडी हवा के बाहर बहते हुए अंधड़ के कारण ‘खड़’ ‘खड़’ करते हुए दरवाज़े और खिड़कियाँ ही उस चीख को पी गयीं, और वह मुझे अपने सीने पर झुकाये पागलों की भाँति चूमता जा रहा था। मैं पागल हो रही थी। मैंने उसे नाँचना शुरू किया और उसके टैकों की तरह भारी हाथों ने मुझे अपने पाम मुला लिया। मुझे याद है अकलंक! सिरहाने लगे हुए स्विच की एक बार ‘खट्’ से हल्की आवाज़ हुई थी और उसके बाद मेरे तड़पते शरीर से उसका फ़ोलादी शरीर वैसे ही सटता चला गया था जैसे दर्जी की गुई दो कपड़ों को जोड़ती चली जाती है।

मैं जब सुबह को बेला होस्टल लौटी मेरा सिर तबे की तरह जल रहा था और पूरी दुनिया से मुझे धिन, घृणा, और चिढ़ हो रही थी। मैंने निश्चय कर लिया था कि मैं अब यहाँ नहीं रहूँगी, और अगर कहीं रहने का स्थान नहीं मिलेगा तो कुएँ में कूदकर अपने इस वासनामय नारी के शरीर को सदा के लिए समाप्त कर दूँगी।

जब मैं होस्टल पहुँची सब अपनी-अपनी ड्यूटी के लिए तैयारियाँ कर रही थीं। मैंने कमरे में पहुँचते ही दुआर अंदर से बंद कर लिये और विस्तरे पर औंधे लेटकर अपनी हथेलियों में मुँह छुपा फूट पड़ी। दिन भर यों ही पड़े-पड़े रोती रही। सप्ताह को जब वार्डन ने दुआर खुलवाये तो मैंने सिर में पीड़ा का बहाना बनाकर पीछा छुड़ाया। तीन दिन तक कमरे से बाहर नहीं आयी। चौथे दिन आफ़िस में जाकर अपना त्यागपत्र दे दिया। मेरे एकाएक इस प्रकार त्यागपत्र से सबको आश्चर्य हुआ। मुझसे लोगों ने कारण

जानना चाहा क्योंकि किसी न किसी रूप में सभी मुझे चाहते थे और मुझ जैसी कुशल नर्स के जाने से उन्हें धक्का लग सकता था। तुम बताओ अकलंक ! कि मैं लोगों की बात का क्या उत्तर देती ? क्योंकि नारी का जो शरीर मुझे मिला था और जिसे देखकर प्रत्येक के मन में वासना ही आयी, क्या कोई भी मुझे इस नारी-शरीर की यंत्रणा से मुक्ति दिला सकता था ? जब सबने मुझसे कारण जानने की बहुत चेष्टा की तब मैंने कहा कि मेरी तबियत यहाँ नहीं लगती है। लोगों ने मुझे और कहीं चले जाने के लिए कहा, बोले, त्यागपत्र देना उचित नहीं।

“मैं जानती हूँ, कारण कदाचित् सबको धीरे-धीरे मालूम होता जा रहा था और इसलिए मैंने बैरागढ़, जहाँ लड़ाई के बहुत से इटालियन बंदी रक्खे गये थे, के लिए प्रार्थना-पत्र दे दिया।

“जिस समय मैं मूह के स्टेशन से विदा हो रही थी कर्नल टॉमस की स्मृति से उन दिनों के गाढ़े विपाद में भी हल्की मीठी स्मृति भर उठी। कभी मैं उसे विदा देने यहाँ आयी थी और आज मैं स्वयं विदा हो रही थी। कर्नल टॉमस का ईराक से एक पत्र आया था कि उसे मूह ओर ‘रैन्तना’ दोनों की बहुत याद आती है—कितना भोला था अकलंक वह !!

“कुछ सहेलियों के हिलते रूमाल और रंगीन स्कर्ट्स उस स्टेशन पर पीछे दिखायी पड़ रहे थे और मैं हमेशा के लिए मूह से विदा हो गयी। मुझे मूह में ऐसा लगा था कि मेरा जीवन कितना बदल गया है। किन्तु इम रेनाल्ड ने आकर इस बदले हुए जीवन को भी कितना दुर्गन्धमय ओर कड़वा कर दिया था। अकलंक ! मुझे लगा कि मैं संसार के किसी भी स्थाने अपने इस नारी-शरीर को लेकर क्यों न पहुँच जाऊँ, मेरे लिए वहाँ भी दुर्गन्ध और सीलन लिये कोई न कोई पहुँच ही जायगा।

“दिसम्बर का दूसरा सप्ताह प्रारम्भ होने को था जिस समय मैं मूह से चली थी। क्रिसमस की छुट्टियों का उत्साह मैं अपनी बेकाई सहेलियों तथा मिलिट्री के लोगों में वहीं मूह में छोड़ आयी थी। मैं जान रही थी कि क्रिसमस में विशेष रूप से लोग अपने परिचितों में रहना पसंद करते हैं। अकलंक ! यह मैं कदाचित् तुम्हें बतलाना भूल ही गयी थी कि मैंने मूह में अपना धर्म-परिवर्तन कर लिया था और इसाई हो गयी थी। मेरे इसाई होने पर टॉमस बहुत प्रसन्न हुआ था। तुम या कोई भी मुझसे पूछ देख ले कि कभी कोई इसके पहले भी मेरा धर्म रहा था ? कदाचित् नहीं; फिर भी हिन्दू थी प्रारम्भ में और उसके बाद मुसलमान, किन्तु उसके पश्चात् एक समय ऐसा भी आया अकलंक ! जब कि अहमद जा चुका था, तब न तो मुझे पति और न धर्म, दोनों की ही कोई आवश्यकता थी जब कि नारी के लिए ये दोनों परमावश्यक हैं।

“यदि रेनाल्डवाली घटना न हुई होती तो मैं मूह कभी नहीं छोड़ना चाहती थी। मेरे वे भरे-भरे दिन थे जैसे सूरजमुखी के फूल में बहुत सारी धूप भर गयी हो। जाड़े के

छोटे दिन, बहुत शीघ्र थककर साँझ बन जाते हैं, और इन्दौर तक ट्रेन के पहुँचते-पहुँचते तो आकाश लाल ही लाल हो गया। इस लाली के ठीक नीचे इतना अधिक कुहरा था कि जैसे बहुत जल्दी ठंड और अंधकार बढ़ जायगा। जाने क्यों मैं इस समय बहुत उदास मन से खिड़की पर कोहनी टिकाये ट्रेन के चल पड़ने का पथ जोह रही थी। इधर आप कह नहीं सकते कि आपको कुहरा जाड़े में हमेशा और सब स्थाने एक-सा ही मिलेगा।

“जिस समय रात के दस बजे के लगभग ट्रेन शिप्रा की ठंड में ठिठुरती काली कछारों में से गुज़र रही थी, बिना कुहरे की चाँदनी रात एकदम आइसक्रीम की तरह जमी हुई नंगी सफ़ेद-सी लग रही थी। ट्रेन काली मिट्टी वाले लम्बे-लम्बे खेतों के बीच से सरपट चली जा रही थी। आसपास की छोटी-छोटी पहाड़ियों के बीच से रेल के पहिये प्रतिध्वनित होते हुए भाग रहे थे। साँझ, ट्रेन में से रास्ते भर देखती आयी कि छोटे तालाब और बड़ी झीलें में कहार लोग अपनी-अपनी छोटी नावें लिये सिंघाड़े तोड़ते फिर रहे हैं। छोटे पट्रैग-स्टेशनों पर गाड़ी एक क्षण को रुकी नहीं कि कहारों के काले नंगे लड़के और कढ़ाई के तैल-सी चिकनी लड़कियाँ; लाल छोट की एकदम फटी धोतियाँ लपेटे, कच्चे हरे सिंघाड़े और काले मिर्के सिंघाड़े पैमे-पैमे में बेचते फिर रहे थे। आम के पत्तों पर पाँच-पाँच, दस-दस पीली खजूरों और सिन्दूरी टीमरू रखे हुए वे बेचनेवाले लड़के-लड़कियाँ कैसी विनती करते फिर रहे थे कि,—

“मेम साहब, दो-दो पैसे”,

“बाबू साहब दो दो पैसे में—”

“और ये पुकारें ट्रेन की ऊँची सीटी तथा तेज भाप छोड़ने की आवाज़ में रेल के पहियों के कितने पाम और, प्लेटफ़ार्म न होने के कारण खिड़कियों से कितने नीचे थी। रेल-में बैठे लोगों की ओर अपनी छोटी गर्दनोँ को बहुत ऊँचे करते हुए, ये लड़के-लड़कियाँ आवाज़ें दौड़ा रहे थे। पता नहीं ‘दो-दो पैसों’ की उन पुकारों का क्या हुआ होगा ?

“खिड़की के बाहर बहुत तेज़ ठंडी हवा को काटता हुआ इंजिन बढ़ता जा रहा था। वैसी धुली कपोतवती चाँदनी मुझे सिर्फ़ मालव में ही देखने को मिली। कोसों तक चाँदनी में खड़े नहाते हुए पहाड़, वनराजि, छोटे-छोटे गाँव, तालाब, झीलें सब साफ़ दिखायी पड़ रहे थे। अकलंक ! बड़ी-सी झील के किनारे उगे हुए ढाक और सरपट-और सरपटों के बोव में काँपी हुई झींठ की लहरें, जिन पर चाँद के शत-शत टुकड़े हो उन सरपटों में ‘छप्’ ‘छप्’ की आवाज़ें करती हुई विलीन होती जाती। कित्ता अप्रतिम सौंदर्य, रूप का कितना निष्कलंक गोरा विस्तार ! ! वंशी में सोयी हुई रागनियों की भाँति शांत और निर्विकार मन की भाँति कितना एकान्त ! ! जिसमें के एक अंश को पाने के लिए भटकती रही हूँ धाविता रही जीवन भर, पर क्या कहीं वह मिला ? उस झील की पारे और चाँदी की तरह चमचमाती छाती पर दो उड़ती मिथुना सारसों—कैसी भली लगती हैं अकलंक ! मैं भी ठीक ऐसे ही एक सारस बनना चाहती थी और एक सारस का साथ

चाहती थी—किन्तु क्या यह हो सका ?? मैंने कई बार सोचा कि यहाँ उतर जाऊँ— यहाँ सरपत, चाँद और झील पर काँपती हुई सारसों की स्वप्नमयी मिथुन छायाएँ तो हैं ! अब और मुझे करने को क्या शेष है ? चन्द्रमा, अपने हरिणों के साथ में गोल तारिकाओं के देश में भ्रमण कर रहा था—मैं एक छोटा नक्षत्र भी न बन सकी ??

तेज, ठंडी हवा मुझे अपने पुलोवर और ओवरकोट में भी कँपा रही थी। कटे हुए नंगे खेतों में चाँदनी में भागते शशक, लोमड़ियाँ और कभी-कभी नीलगाएँ, साँभर एकदम असीम निर्द्वन्द्व, उन्मुक्त-से लगे। किन्तु मैं जानती हूँ अकलंक ! कि इतनी स्वतंत्रता मुझे चाहिये भी नहीं थी और यदि मिलती भी तो निश्चित ही लौटा देती। लखरावों तले ठंड में सिकुड़े बैठे रखवाले पत्तों का अलाव जलाये हुए अंधकार में चमक जाते थे। कम ऊँचाइयों की झाड़ियाँ दोनों तरफ़ कोसों लम्बे चली गयी थीं और ट्रेन कितनी ऊँची लग रही थी। ईख के खेतों के पास गन्ने का रस निकालते हुए वे मालवी किसान इस चाँदनी में भी काम कर रहे थे। मुझे लगा अकलंक ! किसानों के लिए चाँदनी रात भी काम करने के लिए है जब कि कुछ के लिए दिन भी काम करने के लिए नहीं बना है।

जब मैं बैरागढ़ पहुँची उस समय सुबह के दम भी नहीं बजे थे। अभी थोड़ी देर पहले मैंने कालीसिंध नदी का वह गेहूँ लम्बा पुल पार किया था जिसके नीचे से कालीसिंध चट्टानों के बीच से तेज बहती है। काली चट्टानों के ऊपर बना हुआ वह गेहूँ लम्बा पुल वैसा ही लग रहा था जैसे किसी कृष्ण भील ने अपने शरीर पर सिन्दूर की कई आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींच ली हों। कालीसिंध इतनी गहरी है कि अभी तक उसकी सतह पर से पानी की भाप उड़ रही थी। सुबह की तेज पुरवा में नागफनी के मोटे, लम्बी गोलाईवाले, कांटे भरे, हरे पत्ते और लाल गोल फल की तरह के फूल भी काँपते हुए रास्ते में मिले। छोटी-छोटी खाँकरे की झाड़ियों में भरी इधर की धरती अधिकतर वनैली थी, खेती के लिए एकदम उजाड़, इसलिए रास्ते में कोई भी गाँव नहीं दिखायी दिये। बैरागढ़ पहुँचते ही मुझे लगा कि यह स्टेशन मूलतः नया बन रहा है। अभी तक भी प्लेटफार्म कच्चा बना था और लम्बी कतारों में खड़ी हुई ईंटें प्लेटफार्म के लिए जमायी जा रही थी। बहुत सारी पटरियाँ विछाने का काम चल रहा था। यहाँ मैंने देखा कि सवारी के नाम पर कोई भी नहीं उतरा, क्योंकि थोड़ी ही दूर भूपाल जंक्शन पड़ता है जहाँ जाकर यह ट्रेन रुक जायेगी। बहुत तेजी से डाक के थैले, फूलों और फलों की टोकरियाँ, मृगियों के अंडे ढेर के ढेर उतारे जा रहे थे। पूरे स्टेशन पर सिविलियन के नाम पर कदाचित् कुछ ठेकेदार ही रहे होंगे। मगर कुछ नर्स और वेंकाई भी मुझे यहाँ दिखायी दीं जो कि अपने परिचित किमी सारजेंट या कैप्टन को छोड़ने आयी थीं, जो कहीं छुट्टी पर जा रहा होगा, जो कि उनकी कमर में हाथ डालकर चल रहा था। अपने मिलिट्री 'पासेज' के पीछे की तरफ़ एक दूसरे का चित्र लगाये आपस में देख-देखकर हँस रहे थे और चुम्बन आलिंगन में बँधते जा रहे थे।

में जब वहाँ उतरी तब मुश्किल से कुछ गुरखा मिपाही और दो एक टाँमी जो रेंक में या तो वारेंट आफ़िमर या लेफ़्टिनेंट से अधिक नहीं होंगे मेरे साथ ही ट्रेन से उतरे । मुझे देखने ही, जो ट्रक लेने आयी थी उसके ड्राइवर ने सामान उठाने में सहायता की । सामान स्वयं ही उठाना पड़ा क्योंकि यह मिलिट्री स्टेशन था और नाम मात्र को दो एक कुली रहे होंगे जो ठेकेदार लोगों का सामान लादने-उतारने में लगे हुए थे ।

अभी सड़कें पक्की नहीं बनी थीं, मगर हजारों मिस्त्री स्टेशन, मड़के, बँगले और बैरकें बनाने में जुटे हुए थे । यहाँ मिक्ख रेज़ीमेंट की एक बटालियन थी जिसकी बैरकें दाहिने हाथ पर दिखायी दे रही थी । जहाँ उस समय भी मिक्ख लोग अपनी बनियातें पढ़ते, धारियोंवाले कच्छे पहने और दाढ़ियों पर कपड़ा बाँधे हुए धरती खोद रहे थे—कुछ ईंटें ढोती हुई मजदूरगिरी को घूरते हुए पंजाबी का अश्लील गाना गा रहे थे । मैं जानती हूँ अकलंक ! वह अश्लीलता कदाचित् कम भी अनुभव हो सकती थी किन्तु हमारे मोटे ओठों से और अजीब प्रकार के बोलने के ढंग से वह कितनी बुरी हो जाती है यह मैं बहुत बाद में अनुभव कर सकी हूँ ।

क्या रंजना के मोटे ओठों वाली बात को ठीक मान लें ? एकदम जैसे ब्रेड की बारीक धार से संगमरमर की दो पत्तियाँ काट दी गयी हों—ऐसे तो रंजना के ओंठ हैं । रंजना अपनी आराम कुर्सी पर बैठी हुई जैसे पूरा जीवन दुहराकर एक बार फिर से जीना चाह रही हो, पर तब के जीने में और आज के जीने में वह केवल अंतर इतना रख पा रही है जो कि एक लिप्ट होकर जीने में होता है और दूसरे तटस्थ होकर जीने में होता है ।

मैं अपने तकिये में कोहनी से गड़ढा बनाये और उस कोहनी पर अपनी ठोड़ी टिकाये सब मुन रहा हूँ । मैं कई बार बीच-बीच में प्रश्न करने की भी सोच चुका हूँ, परन्तु आज अपने प्रश्नों के 'क्या' 'कैसे' और 'क्यों' से उस विगत को न तो बदल ही सकता हूँ और न मिटा ही सकता हूँ—इसलिए मन कचोट-कचोटकर रह जाता है । रेनाल्ड वाली वह रात मुझे इस समय ही नहीं अब तो जीवन भर कड़वे विष की तरह याद रहेगी । सब रंजना के पास इसी तरह ही तो आये जैसे रंजना का शरीर उनके पुरुष शरीर का ऋण था—कुछ व्याज लेकर चले गये, कुछ लोगों ने मूलधन के आधार पर कुछ दिनों व्यापार किया, और रंजना ने विद्रोह नहीं किया, बल्कि समझौता किया—किसी के साथ पत्नी बनकर, किसी की मात्र प्रेमिका बनकर और किसी के साथ भागकर !!

रंजना का बायाँ हाथ मेरे बिस्तरे पर रक्खा हुआ है, जिसकी कलाई में बँधी हुई घड़ी में रात के दस बजे चुके हैं । बाहर आकाश बादलों से भरा हुआ है, साँझ फूझी थी, रात मेघाच्छन्न । मेरे सामने बैठी हुई रंजना इस मेघाच्छन्न रात से किसी प्रकार भी कम नहीं है । अंतर केवल यही कि बाहर वाली रात, बरसने का विचार कर रही होगी जब कि मेरे सामने बैठी हुई रात, आज दोपहर से अनवरत मूसलाधार बरस रही है । बरसते हुए आज लग रहा है कि मेरे आज तक के ये विश्वास के विजय-स्तंभ, कुतुब-

मीनार, जिन्हें मैं शाश्वत की संज्ञा दिये बैठा था इस सामने बैठी हुई रात ने उन्हें अपने अनुभवों के प्रवाह-जल से धीमे-धीमे डुबाना प्रारम्भ कर दिया था और मेरे चारों ओर इस समय रंजना के अनुभव का जल ही जल है। एक भयंकर प्रवाह है और इस प्रवाह का संचालन इस नारी की दो बांहें कर रही हैं। दोपहर का उठा हुआ ज्वार आधी रात होने तक भी भाटा बनेगा कि नहीं, मैं नहीं जानता परन्तु, शाश्वत मीनारों के शिखरों पर बैठा हुआ मेरा कायर मन आज निश्चय ही अपने प्रतिमानों के साथ डूब जायेगा और केवल रह जायेंगे, प्रलय की रात के काले अंधेरे के डैने, जो इस ज्वार को अपने लोहे के पंजों में सुबह होने पर चील की भाँति अवश्य ले जायेंगे। धरती फिर सूख जायेगी, प्रलय के फ़ौलादी पद-चिन्हों पर नये जीवन की हरियाली दूब उग आयेगी। पुराने प्रतिमानों की शाश्वतता, अपने 'अहम्' के पत्थरों को लिये हुए धरती के पेट में पुरातत्व बनने के लिए गहरे पाताल में समाती चली जायगी। जहाँ आज के पहले जाने कितनों ही के 'अहम्' अपनी व्यक्तिगत सीमाओं के मृत्यु-बीवर ओढ़े हुए शव बन चुके हैं। परन्तु नन्ही दूब और हरे अंकुर, प्रत्येक प्रलय संगे ऊपर की ही ओर फूटते हैं, नीचे नहीं घँसते—क्योंकि उस दूब को 'अहम्' ही क्या हो सकता है? 'अहम्' तो एक चट्टान है, जो स्वयं किसी को अपने में से जन्म नहीं देती है। जितना स्थान घेर लेती है वहाँ सृष्टि या जन्म सम्भव नहीं हुआ करता। चट्टानों की फ़सलें नहीं होतीं, गेहूँ की होती हैं। इसीलिए फ़सलों को जलाने के लिए चट्टान, किला बनाकर, अयोध्य महल बना, फ़सलों को कुचलने के लिए तोपें और मेनाएँ अपने गोपुरों में हमेशा तैयार रखती है। परन्तु जलबाह या तूफ़ान, भूकम्प या क्रांति से फ़सलें नहीं ढहा करतीं—किले और महल ढहते हैं और मैं स्वयं ढहता जा रहा हूँ—इस सामने विराजे प्रलय मम्मूखे। इसके ज्वार का कृष्ण जल, अपनी हुंकारें भरता हुआ लहरें मार रहा है जो कि स्वयं में कितना शांत है, किन्तु मेरे चारों ओर हाहाकार करती हुई कीड़े-मकोड़ों की सृष्टि वह निर्मित कर चुका है !!

मैं चिल्लाकर उसे बंद कर देना चाहता हूँ कि रंजना मुझे नहीं सुनना यह सब, जिसे सुनकर मेरे जीवन में यह हमेशा शाप की भाँति मेरा पीछा करे। किन्तु मैं जानता हूँ कि मैं कायर हूँ। मेरी कायरता ठीक उसी तरह की है जैसे भजनियों और कीर्तनियों की भीड़ में खड़े प्रत्येक व्यक्ति के मन में यह कायरता होती है, कि आज की इस प्रार्थना से उसे यह 'लाभ' देवता से मिलना ही चाहिये और कोई उसके मन का चोर न समझ ले इसलिए वह आँखें बंद कर जोर-जोर से 'रघुपति राघव राजाराम' चिल्लाता है। देखने और सुननेवाले समझते हैं कि चैतन्य महाप्रभु के बारे में सुना ही सुना था कि कीर्तन करते हुए तन्मय होकर नाचने लगते थे, किन्तु देखने को तो आज ही मिला। प्रत्येक कीर्तनिया दूसरे को चैतन्य समझता है, जब कि न कोई चैतन्य है और न मीरा ही। यदि कीर्तन से ही फ़सलें और बच्चे हो जाते तो भारतवर्ष में सबसे अधिक अनाज होता और कीर्तन करती

हुई प्रत्येक हिन्दू बाँझ और विधवा को अपनी गोद में वर्ष में जाने कितनी बार बच्चों का पालन करना पड़ता। पुजारियों की कृपा से फसलों की तो नहीं पर बच्चों की बातें सुनी हैं— लेकिन वह बात विषयान्तर होगी।”

परन्तु मैं जाने क्यों यह आज तक नहीं समझ सका हूँ कि मुझे बे-मिरपैर की बातें सोच जाने का रोग क्यों है। वनियानों के डिजाइन्स् देखने हुए मुझे हमेशा समुद्र में नहाते हुए स्विमिंग भूषावाले भद्रलोक एवं महिलाएँ स्मरण हो आती हैं, जिनके बाल समुद्री हवा वैसे उड़ाती होतीं जैसे नारियल के लम्बे-लम्बे पत्ते। इसीलिए अपना काम मैं कभी भी आफ्रिम समय में पूरा नहीं कर पाता हूँ और देर तक नित रुकना पड़ता है। पत्नी शाम को घर देर से पहुँचने के कारण हमेशा मुझ पर शक करती है कि मुझे अपनी उस इमाई स्टेनो से आफ्रिम समय के बाद रुककर काम करने के बहाने, प्रेम की बातें करने का रोग है। सत्य और संशय, एक ही वस्तु की दो विभिन्न गतियाँ हैं।

खिड़की के तारों से बाहर एवेन्यू की चमकती हुई लाइटों की कतार दूर तक साफ़ दिखायी दे रही है। अहाने की सीमा पर लगी हुई मेंहदी एकसीध में सुबह ही काटी गयी थी इसलिये स्मार्ट तरीके पर लम्बी हरी चली गयी है। दिन में भीग गयी थी और इस समय भी सड़क की लाइटें उनकी पत्तियों उपर पड़ी बूंदों पर कहीं-कहीं चमक रही हैं। सामने के बंगले में रहनेवाले बंगीय परिवार में से थोड़ी देर पहले तक किसी का स्त्री-कंठ, तराना और आलाप द्रुत एवं विलम्बित लय में साधना कर रहा था। परन्तु इस समय लगता है पूरी की पूरी एवेन्यू शायद मोने की तैयारी कर रही है। किसी का वजता रेडियो सेट भी 'नमस्कार' करके चुप हो गया है। मिर्फ मोटर कंपनी वाले अहाने लिये खंजड़ी पर आदमियों के सहगान गाने का स्वर आ रहा है। ये इस मोटर कंपनी में काम करनेवाले कुछ मिस्त्री होंगे, कुछ मजदूर और रिक्शेवाले होंगे—जो इस समय शराब पीकर जोरों से फाग गा रहे हैं, या फिर होली गा रहे हैं। इनमें निश्चय ही आमपास के बंगलों में काम करनेवाले महाराज, नौकर और चपरासी भी होंगे जो या तो चुन्चाप या फिर आज भर की छुट्टी लेकर और जल्दी खाना बनाकर तथा साहबों का सारा काम करके इस समय उत्सवप्रिय हो रहे हैं। एवेन्यू की निर्जन सड़क दिन में पानी बरसने के कारण कुछ गीली हो गयी थी, और जो इस समय भी गीली है, जिस पर कोई खाली ताँगा किसी सवारी को छोड़कर वापस लोट रहा है। ताँगेवाले की बीड़ी का गुल, मेंहदियों के बीच-बीच से दिखायी पड़ रहा है। वह ताँगेवाला आराम से ताँगे के पिछले भाग में बैठकर घोड़े की रास ढीली किये इस शांत एवेन्यू को ज़रूर ही इसी तरह पार करेगा। बंगलों के कुत्ते आने-जानेवाले किसी अपरिचित पर अपनी भयानक डरावनी आवाजों में रह-रहकर भूंकने लगते हैं।

रंजना एकाएक उठी है और सामने की आलमारी का एक पल्ला खोलकर कुछ कागज़ टटोल रही है। मैं समझता हूँ कि निश्चय ही उसे कोई आवश्यक पत्र या कागज़ याद

आ गया होगा, जिसे वह विचारों के तूफान में भी महत्वपूर्ण मानती है। अब वह पल्ले बन्द कर अपने हाथों में कोई चित्र लेकर लौटी।—अपनी आरामकुर्सी पर बैठते हुए मेरी ओर देखते हुए कह रही है—

“जानते हो अकलंक ! तुम्हारे सामने बैठी हुई यह रंजना नाम की स्त्री कभी कितनी सुन्दर रही थी ? जिसे स्वयं को उस दिन बम्बई के इंडियन मिलिट्री अस्पताल में अचानक मोह हो आया था।”—

मैं जानता तो नहीं हूँ, पर अनुमान कर सकता हूँ कि वह सुन्दरतम भी रही होगी और यह मेरा दुर्भाग्य है कि इस अनुमान का प्रमाण नहीं दे सकता किन्तु केवल विश्वास प्रकट कर सकता हूँ और यह विश्वास निराधार नहीं होगा इस बात का भी मुझे पूर्ण विश्वास है,

“कोई भी तुम्हें उस समय देखता तो.....”

और जैमी की उमकी वृत्ति है, वह बात काटकर बोल रही है—

“फिर लगे मेरी मिठबोली करने”—

और उमने हँसते हुए अपना चित्र सामने रख दिया। आज की इस रंजना में और चित्रवाली रंजना में इस सीमा तक अंतर हो सकता है इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। आज की यह रंजना तो उम सौंदर्य की मात्र छाया है, और जब छाया इतनी सुन्दर है तो फिर.....।

और मैं, चित्र में मुस्कराने वाली रंजना में विलीन होता जा रहा हूँ। चित्र देखकर कह सकता हूँ कि यह रंजना का कम से कम दस वर्ष पुरानी छवि है जो कि स्वयं, प्रथम कुँआरी रंजना की छाया थी। रंजना के छवितिये नयन, कितने विशाल और वारीक पलकों के बीच ओस धुले इंद्रफूल की भाँति लग रहे हैं। तब कदाचित्त वाल और अधिक धुँधराले काले रहे थे। कहीं से भी कोई रेखा मुख की गोलाई को विकृत नहीं करती। संगमरमर की तरह गाल कैसे उजले चिकनी गोलाई और ऊँचाई लिये हुए पतले-पतले ओठों में परिणत हो गये हैं, दोनों वारीक काली भाँहें—बिलकुल नाइटिंगेल के पतले तथा छोटे-छोटे डैने हों, जो कि इस रमणी को रूप की झील पारे उड़ाये लिये जा रहे हैं, और यह रूप इन दोनों डैनों पर उमड़ता हुआ समस्त आकाश के नील विस्तार को छा लेगा।

“क्या देख रहे हो ऐमे घूरकर उममें ?”

और मैं देख रहा हूँ कि आँखें बंद किये हुए रंजना ने यह वाक्य अपने अंदर के संतोष को अनुभव करते हुए कहा है। क्योंकि वह जानती है कि कोई भी इस छवि को देखेगा तो वह बिना अभिभूत हुए नहीं रह सकता। मैं नारसिसस के बारे में नहीं जानता किन्तु रंजना के बारे में जानता हूँ। यदि उस मिलिट्री अस्पताल में रंजना दर्पण देखते हुए अपने आप से ही प्रेम कर बैठी थी तो कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

आज की इस रंजना की आँखों के चारों ओर जो कालिमा का घेरा बन गया है वह मुझे अच्छा नहीं लग रहा है क्योंकि इस घेरे में हीन मैंने इसके हरिण नयन बहुत सुन्दर देखे हैं। यह ठीक है, कि इस समय की आँखें ठीक बैनी लग रही हैं जैसे झील के किनारे-किनारे चारों ओर घने हरे वृक्ष की झाड़ियाँ उग आयी हों—कदाचित् सौंदर्य बढ़ ही गया हो, किन्तु चित्र की रंजना का तब क्या हो??—और बेनील हरिण-नयन ! !

‘और मैं पागल हो उठा हूँ—

मैं कह देना चाहता हूँ, और मैं कह रहा हूँ—

“रंजना ! मैं तुमसे प्रेम करता हूँ ।”—

रंजना अपनी दोनों बाँहें आरामकुर्मी की पीठ पर डाले हुए है। उसकी बाँहों की गोराहट ऊपर बहनी हुई लग रही है, जिनमें से बहुत हल्की नसे दिखायी दे रही है, वे नसे जिन्होंने आज तक वह रक्त अपने में दोड़ाया है जिसने रंजना को सुन्दर बना रखा है। उसका वह हाथीदाँत की तरह चिकना गोरा शरीर इस गाउन में बंद है। जिस शरीर की लालसा इस समय मेरे मन में जाग उठी है और जिसके न मिलने पर मैं पागल भी हो सकता हूँ, वह इस गाउन में बंद है।

“पागल न बनो अकलंक ! यदि तुम्हें यह शरीर दे देना मेरे हाथ में होता तो क्या उस साँझ, माल रोड पर जब तुमने मुझे गुलमोहर के फूल दिये थे तब न दे डालती ? तब तो सब कुछ सम्भव भी था। यदि एक क्षण का भी अपने इस नारी शरीर को दे पाती, मेरे शरीर का कोई सा भी अंग तुम्हें छू पाता तो मैं कृतार्थ हो जाती अकलंक ! मुझे जीवन भर यही तो खटकना कि जिन्हें मैंने अपने को देना चाहा मेरा वह ‘देना’ किसी दूसरे के भाग का रहा। मैं अपने मनोभावों को रूपा और माध्यम कब दे सकी ? क्योंकि नारी के पास उसका शरीर ही उसके सारे भावों की अभिव्यक्ति है। किन्तु हटाओ अकलंक ! आज तो मुझे अपने इस तन से ही घृणा हो रही है और तुम्हीं वताओ जिस वस्तु से मैं घृणा करूँगी उसे क्या तुम्हें और कर्नल टॉमस तथा डॉन निकोलस को दे सकूँगी ? आज यद्यपि देने को कुछ भी नहीं है मेरे पास, किन्तु जब कुछ माँगना ही चाहने हो अकलंक ! तो जूठन तो न माँगों, क्योंकि उसमें मुझे लगेगा कि जूठन के सिवाय मेरे पास और कुछ भी नहीं है ।”

रंजना ने एक क्षण को अपनी आँखें खोल ली हैं और मेरे हाथ में चित्र लेकर वह फिर उसे रखने के लिए आलमारी तक गयी और अब फिर वापस आकर कुर्मी पर बैठ गयी है।

“अकलंक ! यदि तुम्हें कोई आपत्ति एवं थकन न हो तो आगे शुरू करूँ ?”

“नहीं रंजना ! थका नहीं हूँ, परन्तु मेरी सिगरेट जला दो ।”

उसने अपनी लाल हथेलियों में पीली हल्दी की गाँठ की तरह जलती हुई दियासलाई कितने सुन्दर ढंग से मेरी सिगरेट की ओर बढ़ायी है। मुझे लग रहा है कि मैं

रंजना से कुछ और यदि नहीं पा सकता, तो सिगरेट जलवाने का यह सुख ही इतना मुन्दर और मीठा होगा कि मैं जीवनभर इतना पाकर ही संतुष्ट रह सकूँगा। परन्तु हमारा संतोष, प्रत्येक चरण पर 'बस यहाँ तक' करता हुआ ही हमें मृग की भाँति मरीचिका में भटकाता है। और हम हैं कि जलते पैर लिये—लू और गर्मी में पसीने से लथपथ दौड़ते फिरते हैं। यह 'बस यहाँ तक' न कहीं समाप्त ही होता है और न हम संतोष ही कर पाते हैं। यह तो एक निश्चित क्रम है, जो उतार का क्रम है; जो हर आगे जानेवाले पैर के साथ, पोछे वाले पैर को उससे भी अधिक आगे जाने के लिए ढकेलता है, परन्तु हम इसे समझ नहीं पाते। काँई से भरी किसी घाटी पर पहला चरण बढ़ाकर देख लीजिए—और आप निरन्तर बढ़ते हैं। पर यह बढ़ना, उस सामनेवाले गड्ढे की ओर है जहाँ सब जाकर समाप्त होने को है—समतल की ओर नहीं कि जहाँ से सब नव प्रारंभ होता है।

“जब मेरी ट्रक वेकाई सैन्टर पहुँची लगभग ग्यारह बज चुका था और हमारी इन्चार्ज आफिस में बैठी हुई मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। रास्ते सब कच्चे बने हुए थे इसलिए धूल ही धूल चारों ओर से उड़ उड़कर बाल, मुँह, कपड़ों पर छा गयी थी। उस समय गुस्सा आ जाता था जब सामान से लदे ईंट के, चूने के, शीशों के, ट्रक,—मार धूल ही धूल उड़ते हुए चारों ओर से बहुत ही तेजी से निकल जाते थे। रास्ते भर अपनी नाक से एक क्षण को भी अपना रूमाल हटाने का मैं साहस न कर सकी थी। जिस समय इन्चार्ज से मैंने हाथ मिलाया, उस समय रूमाल की गंदगी देखकर मुझे कितनी ज़ेप आ गयी थी, जिसे इन्चार्ज ने भी भाँपकर कहा था कि, मट्ट की तरह यह जगह स्वच्छ नहीं है अभी, परन्तु बहुत शीघ्र ही सब कुछ ठीक हो जायेगा।

मैं वहाँ से फिर ट्रक पर चढ़ अपने हॉस्टल पहुँची। सामान पूरी तरह ठीक किये बिना ही, किसी प्रकार बिस्तार बिछाया और नहाने के बाद मुझे बहुत ही गहरी नींद आ गयी। अपनी खिड़की खोले साँझ के चार बजे तक सोती रही।

जब मैं धुले हुए कपड़े पहनकर निकलने को हुई, सन्ध्याधूप समाप्त होने को थी क्योंकि सामने वह लम्बी सी पहाड़ी दिखायी दे रही थी जिसकी दूसरी तरफ भूगोल शहर है और सूर्य उम भूगोल की साँझ के आकाश में अपनी अंतिम किरणें डाल रहा होगा। उस पहाड़ी की तलहटी में से कोई मालगाड़ी भूगोल की तरफ से आ रही थी जिसका इंजिन बहुत सारा धूँआँ फेंकता हुआ चला आ रहा था। मैं इस समय अस्पताल जा रही थी, मुझे इन्चार्ज ने बतलाया था कि पाँच बजे जाकर मैं बड़े सर्जन को अपने पहुँचने की सूचना दे आऊँ और आज भर के लिए मेरा इतना ही काज था। अस्पताल वहाँ से दो मील से भी अधिक दूर था और इस दो मील के बीच में कोई, किसी किस्म की बस्ती नहीं बसायी जा रही थी बल्कि मैंने देखा कि तारों के घेरे एक के बाद एक घेरकर लगाये गये थे, जो आठ फिट से कम ऊँचे नहीं थे। प्रत्येक घेरे पर संतरियों का पहरा मिलता था जो आनेजानेवाली प्रत्येक ट्रक सवारी की बहुत ही सतर्कता से जाँच करता था

और जब संतरी 'ऑल राइट' कह देता था तभी मोटा-मोटा कांटोंवाला लोहे का दुआर खुलता था और इस तरह सात दुआर पार करने पड़ने थे। मैं समझ गयी थी कि यह युद्ध में पकड़े बंदियों का अस्पताल है इसलिए इतनी जाँच-पड़ताल होती है। इसमें अशिष्टता, पूछताछ जैसी कोई चीज ही नहीं थी। जब हर बार संतरी जाँच के लिए अपना हाथ बड़ी ही निर्ममता से शरीर पर फेरता था तब मेरे गाल कुछ क्षण को लाज तथा क्रोध में लाल हो जाने थे, परन्तु मैं जानती थी कि यह सैनिक नियम है और मैं जड़वत् खड़ी रहती थी। मुझे नर्स की भूपा में न देखकर कई बार उन्हें समझाने की जरूरत हुई कि आज ही मैं नयी आई हूँ और इस समय मात्र रिपोर्ट करने जा रही हूँ। जब वे मेरा चित्र तथा मिलिट्री पाम टीक-टीक देख चुकते थे, तब कहीं टूक आगे बढ़ पाती थी। जिस समय मैं अस्पताल पहुँची, छह मे ऊपर हो गया था और चारों ओर का पहरा, मैं देख रही थी कि अत्यधिक कड़ा कर दिया गया था।

बीच के ऑपरेशन थिएटर के चारों ओर कांटों से घिरी हुई बैरकें थी, जिनके सामने उनके वार्डम के नम्बर टँगे हुए थे। अंधेरा हो गया था इसलिए वार्डमवाली अंक-पट्टियों पर लाल बत्तियाँ जल रही थीं। काफ़ी घना कुहरा हो गया था। मैं देख नहीं पायी कि ये वार्डम की कतारे कितनी लम्बी और कितने घेरे में बनी हुई हैं। पर मिलिट्री पुलिस की हर तीस सेकेंड के बाद चमक उठनेवाली मीली लम्बी बहुत तेज टाचें बहुत दूर तक गोलाई में घूमती हुई एक दूसरे के प्रकाश को काटती हुई दिखायी पड़ रही थी।

मुझे मूढ़ स्मरण आया, वहाँ के जीवन में कितना ख़ुलापन था परन्तु यहाँ तो दम घोट देने वाली मिलिट्री पुलिस का पहरा था—उनकी बंदूकें और कांटोंवाले तारों के घेरे ही घेरे !!

जब मैं सर्जन के सामने पहुँची वह उर्मी समय कोई ऑपरेशन करके लौटा था, क्योंकि मुझे उसकी प्रतीक्षा में दस मिनट के लगभग बाहर तिपाई पर बैठना पड़ा था। तभी मुझे फुफ़फुम करने हुए उस बड़बड़े ईमार्ड चपरामी ने बताया था कि प्रमुख सर्जन, मेजर जांस्टीन मन्ध्या के पाँच बजे से मेरा रास्ता देख रहे थे। मेजर जांस्टीन को बिल्कुल भी जोर से बोलना अप्रिय है—व्यक्ति अच्छा है, और अंग्रेज नहीं डच है।

तोलिये से अपने हाथ पोछते ही उन्होंने मेरी ओर देखा और मेरा अभिवादन किया। अपनी चाय समाप्त करते हुए उमने मुझे विहान लह बजे आ जाने के लिए कहा, क्योंकि एक मेजर ऑपरेशन कल जल्दी करना है और मेरी आफिशियल रिपोर्ट में यह बताया गया है कि मैं बहुत ही कुशल हूँ अपने काज में।

मेजर जांस्टीन की आवाज़ में बहुत ही विनम्रता मुझे लगी। उसकी छह फुट से ज्यादा ऊँचाई ने मुझ पर काफ़ी प्रभाव डाला। विशेषकर उसकी वे तेज़ हरी आँखें और उस पर चाँदी की सफ़ेद फ्रेमवाला चश्मा और उसकी वह फ्रेंचकट दाढ़ी। बाल बहुत कुछ पीछे

तक उड़े से, परन्तु उस उड़ने से कदाचित् वह अत्यधिक सुन्दर हो गया था। लाल तो वह इतना था अकलंक ! कि मैंने भारत तो क्या होलैंड, फ्रांस कहीं भी ऐसा लाल व्यक्ति नहीं देखा। आयु उसकी पैतालीम से कम की विलकुल नहीं थी और मुझे लगा कि इन भयानक लाल वस्त्रों और युद्ध बंदियों—जो कि इन कटीले तारों से घिरे हुए हैं—को बीच एक व्यक्ति ऐसा मिला तो, जो कि मनुष्य कहा जा सकता है वरना ये बंदियाँ और बन्दूकें पहले हैं, बाद में भी आदमी है कि नहीं, इसमें भी शंका हो सकती है।

मैं जिस समय बाहर निकली मेजर जांस्टीन अपनी गाड़ी में बैठकर जा चुका था और उसकी गाड़ी की पिछली लाल बत्ती उस पहले दुआर के पास दिखायी दे रही थी, कदाचित् 'वड़ दुआर' खुलने का रास्ता देख रही थी। इन तारों के घेरों के चारों ओर पुलिस की मोटरसाइकिलें चक्करों में घूमनी हुई पहरा दे रही थी। मनुष्य को मार-मार कर जिलाया जाये इसके लिए चारों ओर मंगीनें दौड़ायी जा रही थीं। इन तारों के भीतर न जाने कितने मानुष भय का जीवन जी रहे होंगे। पता नहीं सब कैदी कहाँ बंद हैं, क्योंकि यह तो अस्पताल है; यहाँ जो बीमार होते हैं उन्हें ही लाया जाता है। शेष इस कुहरे के अंधकार में जाने कितने काँटों से घिरे पड़े हुए इसी ऊपर के आकाश के तारों को देख रहे होंगे। यह कृष्णकाश और तारों को मैं देख रही हूँ, जाने कितने गाँववाले अपने मकानों के सामने अलाव तापने हुए ठिठुरे आकाश और तारे देख रहे होंगे—होई गीत खंजड़ी के संग गाया जा रहा होगा—किन्तु सबकी परिस्थितियों में कितना वैषम्य, कितनी विपरीत अनुपुत्रता है !!

अस्पताल की लॉरी पर चढ़कर जब मैं हॉस्टल पहुँची तब जाड़े के आठ वज गये थे ऐसा लग रहा था मानो आधी रात हो गयी है। मैं इस समय नये वातावरण में बहुत ही घबरा उठी थी, क्योंकि मूढ़ मेरे सामने मिलिट्री का अभी तक वही रूप सामने आया था कि जीवन—मिलिट्री के लाल-लाल फूल, रिबन और डोरियाँ लगाये हुए उमदा पालिश किये हुए बूट पहने, हाथ में चमकती बैनटवाली बंदूकें ताने कितने मुपुमित ढंग पर उन परेड ग्राउंड्स के हरे लाँनों पर कवायद करता है और आर्डर मिलने पर गोली चलाकर निश्चित हो जाता है। जैसे उसमें कोई संबंध नहीं। गोली चल जाने पर उत्तरदायित्व जैसे मिर्ग दो ही का होता है—एक तो, गोली खानेवाले का और दूसरे, आज्ञा देने वाले का। फिर मोर्चे में लोटकर बंदियाँ पहन जीवन—पाकों में, रेस्तराओं में, बरबों में, थिएटरों में बैठकर या तो मूंगफली खाता रहता है या फिर शराब की लाल लहरों की अमीम गहराइयों में खो जाता है, या फिर इमाई और एंग्लो-इंडियन लड़कियों के रेशमी अंगों की छाँटों में। परन्तु यहाँ उसी जीवन को तारों से घेरकर मोटे-मोटे ताले डाल दिये गये हैं। मारी मानवता से काटकर ज़िन्दगी अलग कर दी गयी है। पहरा देनेवालों के साथ उन बंदियों की क्या शत्रुता हो सकती है ? जो हर समय या तो अपनी बंदूकें ताने या पिस्तौलों बांधे हिंस्र भेड़िये बने घूम रहे हैं। यहाँ यह जो

मिलिट्री है, इन कैदियों की यह देखभाल करने के लिए है कि यह बंद मानवता, प्रलय की भाँति, जलजल के मानिन्द और भूकम्प की तरह न उठ खड़ी हो। इन तारों के घेरों को तोड़ती हुई बंद जिन्दगी, शेष उन्मुक्त मानवता के साथ यदि मिल जाने का प्रयास और विद्रोह करे, तो ये लोग गोलियों की बाड़ लगाकर इस उन्मुक्तता के प्रलय को वहीं रोककर गोलियों में भून दें।

मैं इस तरह नित सोचा करती। एक दिन अस्पताल में पैदल यही सब सोचते हुए जाने कहाँ तक चली जा रही थी कि सामने में आती हुई मिलिट्री पुलिस की गारद के मार्च करने हुए मोटे बूटों की आवाज ने चीका दिया और एकदम 'हॉल्ट' की आज्ञा सुनायी दी। गार्ड कमाण्डर ने आगे बढ़कर मेरे मुँह पर टार्च डालते हुए कड़कती हुई वाणी में पूछा, 'व्हेयर इज पास?' और मेरा हाथ बिजली की भाँति अपने ओवरकोट की जेब में रक्खे पाम और आइडेंटिटी कार्ड पर गया। गार्ड कमाण्डर संतुष्ट हो गया। परन्तु इस तरह घूमने की मुझे सख्त मनाही कर दी, और आगे कोई नहीं जा सकता कहकर उसने मुझे लौटने के लिए बाध्य किया। मैं वापस होते हुए समझ गयी थी कि मुझे मूढ़ की जिन्दगी जो कि क्रिममस के रंगीन गुब्बारों की तरह रंगमयी और हवा में उड़ जाने वाली है, भूलनी होगी। क्योंकि, यहाँ जो ये रास्ते हैं उन पर भी प्रत्येक व्यक्ति हमेशा और सब कहीं नहीं जा सकता है। सब बातों के लिए अलग-अलग 'पाम' होता है। मेरे पास इतना ही 'पास' है कि मैं इनकी गोलियों के बीच में एक सीमा तक ही घूम सकती हूँ और उस सीमा की परिधि में कोई गोली मेरे सीने के पार नहीं जायेगी।

हॉस्टल पहुँचकर मैंने दीवाल पर कैलेंडर टाँगा और देखा कि क्रिममस में तीन दिन और शेष हैं। वे दिन स्मरण आये जब दशहरे या दीवाली या फिर पंजाब के गाँव में थी तब बैसाखी का पथ भी कितने उत्साह से जोहा करनी थी। ईद के वारे में यही याद आया करता था कि सैयद के साथ खूब गोश्त और मीठी सिवइयाँ थीं, बाकी अहमद के साथ तो बम्बई में ईद, मार खाते गुजरती थी।

टेबल पर अपने बाँक्स से निकालकर आज पहली बार कर्नल टॉमस का चित्र पोंछ करके सजा दिया और एक क्षण को उसका वह गोरा भूरे वालों भरा हाथ स्मरण आया, जिस पर मैंने तीन चुम्बन, सलमे सितारे की तरह टाँक दिये थे और वह उस क्षण के बाद से दूर, बहुत दूर चला गया। मैंने उठकर तौलिये से हाथ-मुँह पोंछकर पोथी पढ़नी प्रारंभ की और पढ़ते पढ़ते ही कम्बल में लिपटी सो गयी। कदाचित लाइट, रात भर जलती रही थी।

फिर तो नित अस्पताल की लॉरी आती थी और बिना किसी भूलचूक के, बिना किसी को क्षम्य किये संतरियों के हाथ रोज़ सुबह शाम शरीर पर फिरते थे और 'ऑल राइट' सुनने की प्रतीक्षा में खड़ी रहती थी। अस्पताल की बँधी हुई ड्यूटी और बँधा हुआ काज। प्रारंभ में जब वृत्ति नहीं थी तब दवाइयों की तेज़ गंध, घावों का

पीला पीलापन, और घंटों ऑपरेशन रूम में खड़े खड़े 'फार्क' 'नाइफ' 'आईन्ट' वगैरह सुनना पड़ता था और मरीजों की आँतें, लाल गोश्त, चरबी से भरी हुई चमड़ियाँ, सड़े हुए पैर जिनमें कीड़े रेंगते हुए, और भी जाने क्या क्या अकलंक ! खाना खाती बेला याद आने लगते थे, और तब शुरू में खाने पर से उठ भी जाती थी। मही में यह सब कभी कभी ही देखने को मिलता था, परन्तु यहाँ आने पर तो सिवाय इसके और कुछ होता ही नहीं था। जहाँ मैं काम करती थी यह बहुत ही सीरियस केम के लिए, साथ ही कैदियों में जो अफसर हुआ करते थे उनके लिये अस्पताल था; अधिकतर लोगों की टाँगें और हाथ काटे जाते थे। क्योंकि युद्ध की गोलियों के कारण इनके पैर छलनी हुए रहते थे। अकलंक ! कह नहीं सकती थी जब उन इटालियन बंदियों की टाँगें या हाथ काटकर अलग कर दिये जाते थे तब वे कितने घृणित लगते थे। वालों भरा पैर और खून से लथपथ जिसमें कई जगह पीरु, हरे लाल घाव, जिनमें पीली पीली पीप ही पीप पड़ गयी हो, एकदम कटकर अलग होने पर भयंकर बदमूरत लगने है, अकलंक ! तुम नहीं जानते। ओर जानने हो ? लारियाँ ये कटी टाँगें, हाथ, वगैरह तरकारियों डंठलों की तरह लादकर ले जाया करती थीं। मेरे शरीर में जाने कितनी काँकड़ी भर जाया करती थी और जब मेजर जांस्टीन साबुन में हाथ धोते हुए पूछा करता था—'ड्यू माइन्ड ऑल देट ?'—कह हँस दिया करता था तब उसका ऊार का ओठ बहुत देर तक फड़का करता था।

“शाम को जब मेजर जांस्टीन के साथ राउन्ड पर जाया करती थी तब हम लोगों के साथ प्रत्येक स्पेशल वार्ड का एक-एक मंत्री अपनी बटूक ताने आगे-आगे चलता था और इतने जोरों से 'ऑर्डर ऑप्स' करता था कि कितने ही गहरे सोये हुए व्यक्ति की भी नींद टूट सकती थी। मैं मेजर जांस्टीन को हाथ में रिपोर्ट देकर तापमान और दवाइयों के बारे में सब बतलाया करती थी। वह मुस्कराता हुआ मेरी ओर 'स्मार्ट' कहकर रोगी को घूरने हुए बाहर निकल आता था और पहरा देनेवाला मंत्री बंद करनेवाले गार्ड से पूछ लेता था

'लॉक ओ के ?'—

“लॉक ओ के' कहकर गार्ड पहरा देनेवाले मंत्री को ताली देकर आगे बढ़ जाता। हर पंद्रह मिनट पर मंत्रियों को रात में टाच की रोशनी में जाँच करनी पड़ती थी कि द्वारों के ताले और उन तालों के भीतर के बंदी सब ठीक है।

“जब कभी रात के दो बजे या आधी रात में किसी आवश्यक काज से इन कैदियों के पास जाना पड़ता था तो प्रारम्भ में हमेशा कठेजा धक्-धक् किया करता था अकलंक ! उनकी बड़ी हुई दाढ़ियाँ उनके चेहरों को कितना विद्रूप किये रहती थीं। उनकी आँखों में कितनी गहरी निराशा और जीवन के प्रति नैराश्य टपका करता था। मुझे लगता था कि उनकी आँखों में वे कटीले तारों के घेरे, गोल-गोल छाँहों में हमेशा हमेशा के लिए उनमें बिध गये हैं, बस गये हैं। ओर वे आँखें, हमेशा के लिए अंधी हो गयी हैं।

उनमें ज्योति नहीं रह गयी है, बल्कि वे आँखें अब पत्थर की हो गयी हैं; जैसी की पत्थर की आँखें हुआ करती हैं।

एक रात—

“मैं नाइट ड्यूटी पर थी और उसी दिन साँझ को एक इटालियन सार्जेंट की दोनों टाँगें काट डालनी पड़ी थीं। वह इतना चीखा चिल्लाया था कि वस!! अकलंक! मैं देख रही हूँ कि व्यक्ति की स्वतंत्रता बंधने-बंधते किस सीमा तक बंध जाती है इसका उदाहरण मैंने उस रात ऑपरेशन टेबल पर देखा। वह अपने पैरों में जस्ते की गोलिएँ लिए हुए मर जाना स्वीकार सकता था, परन्तु वह टाँगहीन होकर जीना और वह भी बंदी का जीवन कभी स्वीकार नहीं सकता था। उसके कमरे के सामने बहुत कड़ा पहरा कर दिया गया था और मुझे हर दो-दो घंटे के बाद रिपोर्ट और दवाई के लिए जाना पड़ता था। मैं जिस समय उसके कमरे में जाती वह मुझे भूखे भेड़िये की तरह देखने लगता था। वह इंग्लिश भी ठीक नहीं जानता था, उसे मात्र कामचलाऊ कुछ शब्द आते थे। उसकी वे आँखें आज भी मुझे स्मरण पड़ती हैं कि जैसे मेरे जीवन के आकाश में दो जलते हुए नक्षत्र बोल रहे हों, जैसे कि वह उस रात बोल रहा था—

‘मिस्टर! मुझे छोड़ दो, मुझे यहाँ से भाग जाने दो, मैं अपनी इटली जाऊँगा —’

“और वह कितनी पीड़ा के साथ अपनी कटी हुई टाँगें देखता था। आँखों में कैसा चमकता हुआ पानी भर आता था। उसकी बड़ी हुई भूरी दाढ़ी से यह स्पष्ट लगता था कि वह अभी तीस वर्ष का भी नहीं होगा। अपने उज्ज्वल भविष्य के संबंध में उसने बहुत कुछ सोच रखा होगा। क्या मालूम वह इटली का सबसे बड़ा चित्रकार बनना चाहता होगा। क्या मालूम उसकी प्रेमिका प्रतीक्षा में बैठी होगी। वह अपने देश का प्रिय कवि भी हो सकता है। कदाचित् लगे किया हो। उसके फूल जैसी, मेरी रिनी जैसी सोनी बच्ची होगी। उसकी पत्नी को क्या मालूम होगा कि उसके पति की टाँगें काट डाली गयी हैं। वह शायद इटली का महान नर्तक बनना चाहता होगा—पर अब तो वह टाँगों से हीन है। इटली की राजनीति ने, फ़ाशिस्ती सरकार के जाल ने उसके कलात्मक हाथों में बंदूक थामने को बाध्य किया होगा, और उसे बिना इच्छा के ही ट्रक पर लादकर लड़ाई के मैदान में भेज दिया गया होगा। उसके बाद वह पकड़ लिया गया होगा। अब तो वह दोनों टाँगों से हीन होकर बंदूकों की छाँहों में लेटा हुआ जीवन भर इन्हीं तारों के घेरे में बस तोड़ देने के लिए सड़ रहा था।

मैं जिस समय उसके कमरे से बाहर आयी, चाँद की मंदिम सी ज्योति पीली होकर म्यूनिसिपल लैम्प की भाँति धीमे धीमे बुझ रही थी। धरती ऐसी लग रही थी जैसे पसर कर, लम्बी होकर आकाश के अंदर थककर सो रही हो। धुंधले आकाश में कुछ तारे क्षीण ज्योति में सो रहे थे। चारों ओर मिलिट्री पुलिस की साइकिलें गुराँती दौड़ रही थीं। हज़ारों दूर-दूर लगे हुए मंदें लाल कुमकुमे जल रहे थे कि एकाएक पीछे की तरफ़ जिधर मैं

कभी नहीं गयी थी और जहाँ आधे से अधिक बंदी थे—जो सभी जर्मन थे, वहाँ पुलिस की हज़ारों सीटियाँ चीख रही थीं। खोज-ज्योतियाँ (सर्चलाइटें) चारों ओर धरती के समानान्तर एक दूसरेको काटती हुई गोल घेरे बनाती हुई घूमने लगीं। मैं समझ गयी कि या तो कोई बंदी भागा है, या फिर जर्मनों ने विद्रोह किया होगा।

मुझे लगा कि जैसे बैरागड़ का यह कटा हुआ वनैला मैदान पूरा का पूरा जाग पड़ा है। संतरियों की 'ऑल राइट' की हुंकारें एक मिरे से दूसरे सिरे तक दोड़ने लगी थीं। ट्रकों और लारियों पर सैकड़ों की संख्या में मिलिट्री उधर ही दोड़ रही थी जिधर जर्मन बंदी बंद थे। छोटी-छोटी मशीनगनों भड़-भड़ करती हुई कच्चे-पक्के बने पथों पर दोड़ रही थीं। बड़ी सतर्कता के साथ बीमार कैदियों की वैसे एक-एक करके जाँची जा रही थी और संतरी आपस में धीरे-धीरे फुमफुसाकर बातें कर रहे थे—

“साले जर्मनों ने शैतानी की होगी, बड़े हरामी के बच्चे हैं।”—

“नहीं जी सालों को खिलाओ भी और इनकी शैतानी भी समझालो, एक बार भूतने का हुक्म हो जाये तो कीड़ों की तरह मार-मारकर भूत दिये जाये, क्या रक्खा है इनमें ?”—

और उधर का आकाश मशीनगनों तथा गोलियों की ज्योति से पीला होकर चिल्ला रहा है।

नाइट ड्यूटी करके भोर चार बजे के लगभग जब मैं हॉस्टल पहुँची तब तक भी मेरी धुकधुकी बंद नहीं हुई थी और मैं अपने लिहाफ में आधे मुँह कानों के पास बहुत मारा कम्बल लपेटकर चेष्टा करने लगी कि अब कोई गोली की आवाज़ न सुनायी दे, पर मेरी बंद आँखों के सामने से दोड़ रहे थे उस इटालियन मॉर्जेट के पे कटे हुए टूट जैमे वाकी के हिलते पैर, जिन पर सफ़ेद पट्टियाँ बँधी हुई टिचर की गंधवाली, और उसकी वह खूँखारामी दाढ़ी तथा भावहीन क्रोधी आँखें—और वह पीला जलता हुआ आकाश जो गोलियों की बोली में बोल रहा था—जाने कितने जर्मन भूत दिये गये होंगे, जाने कितनों का अब मारा जा रहा होगा, मार खाने हुए उनके नगे शरीर जिन पर कोड़ों के लाल-लाल चिन्ह, मारों की हरी पट्टियाँ !! क्या ये इतने भयानक हैं ? इन्हें मोह माया-ममता नहीं है ? क्या ये स्वयं लड़ना चाहते थे ? या इन्हें हिटलर और मुमोलिनी की इच्छाओं ने झोक दिया ?

और मैं शायद मुवह जब दूसरी लड़कियाँ ड्यूटी पर जाने की तैयारियाँ कर रही थीं—तब कहीं सो पायी थी। जब जागी तो धूप काफी आ चुकी थी, और अभी मैं नहा-धोकर अपने केश सँवार ही रही थी कि तब तक मेडन ने मुझे सूचना दी कि नीचे मेजर जांस्टीन मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्हें पहली बार अपने लिए इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए देखकर कुछ आश्चर्य किन्तु हल्का सुख भी हुआ।

मैं जब पहुँची तब वे बाहर के लॉन में खड़े अपने कुत्ते के साथ हॉस्टल के छोटे से लॉन के पास हरी घास पर घूम रहे थे। मुझे आता हुआ देखकर उनके चेहरे पर वैसी ही हँसी आ जाती थी जैसी कि किसी मिठाईवाले या गुब्बारेवाले को आता देखकर बच्चों के

मुखों पर आ जाती है। अकलंक ! यह उपमा मेरी नहीं है, मेजर जांस्टीन स्वयं कई बार मुझे यह उपमा सुना चुका था — उसने आज फिर वैसे ही गुलाब मेरे वालों में लगाना चाहा जैसे कि उसने क्रिमम की सन्ध्या को नये वर्ष के उपलक्ष में भेंट देते समय लगाया था।

उसका वह लाल गुलाब जिसके बारे में हँसकर वह कहा करता था—“रंजना ! मैं बटालियन हूँ, और तुम बटालियन आफ़िमर, और इसलिए गुलाब का फूल तुम्हें लगाना चाहिए।”—

मैं उसकी इस भाषा को न जानती थी सो तो नहीं था, पर वह — बहुत ही सीधा था, साथ ही क्रोधी भी बहुत ! क्रिमम की सन्ध्या को हम लोग भूयाल के सैनिक क्लब में जाकर रात भर नृत्य किये थे। अकलंक ! वह शराब अधिक तो नहीं पीता था परन्तु कम पीने पर भी बहुत ज्यादा पी गये का आभास हमेशा देता था। हम लोगों ने रास्ते में उस साँझ मिलनेवाले सब वच्चों को बहुत सारे गुब्बारे और चाकलेटे वांटी थी, तब हम लोग भोज के बाद मिनेमा भी गये थे। मिनेमा के बाद उसे फिर नृत्य का शोक हो आया था और इस तरह पूरी रात्रि को उसने उन्मत्त बना कर ही छोड़ा। उसकी मेज़ पर उस सन्ध्या को लिया गया मेरा चित्र, जो कि उसने स्वयं ही खींचा था, उसके बाद में सदा रखा रहता था। एक गुलाब नित उस चित्र के सामने भी मजा दिया करता था। वह बहुत हँसमुख व्यक्ति था पर बहुत दुखी था। अकलंक ! उसका पिता हॉलैंड के मारकेन टापू का रहनेवाला था जो कि लकड़ी के जूने तथा लकड़ी पर तरह-तरह के फूल, पतियाँ काढ़ने का काम करता था। जांस्टीन, अपने माँ-बाप की आठवीं मंतान था और इस आठवीं मंतान के पैदा करने में उसकी माँ की मृत्यु हो गयी थी। जांस्टीन के सब भाई-बहन आबारा थे और वे दिन भर पनीर बेचनेवाले बाज़ार में पनीर की चोरी किया करते थे। समुद्र की छोटी-छोटी मछलियाँ कच्ची ही पनीर में रखकर खाते फिरते थे। जांस्टीन, जब आठ वर्ष का हुआ तब तक उसका पिता भी मर चुका था और उसका बड़ा भाई पागलघर में बंद कर दिया गया था, तथा उसकी बड़ी बहन को उसके किसी प्रेमी ने छुरा मारकर समुद्र में फेंक दिया था। इस मारकेन टापू से भागकर वह आम्सटरडम् पहुँचा और बेकरीवालों के यहाँ रोटी सेंकने का काज करने लगा। वह रात्रिशालाओं में जाता और पढ़ता था। इस तरह उसने पढ़ा अकलंक ! तथा लीडन यूनीवर्सिटी से डाक्टरी पास की। कदाचित तभी उसने लग्न भी किया, और वच्चे हुए। ओवरलून नगर में उसने अपनी डिस्पेंसरी खोल रखी थी और उसका इरादा बर्लिन जाकर डाक्टरी में शोध कार्य करने का था। तब तक जर्मनी ने युद्ध छेड़ दिया था, जर्मन सेनाएँ हॉलैंड की सीमा पारकर उसके देश में घुस पड़ीं तथा नगरों को नष्ट करती हुई अंदर घँसने लगीं। पूरा दक्षिणी-पूर्वी हॉलैंड नाज़ियों ने अपने टैंकों और फ़ौजी बूटों से कुचलकर रख दिया। एक दिन वह अपनी डिस्पेंसरी से लौट रहा था। जर्मन विमानों का, सुबह के दो दस्ते के बाद यह तीसरा दस्ता था जो कि इस समय फिर

आक्रमण करने के लिए गुराँता हुआ आया था। वह हमले से बचने के लिए खाइयों की ओर दोड़ा और विमानों ने बम बरसाना शुरू किया। उस खाई से उसका घर ठीक दो सौ गज की दूरी पर था और वह हर बम गिरने के साथ बार-बार देखता था कि कहीं ऐसा न हो कि कोई बम उसकी बाड़ी पर भी गिरे और उसके फूलों जसे दो बच्चे और माम सी कोमल उसकी पत्नी ढहकर चूर हो जायें, समाप्त हो जायें। उसने देखा कि विमानों में बैठे हुए बमघाती इतने नीचे बैठे हुए बम गिरा रहे थे कि ओवरलून नगर का कोई भी घर वे खड़ा नहीं देखना चाहते थे। पूरे एक घंटे तक बम, ओलों की तरह गिरते रहे और सैकड़ों अट्टालिकाएँ ढह गयीं, उसी में उसकी पत्नी और दोनों बच्चे भी समाप्त हो गये।

इसके बाद मेजर जांस्टीन सैनिक सर्जन होकर मित्र-राष्ट्रों की सेना के साथ घूमता हुआ भारतवर्ष आया था। मैं जब बैरागढ़ पहुँची थी तो, उसे बैरागढ़ में आये हुए केवल आठ महीने हुए थे। अपने परिवार के नष्ट हो जाने के बाद में वह कुछ चिड़-चिड़ा और क्रोधी भी हो गया था। जब कोई जोर में ऊँचे बोलता था तो वह मुझसे हमेशा कहा करता था,

“रंजना ! लोग बमों के धमाके की तरह क्यों इतना ऊँचा बोलते हैं ?”

मैं देख रहा हूँ कि रंजना को एक-एक घटना कितनी स्पष्ट, पानी में धुली हुई पत्ती की बारीक से बारीक नमों की तरह साफ़ दिखायी देने लगती है। इस तरह रंजना अपने जीवन के सारे अनुभवों को चाहे तो घंटों में भी विभाजित करके कह सकती है। रंजना को हमेशा एक न एक व्यक्ति मिलता है जो या तो अपनी अच्छाइयों के कारण या अपनी बुराइयों के कारण इसके जीवन का एक अंश बनता चला जाता है और रंजना को इसमें कभी ही आक्रोश आया हो, अन्यथा अपने आप को परिवर्तनों के हाथों में ढीला छोड़ते चले जाना ही सुहाया है। —किन्तु ऐसा क्यों ?

क्या यह इसकी कमजोरी नहीं है ? पथ में मिलनेवाले प्रत्येक नुकीले पत्थर से न तो हम ठोकर ही खाते हैं और न प्रत्येक सुन्दर बँगले का रंग, डिजाइन तथा लॉन ही स्मरण रहता है। इन सब में दो एक ही हमारे स्मरण के आकाश में चमक कर रह जाते हैं, कुछ दो-एक ही हमारे पैरों को लहलुहान कर देनेवाले पत्थर भी मिलते हैं। किन्तु प्रत्येक वस्तु, यदि अपना प्रभाव अंकित करना प्रारम्भ कर दे, तो हमारे पास स्वयं अपना कहने को कुछ भी शेष न रह जाये।

उसने मेरी ओर अपनी बड़ी-बड़ी आँखें उठायी हैं—

“क्या, ग्यारह वज्र गये अकलंक !”

“हाँ, ओर क्या, रंजना ! तुम क्या समझती हो ?”

“यदि ग्यारह न समझती तो क्या ग्यारह कहती ?”

और रंजना ने मेरी ओर तरस की दृष्टि से हँस दिया है, जैसे अकलंक अभी तुम्हें

रंजना को समझने के लिए बहुत समय लगेगा। मुझे रंजना का ऐसा बोलना अपमान सा लगा है।

“अकलंक ! तुमने यह नहीं पूछा कि मैं विगत की घटनाओं में इतनी उलझी भी थी और मुझे वर्तमान के इस क्षण के समान जैसी छाटी वस्तु का भी स्मरण कैसे रहा ? अकलंक ! यही तो है जिसने रंजना को कभी भी न रुकने दिया और न ठहरने दिया। प्रत्येक क्षण मुझे विपरीत परिस्थितियों ने न तन्मय, न धायल कुछ भी तो नहीं होने दिया। परन्तु आज तक किसी भी क्षण को मैंने रोकने की चेष्टा भी नहीं की, क्योंकि रोका वह जाता नहीं, और, यदि यही होता तो मैं मैयद को खैवर के दर्रे में क्यों खाती ? मेरे चाहने पर भी तुम मेरी चाह की परिधि तोड़कर क्यों चले गये ? मैं जानती हूँ कि तुम कभी भी इस सच को समझ नहीं पाओगे और इसीलिए कही यह न सोच लेना कि मैं तुम्हें आज यह सब इसलिए सुना रही हूँ कि तुम सब सुनते चले जाओ और वितृष्णात्मक महानुभूति लेकर मेरा न्याय करो। अपना न्याय कराने के लिए मैंने तुम्हें आज रोका है, ऐसा कभी मन सोचना अकलंक ! रंजना आज जब किसी भी बात की अपेक्षा नहीं करती है तब वह तुम्हारा न्याय लेकर क्या करेगी ?”

किन्तु मैं कहता हूँ रंजना कि मैं न तो यह सब कहता ही हूँ और न सोचता ही हूँ।

मुझे इस नारी का, पहले तो अपना विगत कहकर नैकट्य प्रदर्शित करना और तारपोर अपने वर्तमान की दर्य मीनार पर खड़े होकर दूसरे का छोटा कहना चुभ रहा है। शायद वह कमजोरी कि, मैं इसे प्रेम करता हूँ; इसके चेतन मन पर अचेतन रूप से उभर आयी है। यह पूरी कथा सुनाकर अपने जीवनभर का प्रतिशोध लेना चाहती है एक व्यक्ति से, क्योंकि इसके निकट मैं पुरुष पहले है और सब कुछ बाद में। शायद इसीलिए यह मुझे अपने सौंदर्य के सहस्र कृतो में मोह रही है—और मोह की सीमा में आ जाने पर प्रतिशोध अधिक सहज होगा—का विश्वास इसके मन में सम्भव है, हो सकता है। क्योंकि इसके अंदर का व्यक्ति तो कभी का समाप्त हो चुका सा लगता है। इसके उस व्यक्ति के स्मशान पर ही, रंजना की सौंदर्य-प्रतिमा स्थापित हुई है जो केवल स्वयं ही विषमय नहीं, वरन् चुम्बनों से विष की मृष्टि भी कर सकती है। इसीलिए रंजना को चाहकर क्या प्रत्येक व्यक्ति को नहीं बुझ, मिट जाना पड़ा ? विष, अन्य की मृत्यु और स्वयं का जीवन है।

रंजना अन्य के लिए विष का चुम्बन, किन्तु स्वयं के लिए यौवन और रूप की मुस्कान !!

और मैं ग्लानि से भर उठा हूँ।

अब थोड़ी हल्की बयार चलने लगी है। वायरे में पानी की नमी और मेहदी की तेज गंध आ रही है। यूकेलिप्टस की पत्तियाँ हवा में बोल रही हैं। और साँझ से उदास अशोक तथा यूकेलिप्टस, लगता है, इस बेला एकदम प्रसन्न हो उठे और शायद अपनी पत्तियों की नमी सुखाने की जल्दी कर रहे हैं; परन्तु हवा पर पानी का दबाव स्पष्ट दिखलायी दे

रहा है। ऐसा लगता है कि वर्षा या तो पास में कहीं हो रही है या फिर थोड़ी देर में बादल नीचे उतर आयेंगे, और तब छतों, सड़कों, लाँनों, पाकों, को भिगोना प्रारंभ कर देंगे।

“अकलंक ! सोचते होगे कि मेरा व्यवहार विचित्र होता है। मैं इसे नहीं जानती हूँ यह नहीं, परन्तु मैं क्या कर सकती हूँ ? मैं जानती हूँ तुम सोच रहे होगे कि मैंने व्यर्थ ही तुम्हें सन्ध्या जाने से रोका। किन्तु यह व्यर्थ तो, यदि न मिलते तब हो सकता था, परन्तु जब मिल गये हम लोग, तब न सुनाकर निश्चय मैं तुम्हारे निकट अपराध ही करती। अपने निकट तो मैंने कई अपराध किये, किन्तु क्या कर्नल टॉमस, वान निकोलस और तुम्हारे निकट कोई अपराध कर सकूंगी ? कर्नल टॉमस के लिए भी पथ देखा, पर अब और ठहरना असम्भव है। वह निश्चय ही अब नहीं रहा है, और वह वान...गंधर्व...अब कहाँ ११ वैसे तो तुम भी नहीं रहे थे, किन्तु तुम आज अचानक पुरी के मित्र रूपे, समाप्त के पूर्ण विरामचिन्ह की भाँति जब बँगले तक आ ही गये थे तो तुम्हें क्या न न्योतती ? न्योत कर क्या यह सब न कहती ?”

मैं जानता हूँ कि रंजना को बात कहना भी आता है और बात को सम्हालना भी।

“तो सुनो अकलंक ! मुझे सब कुछ समाप्त कर लेने दो तब एकमात्र ही तुमसे क्षमा माँग लूंगी। इतने निकट के व्यक्ति से बार बार क्षमा माँगते हुए लाज जो आ जाती है। क्या कलूँ ऐसी लाज तुम नहीं जानते हम स्त्रियों के लिए बड़ी सहज है अकलंक !”

और तब वह अपनी उँगलियों में पहने हुए अँगूठी के लाल नग से खेलती हुई कह उठी है—

“मेजर जांस्टीन मुझसे अपने होलैंड के वारे में इस तरह सुनाया करता था जैसे मैं भी उसके ही देश की हूँ, कि किस प्रकार इस लड़ाई ने उसके देश के उत्रेच्छ नगर के चर्चों को बमों से नष्ट कर दिया। वह बहुत ही धार्मिक और कैथोलिक चर्च को माननेवाला व्यक्ति था। उसने वरसों तक कई चर्चों में ‘विशप’ का भी काज किया था। जब वह बच्चा था तब उसे ‘क्वाँयर बाँय’ बनकर प्रार्थना गाना अच्छा लगता था, किन्तु वह इतना गंदा था कि अपने लकड़ी के जूने पहनकर किसी भी चर्च में जाने का साहस नहीं कर सकता था। तब वह चर्च की खिड़कियों के बंद शीशों के पीछे बंदरों जैसा चढ़कर प्रार्थना गाता था और चौकीदार के डंडों की मार भी इस तरह से चोरी से चर्च पर चढ़ने के लिए खानी पड़नी थी। उसे संसार में दो ही चीजों से सबसे अधिक घृणा रही है एक तो, जर्मन सेनाओं से; दूसरे, रूसियों के साम्यवाद से। वह इंगलैंड का सबसे बड़ा समर्थक इसलिए था कि उसके यहाँ के फ़िलिप ने इंगलैंड की मेरी स्टूअर्ट के साथ शादी की थी और तब फ़िलिप इंगलैंड का भी सम्राट् बना था। वह बहुत ही भाग्यवादी आदमी था। उसे उन दिनों चेम्बरलेन का बार-बार हिटलर से संधि करने का प्रयास बुरा लगता

और वह कहता था कि इसमें भी साम्यवादी रूस की निश्चय कोई चाल है और जिसे ये लोग नहीं समझ पा रहे हैं। रूस ने जर्मनी से संधि करके पूरे यूरोप को गद्दे में डाल दिया है। होलैंड की सीमा में जर्मन टैंकों को देखकर उसे इंग्लैंड, फ्रांस और अमेरिका पर क्रोध आता था कि वे क्यों नहीं हिटलर को स्तालिन से लड़वा देते ? हिटलर पूरे यूरोप का शत्रु है तो ये स्तालिन और साम्यवादी रूस पूरी मानवता, विश्व के लिए खतरनाक है। उसका तर्क था कि जब ईश्वर ने ही छोटे-बड़ों का भेद बनाया है तब गरीब और अमीर वाले सृष्टि के नियम को ये साम्यवादी क्यों तोड़ना चाहते हैं ? साम्यवादियों का यह कथन कि यह धरती और सारा शासन मजदूर तथा शोषित वर्ग के लिए होना चाहिए, पड़्यंत्र है उस परम्परागत चली आती हुई आज तक की सम्पूर्ण भद्र संस्कृति को तहम-नहम करने के लिए। मैंने देखा है अकलंक ! कि जब कभी साम्यवादियों की चर्चा उसके सामने आयी है तो उस जैसा बुद्धिमान व्यक्ति भी पागलों का सा प्रलाप करता देखा गया। मैं नहीं जानती, क्योंकि राजनीति में मेरा सम्बन्ध भी नहीं है, कि उसकी इस घृणा का क्या कारण था ? सम्राज्ञी जूलियाना का कनाडा चला जाना उसे अच्छा नहीं लगता था क्योंकि उसका कहना था कि यूरोप और अमेरिका की इन राजकीय नीतियों पर रानी को दबाव डालना चाहिये।

“वह मुझे हमेशा पूछा करता था कि उसका कोई सम्बन्ध यहाँ की राजनीति से तो नहीं है ? और जब उसे मालूम हुआ कि मैं पहले हिन्दू थी और पति ने छोड़ दिया तब उसे बहुत दुःख हुआ था परन्तु मेरे इमार्ड हो जाने पर उसने बहुत प्रसन्नता प्रकट की थी। वह गांधी को मानता था किन्तु उसकी राजनीति को वह भयावह समझना था। वह कहा करता था कि उसका देश अगर यव आदि देशों में वहाँ के काले लोगों को छूट देता जायगा तो उसे उन उपनिवेशों में हाथ धोना पड़ेगा। जब कि यव देश की खड़ से उसके देश की माफ़-मुथरी मड़कें बनायी जा रही थी—अगर यह लड़ाई न हुई होती तो उसके देश की धरती कितनी लचीली मड़कों में अब तक भर गयी होती। मगर वे यव लोग उपद्रव मचाये हुए हैं जब कि उसके देश को एक तो अपने घर में लड़ना पड़ रहा है, दूसरे जापानियों ने उसके उपनिवेशों पर आक्रमण कर दिया है। ऐसे समय में यव निवासी अवसर का दुष्टयोग करेंगे। वे न तो जापानियों के हाथ में ही रहेंगे और न उसके अपने देश होलैंड के ही। ठीक वैसी ही परिस्थिति गांधी इस भारतवर्ष में कर रहा है। यहाँ के लोगों को अंग्रेज शासन में ओर क्या चाहिए ? माना कि इस देश पर डच्चों का भी कभी अधिकार था और अंग्रेजों ने वह अधिकार छीन लिया, किन्तु वह केवल इस बात से ही अंग्रेजों के हाथ से छीननेवाले गांधी और उसके साथियों को तो कभी अच्छा नहीं कह सकता है न ?

“वह अपनी डिनर टेबल पर मुझसे कई बार कह चुका था कि काली जातियों को भड़काने में रूस का बड़ा हाथ है और चीन के गृह-युद्ध में तथा जापान के युद्ध के पीछे

भी रूप का ही हाथ है। क्योंकि वह कहा करता था कि साम्यवाद, मजदूरों का साम्राज्यवाद है, जो ईश्वर के बनाये गये अमीर-गरीब के भेद को मिटाने का प्रयास है—जो कि असम्भव है, क्योंकि इंग्लैंड, फ्रांस, अमरीका, हालैंड कोई भी देश ईश्वर और सृष्टि के नियमों के विरोध में खड़े नहीं हो सकते। इस युद्ध का पक्ष यदि बदल गया तो जर्मनी इस युद्ध में रूस को समाप्त कर देगा।

मैं जानती हूँ अकलंक ! कि तुम राजनीतिक व्यक्ति हो, तुम उस व्यक्ति के बारे में कुछ कहना भी चाहोगे कि वह साम्राज्यवादी व्यक्ति था या प्रतिक्रियावादी व्यक्ति था किन्तु मैं उसके विपक्ष में कुछ नहीं मुन सकती हूँ, क्योंकि वह बहुत भला था और मैंने उसके साथ विवाह भी किया था”—

मुझे फिर एक धक्का लगा है। अपने मन के साथ खेलनेवाली इस नारी को क्या कहूँ ? जो कहीं किसी भी दशा में भेद नहीं करना जानती है। राजनीति की बात एक क्षण को अलग भी कर दी जाये, फिर भी जो इस देश के बारे में इस तरह की धारणा लिये था, जो गाँधी के बारे में ऐसी प्रतिक्रियावादी बातें करता था, उसके साथ भी इस रमणी का समझौता किस बात के लिए था ? शरीर की भय !! कहती है कि बिना चाहे मैं रह नहीं सकती थी और इसलिए अकलंक ! मैंने उस टेनिस के खिलाड़ी नंदलाल से प्रेम किया। उसमें कोई आकर्षण नहीं था फिर भी उसमें खोज खोजकर गुण आरोपित किये—और कदाचित् मेजर जांस्टीन से आकर्षण ही नहीं घृणा के अकुर थे, परन्तु उसे भी रंजना ने अपनी गोरी बाँहों में बाँधा होगा, इन्हीं ओठों ने उसके ओठों पर चुम्बन टाँके होंगे जिन्होंने इस देश के बारे में बुरी भली बातें कही होंगी। रंजना ! तेरा पतन, कोई सीमा रखता है या नहीं ? क्या तू नारी है ? ?

“जानती हूँ अकलंक ! मेरी इस लग्न वाली बात ने बहुत ही कड़वाहट तुम्हारे मन में पैदा कर दी होगी और तुम घृणा से भर गये होंगे। एक बात कह दूँ अकलंक ! कि जिस उच्च वर्ग में मैं आती हूँ वहाँ नारी के लिए पुरुष, मात्र पुरुष होता है और हमारे वर्ग के पुरुष के लिए नारी, मात्र विलाम का साधन है—प्रसाधन की प्रतिमा !! यदि मैंने भी उसी तरह किया तो क्या बुरा किया अकलंक ? जानती हूँ अगर मैं तुम्हारी पत्नी हुई होती तो कभी भी ऐसा नहीं कर पाती, क्योंकि तुम जिस वर्ग में आते हो वहाँ नारी का शरीर होना उतना आवश्यक नहीं है, जितना कि वह पति के काम में कितना हाथ बँटा सकती है और वह नारी है या नहीं ? इसीलिए तो मेरे माता पिता ने तुम्हारी उस विवाहवाली बात का मुँह नोड़ उत्तर तुम्हें दिया था !! और मुझे कदाचित् जीवनभर का यह शाप !! मैं भले ही पतन की इस सीमा पर पहुँच गयी, किन्तु उच्च वर्ग की रक्षा तो हो सकी—।

“जानते हो इस बार मैंने अन्तिम रूप से निश्चय किया था कि मैं घर बसाकर रहूँगी और यह व्यक्ति मेरे घावों पर मलहम पट्टी कर सकेगा, जब कि मैं इसके बमों से नष्ट घर

की ईंटों को फिर से जोड़-सँजोकर इसका रंगकक्ष मजा दूँगी और जहाँ में एक फूलपात्र की तरह रह सकूँ। यदि मैं एक बार भी ऐसा कर सकी तो मुझे संतोष होगा—मेरा पति होगा, मेरे बच्चे होंगे और मैं पत्नी तथा माँ हूँगी ! !

अकलंक ! सबसे पहली बार हम लोगों का प्रेम ओठों तक कैसे आया, जानते हो ?

“मैं इस नर्स की नौकरी से ऊब गयी थी साथ ही मुझे इन मिलिट्री के लोगों की इस आदत से भी घृणा हो गयी थी कि वे बेकाई लड़कियों को साथ घुमाना और मौज करना अपना अधिकार समझते थे । कई बार मन झल्लाकर रह जाता था । ज्योंही आप अकेले हुए, नहीं कि कोई न कोई कैप्टन या लेफ्टिनेंट आपके साथ लग जाता था । मैं जब इन लोगों के साथ जाने की अरुबी प्रकट कर देती थी तो इन लोगों के मन में मेरे प्रति द्वेष आ जाता था । जब कभी ये मुझे मेजर जांस्टीन के साथ देखते थे तो निश्चिन्त ही शराबी का स्वाँग बनाकर कोई गंदा गान या आँखें मिचकाने हुए मीठी वजाकर अश्लील मजाक करने में कभी नहीं चूकते थे । कई बार तो नृत्य करते समय धक्का तक देने में ये नहीं चूकते थे । मेरा मन धीमे-धीमे ऊबता जा रहा था और जाने क्यों जब यहाँ में भी आगे पग उठाने की मोचनी थी तो आँखों के आगे एकदम अँधरा आ जाना था । क्योंकि मैं इतनी आगे बढ़ चुकी थी कि जिस धर्म में पैदा हुई थी उसे अहमद ने आकर पूरी तरह नष्ट कर दिया था और जिस वर्ग में आ रही थी उसे मेरे समुद्र और पति महाशय ने लाहौर में पहले ही छीन लिया था । वापस लौटकर जाने का अर्थ था, कि मैं वही जाऊँ जहाँ टाट के परदों के पीछे चार आने का व्यापार रात भर शरीर का गोट बनाकर खेला जाता है । हो सकता है तुम और कुछ निष्कृति देख पाते होगे, पर अकलंक ! कभी तुम एक क्षण को भी नारी हो पाते, तुम्हें एक दिन के लिए भी नारी शरीर की सारी विषमताएँ मिलतीं तो तुम जान पाते कि जिस शरीर की ओर तुम आकर्षित होते हो, या तुम पतंगे की भाँति टूटते हो—जिन रूपशिखाओं को देखकर; वह शरीर, नारी के लिए यमलोक के जलते हुए महाशाप से कम नहीं है । तुम बताओ कि यदि मैं मेजर जांस्टीन का साथ छोड़ देती तो मेरे सामने वेश्या या बेकाई गले के भविष्य के अलावा और क्या था ? आज तुम आये हो सारे आदर्श के छत्रदंड लेकर मेरे द्वारे, जिसमें कि मैं पश्चाताप और प्रायश्चित्त करूँ। मेरे मन में अपने प्रति ही तुम घृणा भरने आये हो कि मेरी संतानें जानें कि उनकी माँ, समाज की दृष्टि में लगभग वेश्या थी, बेकाई गर्ल थी, चरित्रहीन थी—मैं पूछती हूँ कि क्या मैं नारी नहीं हूँ ??

“और मैं मेजर जांस्टीन को किसी भी दशा में अपने हाथों से जाने देना नहीं चाहती थी । जिस दिन मैंने यह अनुभव किया कि इस व्यक्ति का मेरे जीवन से चले जाने का अर्थ है मेरे सामने केवल अंधकार ! ! उसी दिन मैं कमजोर पड़ी । मेजर जांस्टीन तो मेरे इस नये व्यवहार से बहुत प्रसन्न हुआ कि उसकी ओर अगत्या मेरा आकर्षण हुआ तो ।

और जब मैं नित नयी नयी डिजाइन की साड़ियाँ पहनती थी तो वह एक क्षण देखता ही रहता था और फिर हम लोग आलिंगन में बँध जाते थे ।

उसने उन दिनों अपने हालैंड जाने के लिए वस्टर्न ज़ोन के मुख्य कार्यालय को लिखा था । पिछले वर्ष भर से उसे रोका जा रहा था पर इस बार वह जी जान से प्रयत्न कर रहा था कि उसे जाने की अनुमति, एवं सुविधा मिल जाये । उसने अपनी गवर्नमेंट से भी जोर डलवाने का प्रयत्न किया था और वह रोज आशा करता था कि किसी भी दिन उसे अपने देश जाने का आर्डर आ सकता है । वह मुझसे कहा करता था कि रंजना मेरी पत्नी बन कर अवश्य उसके साथ जायेगी क्योंकि बिना रंजना के अब वह नहीं रह सकता है । वह इस विचार में बैठा घंटों प्रसन्न रहा करता था ।

साँझ की ड्यूटी के बाद हमेशा हम लोग उधर काफी दूर तक घूमने जाया करते थे जिधर सब बंदी बंद थे । बंदी दो भागों में बँटे हुए थे — उत्तरी भाग और दक्षिणी भाग, कुल मिलाकर दस हज़ार से भी अधिक कैदी थे । प्रतिदिन मालगाड़ियाँ ढेरों सामान, गेहूँ, कच्चा गोشت, मुर्गियाँ, अण्डे बैरागड़ के स्टेशन पर लाती थीं । आसपास के छोटे-छोटे गाँवों में जहाँ कभी पशुओं का काटना नहीं होता था, अब वहाँ गोشت की बड़ी-बड़ी मंडियाँ खुल गयी थीं और लोगवाग अपने बैल, गाय, बकरी, गधे और सड़क पर आवारा घूमते हुए कुत्ते विल्ली तक हज़ारों की संख्या में काटने लगे थे । आमपाम के पचासों कोस तक के गाँवों में पशु मिलना दूभर होता जा रहा था किन्तु पड़ोस की रियासतों के राजाओं और नवाबों ने मिलिट्री की पूरी सहायता करने का वायसराय से वायदा किया था और गोष्ट के पहाड़ इस छोटे से स्टेशन पर रोज उतारे जाते थे ।

“घूमने अपनी बनियाने और पतलून पहने वे युद्धबंदी जमीन खोदने का, सब्जी उगाने का, खेती करने का काम करने रहने थे । उनके चारों ओर मिलिट्री की हज़ारों बंदूकें, मशीनगने हमेशा तैयार खड़ी रहती थी । दूर-दूर तक काँटों के घेरों की सीमाएँ ही दिखायी देती थी और वे नीचा मिर किये भेड़ों की तरह काम करते रहते थे । अंतिम घेरे के दो घेरे पहले से पगवटों में काँटवाले तार बिछे हुए थे, इसलिए कि यदि निकलकर भागें तो भाग भी नहीं सकें । रात भर मर्चलाइटें इस अहाने के चप्पे-चप्पे पर घूमती थीं । खाना लेने के समय इन्हें बाहर से ही ‘फॉल इन’ कराया जाता था और ये तारों के पाम ‘क्वू’ में आते उन्हें पानी भी नापकर दिया जाता था । ज़रा भी गड़बड़ी होने पर हज़ारों गोलियाँ चल जाती थीं और बात की बात में वे खड़े के खड़े भून दिये जाते थे ।

“एक दिन संध्या हम लोग घूमकर लौट ही रहे थे कि बंदियों ने आज का काज जल्दी समाप्त कर, अपने-अपने स्थानों की ओर दौड़ना शुरू किया । जहाँ ये लोग आराम करते और बैठने थे वह भी चारों ओर से पहले बाहर से ही काँटों से घेर दिया जाये इसका प्रबन्ध था और तब यह बाहर का बड़ा घेरा खोलकर मिलिट्री गारद उस

पासवाले घेरे में घेरकर रात भर पहरा देती थी। इनके मोने और बैठने के लिए बहुत ही असुविधाजनक जगह बनायी गयी थी।

“कैदियों को जैसे ही काम छोड़कर भागते देखा तो साजेंट ने चिल्लाकर ‘हॉल्ट’ का आदेश दिया, पर वे सब के सब बेतहाशा भाग रहे थे। इस पर उसने ‘फायर’ का हुक्म दिया और चुपचाप रखी हुई मशीनगनों पीली लपटें उगलने लगीं, कैदियों के चीखने की आवाजें आने लगीं। पचासों ढेर कर दिये गये। शेष कैदियों ने अपने दोनों हाथ ऊँचे करते हुए समर्पण कर दिया। कैदियों को ही अपने साथियों की लाशें ढोकर बाहरवाले घेरे तक लानी पड़ीं और जब वे सब अंदर के घेरे में बंद कर दिये गये, तब उन लोगों की लाशों को ठोकर मार-मारकर बाहर खींचा जाने लगा। उन कैदियों का तीन दिन का राशन बंद कर दिया गया।

“मेरा दम घुटने लगा अकलंक ! आदमी की कीमत एक बंदूक की गोली !! गोली चली ओर मानुष भुन गया। मेरा रोम-रोम कांप रहा था। मैं बहुत डर गयी थी। मैं भय के मारे बहुत जोरों से चीख पड़ना चाहती थी किन्तु मेजर जांस्टीन का मेरी कमर में हाथ और मेरे सिर को उसके कंधे का सहारा—सात्वना पहुँचा रहा था। मैंने निश्चय कर लिया था कि मैं यहाँ नहीं रह सकती. कभी नहीं रह सकती हूँ।

“मेजर जांस्टीन का क्वार्टर दक्षिण दिशा में एक मिरे पर था। जिसके सामने एक पहाड़ी नाला कतराकर बहता रहता था। नाले के इस तरफ तक कांटों के तारों का ऊँचा घेरा था और नाले के उस पार ऊबड़-खाबड़ धरती—जो कि लाल मिट्टी के कारण धूप में गेरुआ कपड़े की तरह लगा करती थी। उस पर अचार की झाड़ियाँ, खजूर के लम्बे-लम्बे पेड़, जंगल, उन्मुक्त हवा में हिलते रहने थे। उस गेरुआ लाल मिट्टी में फ्रास्ताएँ खूब सारी फुदकती रहती थीं और कभी-कभी मेजर जांस्टीन उन्हें गोली का निशाना भी बना लेता था, जिसे बाहर पहरा देता हुआ गारद का सिपाही ला भी दिया करता था। नाले पर गेरुआ पुता हुआ रेल का पुल था जिस पर से मालगाड़ियों में बंद जानवरों के सिर दिखायी दिया करते थे और सवारी गाड़ियों की सवारियों के कभी लाल-पीले लुगड़े, वर्ना तरह-तरह के सिर दिखायी देते थे। दोपहर में अक्सर रविवार को मैं जांस्टीन के साथ उस नाले में मछलियों का शिकार करने जाया करती थी, तब रेलवे ट्राली का दोड़ता हुआ वह नीली वर्दीवाला पैड्समैन ओर सफ़ेद सूट पहने हुए बाबू और उस ट्राली की उड़ती हुई लाल झंडी दिखायी पड़ती थी। छोटी-छोटी घास चरती हुई कभी कोई गाय या भैंस मुश्किल से दिखायी देती थी, परन्तु गोबर बीननेवाली या लकड़ी बटोरनेवाली स्त्रियाँ ज़रूर, अपनी जाँघों के ऊपर तक लुगड़े खोंसे उन खाँखरों की झाड़ियों के बीच से जाती हुई पगडंडियों से होती हुई बहुत दूर-दूर तक दिखायी देती थीं। बिलों के पास अपना एक पंजा अंदर डाले हुए खरगोश हमेशा ही मिल जाया करते थे और जांस्टीन जब इन्हें मारने के लिए गोली का निशाना साधने का प्रयास करता था तो मेरा मन जाने

कैसा होने लगता था, तब तक गोली 'धाय' आवाज करती हुई उनके नर्म बालों भरे, कोमल हड्डियोंवाले शरीरों को छेद देती थी। अपने बड़े-बड़े सफ़ेद कान लिये खरगोश, जिसके नर्म-नर्म बाल उस जंगली हवा में बहुत मुलामियत के साथ उड़ते रहते थे, तब मात्र मांस की लोथ हो जाया करता था। दूर पर चाँदमारी में चलती हुई 'थ्री नाँट थ्री' की गोलियाँ 'ठाय' 'ठाय' करती हुई दिन भर बोला करती थीं। और मुझे ऐसा लगा करता था कि यदि इन कटीले तारों के अंदर पहुंचने पर हवा, पुलिस का आदेश न माने तो कदाचित् गोलियाँ उसका भी शरीर छेदकर छलनी कर सकती थीं। लौटते में जांस्टीन के कंधे पर लटकते हुए खाकी बैग में चाँदी की पत्तियों की तरह चमकनेवाली बहुत सारी छोटी-छोटी मछलियाँ हुआ करती थीं, जिन्हें शाम को नमक के साथ उबालकर खाना जांस्टीन को बहुत प्रिय था। तब वह मारकेन द्वीप के आसपास उत्तरी सागर में मिलनेवाली मछलियों के प्रकार, बदबू और गंध की बात चाव से सुनाया करता था। वचन में उसे अपने आवारा भाई-बहनों से एक-एक मछली के लिए कितना लड़ना पड़ता था और कई बार तो लकड़ी के जूने से एक दूसरे का सिर तक फोड़ दिया करने थे और तब घाव पर ढेर सारी बर्फ, धूल की तरह डालने पर कैसी काटती हुई ठंडी लगा करती थी। वह अपनी पत्नी का चित्र हमेशा मुझे विवाह के पहले दिखाया करता था और कहा करता था कि 'रंजना ! मेरे साथ यह पढ़ा करती थी और इसका पिता लोगों की कब्रों पर लगानेवाली मूर्तियाँ, परियाँ तथा क्रॉस बनाने के लिए प्रसिद्ध आदमी था। परन्तु इसकी माँ के भाई ने जो कि कब्रें खोदने का काम करता था, अपनी बीबी के लिए अच्छा क्रॉस बनाने पर इसके पिता को फावड़े से मार डाला था।' जांस्टीन कहा करता था कि इसकी आँखें जैमी सुन्दर आँखें उमने यूरोप भर में नहीं देखीं। केवल रंजना की आँखें इन आँखों से अच्छी ही नहीं, कई गुना सुन्दर हैं, और तब वह अपना ऊपर का ओठ हल्के हिलाते हुए मेरी ओर शैतान बच्चों की तरह देखा करता था। यहाँ के दूसरे अंग्रेज कमांडर इसके अइंग्लिश होने के नाते जांस्टीन से असन्तुष्ट ही नहीं किमी मीमा तक जलते भी रहते थे परन्तु वह मिलिट्री सर्जनों में प्रथम श्रेणी का माना जाता था। जांस्टीन को दुःख इसी बात का था कि अपने हालैंड में रहकर शोध कार्य करने का अवसर नहीं मिल रहा था। वह छोटी से छोटी शारीरिक पीड़ा को भी सर्जरी से ठीक करने का विचार रखता था। वह जर्मनों को उसके देश को नष्ट करने पर कोसते-कोसते पागल हो जाता था।

"मैंने अपना त्यागपत्र दे दिया था, क्योंकि जांस्टीन के साथ मेरा विवाह निश्चित हो चुका था। मगर अभी तक वह इस प्रसन्नता को दूसरी प्रसन्नता के साथ मिलाना चाहता था और इसलिए वह कहा करता था कि मैं जीवन में जितना कभी प्रमत्त नहीं हुआ हूँ उतना प्रसन्न होकर उस दिन उत्सव मनाऊँगा।

"जिस दिन एरिया कमांडर ने मेजर जांस्टीन को बुलाकर उसे हालैंड जाने का आदेश दिया उस समय मैं जांस्टीन की डायरी पढ़ रही थी।

‘डायरी में मात्र मूर्खताओं का ही उल्लेख हो’—

यह जांस्टीन की धारणा थी, ओर खिड़की के पास हँसते हुए मैं डायरी पढ़ रही थी, तभी उसने मुझे दोड़ते हुए आलिंगने बाँध अपने हालैंड जाने के बारे में सुनाया।

“जिस समय हम ईसा, बाइबिल और पादरी का आशीष लेकर चर्च से बाहर निकले लोगों ने चुम्बतों से मेरा हाथ भर दिया। मेरा सफ़ेद गाउन, झीना पतला सारस के पंखों की तरह चर्च की लीचियों के पेड़ से आती हुई हवा में उड़ रहा था और हम दोनों कार में चढ़कर लोगों की प्रमत्तता को चर्च में ही छोड़कर आगे बढ़ गये।

“हम लोगों ने हालैंड पहुँचकर ही हनीमून मनाने का निश्चय किया।”

“जिस समय हम लोग हालैंड के लिए रवाना हुए हमें पहले इंगलैंड जाना था क्योंकि पेरिस, ब्रूमेल्स की तरफ के सभी नाके, सड़कें जर्मनों ने बंद कर रखी थीं। इंगलैंड के बाद ही यदि सम्भव हुआ तो हालैंड के लिए किसी जहाज से जाया जा सकेगा। जब मैं अपने पति के साथ इंगलैंड पहुँची, हालैंड के पूर्वी शहरों और प्रदेशों पर जर्मनों के आक्रमण बराबर हो रहे थे और ब्रिटेन और अमरीका की सेनाएँ हालैंड की सीमाओं की रक्षा के लिए भेजी जा रही थीं। बेल्जियम के प्रदेश में भी जर्मनों के घुस पड़ने की संभावना बढ़नी जा रही थी, इसलिए राटरडम खतरे में अभी ओर पड़ सकता था क्योंकि सन् चालीम की मई में, शहर के केन्द्रीय भाग को बिल्कुल विध्वंस कर दिया गया था। चारों ओर उस समय जर्मन आक्रमण का आतंक छाया हुआ था। हालैंड पहुँचकर आम्सटरडम में सजिकल प्रेक्टिस करने का जांस्टीन का विचार था।

“राटरडम से उत्रेच्ट होते हुए जब राते हम लोग आम्सटरडम पहुँचे तो उस समय पूर्वी हवा, अम्सटेल नदी ऊपरे हल्के उड़-उड़कर कुहरे और बादलों को भिगोती चली जा रही थी। अपने पति से सुने गये सत्रहवीं शताब्दी के उन डच लोगों के उत्साह पर मुझे हँसी आने लगी, जिन्होंने अपने आम्सटरडम को वेनिस की भाँति ही सुन्दर ‘बहण नगर’ बनाने के लिए बहुत सी नहरें बनाने की योजना प्रारम्भ की थी और उसे ‘उत्तर का वेनिस’ भी कहना प्रारम्भ कर दिया था। ट्रेन में बैठे हुए अंधकार और विजली के प्रकाश में लिपटे इस उत्तर के वेनिस से मुझे महमा मोह हो आया जहाँ कि शेष जीवन अपने पति संगे विताने का निश्चय करके अपना देश छोड़कर आयी थी। इस विचार ने, अपने पहियों के नीचे से गुजरती हुई प्रत्येक सड़क, विजली के खम्भे, साइकिलों पर जाते हुए हैट और फ्राँक से परिचित हो लेने में ही अपने आप का भला समझा। समुद्र से लड़ कर धरती छीननेवाले इन डच लोगों की बाहुओं में अपने परिश्रम पर कितना दृढ़ विश्वास है—के विचार ने मुझे अपने पति के बाँहों पर मिर टेकने के लिए बाध्य कर दिया। मेरा मोह निरपति की बाँहों में ऐसे ही टिका रहना चाहता था जैसे समुद्र की बाँहों पर धरती का सिर !! और आम्सटरडम का स्टेशन आ गया।

“आम्सटरडम में मेरे पति जांस्टीन का एक बहुत ही पुराना गहरा मित्र रहता था—वान निकोलस। जो कि स्वयं अच्छा संगीतज्ञ और चित्रकार था। दोनों बचपन में साथ-साथ पढ़ते थे। वान निकोलस ने स्कूल कालेज के दिनों में जांस्टीन की हर तरह से सहायता भी की थी। वान निकोलस का पिता, उत्तरी हालैंड में सरकार से समुद्र के भीतर से धरती निकलवाने का ठेका ले लिया करता था, और वह एक तरह से हालैंड के राजनीतिक तथा सार्वजनिक जीवन में बहुत प्रतिष्ठित व्यक्ति था। वान निकोलस की बहन

मेरिया, पागल थी और वान निकोलस अपने पिता तथा बहन को छोड़कर आम्सटरडम वाले अपने बड़े मकान में आकर रहने लगा था। उस दिन स्टेशन पर उतरते ही मेरे पति ने कहा कि—‘रंजना ! यहाँ वान है और सीधे उसके घर ही चलना चाहिए’—और हम लोग सीधे उसके यहाँ गये। वान को अपने आने की सूचना हम लोग दे न सके थे। हालैंड का यह नगर संगीत एवं चित्रकारी का सबसे बड़ा केन्द्र है; और नीचे दक्षिणी हालैंड, वम तथा फ्रौजी बूटों से कुचला जा रहा था पर आम्सटरडम की विजली में चमचमाती हुई सड़कों, कुंजों और लताओं के हरेपन से भरे लदे पार्कों में इतनी रात भी जीवन की प्रसन्नता दिखलायी पड़ रही थी।

“जिस समय दुआर खोलकर ‘अटेण्डेंट’ ने अपना सिर झुकाकर नमन किया और जांस्टीन को पहचाना वह स्वामी को सूचना देने के लिए उम बड़े जीने में ऊपर चला गया जिस हॉल से होकर हम लोग नीचे के अतिथिवाले कमरे में जाकर वान निकोलस की प्रतीक्षा कर रहे थे। वान निकोलस को यह आवास अपने पिता से प्राप्त हुआ था और यहाँ वह अकेला रहता था।

“हालैंड का दक्षिणी-पश्चिमी भाग तो यूरोप की जलवायु की तरह गर्मी में गरम और सर्दियों में ठंडा रहता है पर केरेवियन समुद्र की गरम गल्फस्ट्रीम के कारण इधर न तो इतनी गर्मी और न सर्दी ही होती है। वान निकोलस अपना संध्या-गाउन पहने था। उन्नत ललाटवाला वह व्यक्ति जिसकी लम्बी नाक उसके मुखे सबसे प्रमुख लगनेवाली, पतले-पतले ओठ और हल्के लम्बे बाल परन्तु स्त्रियों की सी ऊँचाईवाला यह व्यक्ति देखने पर प्रभाव डालता था—कमरे में प्रवेश करते ही न तो डच और न यूरोपियन रूपरंग की एक रमणी को देखकर वह आश्चर्य में आ गया। परन्तु मेरे पति ने—

‘यह मेरी पत्नी रंजना जांस्टीन, आप भारतीय हैं’—कहकर मेरा परिचय दिया।

“मेरे लम्बे उजले दस्ताने में झुका हाथ उसने बहुत ही भद्रता से चूमकर अभिवादन करते हुए हालैंड में स्वागत किया। मुझे उसके इस व्यवहार से बहुत प्रसन्नता हुई। वह अगले महीने ही हालैंड के प्रसिद्ध चित्रकार रेम्ब्राण्ड के ‘नाइट वाच’ वाले चित्र के आधारे एक संगीत ऑपेरा प्रस्तुत करनेवाला था और उसी की तैयारी में वह लगा हुआ था। जिस समय वह नम्रतापूर्वक बिदा हुआ, हम लोग अत्यधिक थक चुके थे।

“कदाचित् जांस्टीन अपने देश में बहुत दिनों बाद आया था और आते ही जैसे हालैंड की इस शरद्ऋतु की कुहर बाँहों ने उसे प्रगाढ़ आलिंगन में बाँध लिया और वह गहरी नींद में सो गया।

“कमरे की सुषमा तथा वैभव, वान निकोलस की कलाप्रियता का परिचय दे रहे थे। प्रत्येक वस्तु सुरुचिपूर्ण तथा रंगमेलमयी थी। प्रकाश बुझा दिया गया था। नीचे के तल्ले के इन कमरों से सटा हुआ इस बैंगले का कदाचित् वह बगीचा है, जिसके घने पेड़ों की काली छायाएँ उस समय लेटी हुई मेरे मुँह के सामने की खिड़कियों के शीशों

में से दिखायी दे रही थीं, और चंद्रमा बिल्कुल बर्फ की तरह उज्ज्वल एवं शीत—उगने को हो रहा था। मुझे लगा यह चंद्रमा बिल्कुल दूसरा है उससे जिसे लाहौर, बम्बई में हमेशा देखा करती थी, या मही से चलते हुए उस दिन मैंने ट्रेन में बैठे हुए क्षिप्रा की ठंडी कछारों को धोता हुआ जिसे देखा था। मेरा मन हो गया कि हालैंड की इस ठंडी कुहरे भरी रातें भी चलकर देखूँ कि आम्स्टेल नदी पर इस चंद्रमा की वैसी ही परछाई पड़ रही है जैसी कि उस दिन सरपतों से भरी उस झील में देखी थी? कुहरे के नीले-नीले गुब्बारे धुएँ के छल्लों की तरह चंद्रमा के मुखे उड़ रहे थे और वे यहाँ के आकाश में बहुत नीचे लग रहे थे। मुझे लगा कि यदि मैं बर्फ पर पहननेवाले मारकेन टापू के बने लकड़ी के जूते पहनकर उत्तर की ओर चलती चली जाऊँ तो निश्चय बर्फ को पार करती हुई इस चंद्रमा को पा सकती हूँ। और तब यह चंद्रमा का गोल, ठंडा, विशाल श्वेत कमल, मेरी दोनों अंजलियों में होगा और जिसे मैं अपनी दोनों जलती पलकों पर फेरकर एक गहरे सुख का अनुभव कर सकती हूँ। या, मैं इस ठंडे कमल को अपने जूड़े में लगा सकती हूँ।

“ऊपर के उजालदान खुले हुए थे जिनमें से हल्की ठंडक और कुहरा आ रहा था। कमरे के फायरप्लेस की लाल-गाल रौशनी की छाया, सब चीजों को गरमाहट और लाली बाँट रही थी। दूर कहीं से धीमे-धीमे पियानों के स्वर आ रहे थे, मुझे लगा निकोलस निश्चय ही उस ‘नाइट वाच’ वाले चित्र से सम्बन्धित संगीत ऑपेरा की स्वर-लिपि बना रहा होगा और मैं कल्पना करने लगी कि कैसा होगा वह चित्र, और वान निकोलस का उस चित्र के भावों को स्वर देने का प्रयास!! मुझे अंगीठी की हल्की आँच की भाँति सुन्दर, रंगीन और हल्के मोठे वे दूर से आते हुए पियानों के स्वर लग रहे थे—जैसे चारों ओर इस समय बर्फ की चमेली झर रही है और मैं पियानों के उन स्वरों में वह ‘नाइट वाच’ वाला चित्र देख रही हूँ। इसी कल्पना में मैं कब सो गयी मुझे पता न चला, परन्तु बिहान उठने पर मेरे सिरहाने दो फूँओं के गुच्छे दिखायी दिये जो इस वेला कुम्हलाये हुए थे। अवश्य ही रातें किसी ने मेरे सिरहाने रख दिये होंगे।

“दूसरे दिन भोर जांस्टीन, अपने मित्र वान निकोलस को और मुझे लेकर आम्स्टर्डम घुमाने ले जाना चाहता था, परन्तु कुहरा बहुत सबरे से ही घना धिर आया था। मेरे पति, घूमने के प्रस्ताव को रद्द देखकर कदाचित् कुछ लोगों से मिलने चल दिये और मैं वान निकोलस के उस उपवन में घूमने लगी। एक क्षण को लगा मैं निश्चय ही यह सब स्वप्न देख रही हूँ, अन्यथा लीई के साथ दिन-दिन भर बैठकर रंगीन कागज के फूलों को काटते-काटते उस लोह की कैंची के कारण मेरी उँगलियाँ कितनी थककर दर्द करने लगती थीं, और तब आँखों में पानी आ जाता था, क्योंकि इस काटने के बाद तक गोंद लगाना शेष रहता था, फिर इन्हें सूखने रखना होता था, तब कहीं इन्हें लेकर बम्बई की सड़कों पर बुर्का ओढ़े दस-पन्द्रह मील से अधिक चक्कर काटना पड़ता—तब रात रोटी नसीब

हुआ करती। यदि मैं इस सत्य माने लेती हूँ तो फिर वान निकोलस के इस उपवने इस तरह आम्सटरडम में घूमते हुए को क्या मानूँ?? यहाँ मेरा पति है, और अब मैं सदा के लिए यहाँ रहने आयी हूँ, कदाचित् अब लाहौर की उन गलियों तथा अनारकली को भी कभी न देख सकूँ।

“जानते हो अकलंक ! जब हम एकदम विभिन्न परिस्थिति में पहुँच जाते हैं तो हम बचपन की रटी हुई संख्यावाली गिनती को आँख मूँदकर फिर से दुहराने लगते हैं कि कहीं हम बदल तो नहीं गये हैं ? और जब हम देखते हैं कि प्रारंभिक कक्षा की वह गिनती हमें ठीक-ठीक उसी तरह स्मरण है, तब हमें काफ़ी गहरी प्रसन्नता होती है कि नहीं, हम वही हैं, बदले कहीं से नहीं हैं। ठीक उसी प्रकार एक-एक घटना हमारे सामने आती है और हम उन सबके बीच में अपने आप को जब सूत्रित पाते हैं तब हमें विश्वास हो जाता है कि नहीं, हम निरन्तर बने हुए हैं, कहीं से भी हमारी संज्ञा लुप्त नहीं हुई है। इन सब विभिन्न परिस्थितियों का सूत्र हमारा ‘हम’ अखंड रूप है।

“नंदलाल के साथ मेरा वह मिलन कितने साफ़ तरीके पर याद है। मैंने उसे प्रेम करके उकार से लादा था अकलंक ! जब कभी कालेज के लॉन पर फ्री पीरियड में लोग उसे मेरे साथ देखते थे तब मैं कनखियों से बराबर देख लिया करती थी कि कितने लोग आहें भर रहे हैं ! कभी किसी की उड़ती हुई फक्ती कि,

‘क्यों यार ! पाँचों घी में है न ?’—

सुनने पर मुझे नंदलाल से चिढ़ हो जाती थी—और लड़कों की भद्दी मोटी सी हँसी बहुत देर तक खिलखिल करती रहती थी। किन्तु अकलंक ! मुझे हमेशा लगा कि मैं निरभ्र आकाश की भाँति ही रही, जिस पर किसी के भी पदचिन्ह आज तक अंकित नहीं हो सके—फिर चाहे वह आँधी हो या काली पतली रेखाओं में उड़ते हुए सारस के झुंड हों, या हरे-हरे तोतों की उड़ती हुई बंदनवार !! तुम इसे मेरा दर्ज कहोगे, तुम कहोगे कि यह सब कहकर तुम्हारी दृष्टि में यदि मैं गिर गयी हूँ तो आकाश वाली उपमा कहकर अपने को ऊँचा किया चाहती हूँ—किन्तु क्या ऐसा सोचना सत्य होगा ?”

मुझे रंजना का इस समय बहक कर स्वयं मुझ तक आ जाना अच्छा लगा है क्योंकि मैं कुछ सोच सकता हूँ। रंजना ने जिस भाँति जिया विलकुल निरुद्देश्य जिया है ठीक उसी रीते वह निरर्थक सोचती भी है। मैं नहीं जानता रंजना ने कब मेरे हाथ की अँगूठी का लाल नग छोड़ा और वह मुझे अपनी कथा सुनाने में तल्लीन हो गयी थी। रंजना कभी किसी व्यक्ति या घटना के प्रति सचमुच का विद्रोह करके उठ खड़ी हुई हो, ऐसा नहीं लगता। यह क्यों ? पता नहीं !! या तो छलवश ऐसा करती है या स्वभाववश।

परन्तु अपने आप को कोई कैसे छल सकता है ? और इस प्रकार अपने को छलने की ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी थी ? मुझे तो उसके जीवन के प्रत्येक मोड़ पर लगता है कि वह चाहती तो अपने विद्रोह का फन उठाकर खड़ी हो सकती थी जब कि उसने

ऐसा नहीं किया। विवशता नाम की वस्तु ही गिरने के लिए बाध्य करती है, जब कि रंजना के साथ ऐसी विवशता क्या कहीं थी? सचमुच का विवश, क्या इसके सामने कभी था? —गिरने पर व्यक्ति में असंतोष पैदा होता है जब कि रंजना ने अपने प्रत्येक पतन को रस माना। आवेश में पग उठाने पर भी मनुष्य विवेक आने पर लौटा लेता है, किन्तु जब कोई आवेश में पूरा जीवन जी जाता है तो इसका अर्थ तो हुआ, कि वह सब कुछ उसके मन को अच्छा लगता था। क्योंकि बिना मन के तो जल जैसी वस्तु तक को हम नहीं पी पाते हैं फिर यह तो स्तर की सीमाओं का प्रश्न है। जहाँ तन और मन दोनों का मिलना एक नितान्त आवश्यक शर्त है। बिना मन के, दवाई की बाध्यता क्षम्य और समझ में आती है, किन्तु यह रंजना तो अपने तन और मन दोनों को सड़ांध भरे पाताली पतनों में ले गयी।

“देखती हूँ तुम बहुत सोच रहे हो, ठीक है, अब मैं तुम्हें रोकना भी नहीं चाहती—सुनो, तुम हल्का ड्रिंक लो ?”

ओफ़! मेरा मन इसे कितना नीच मानने को कर रहा है, पहले तो ऐसा सब कुछ अनचाहा सुना कर मैं वह सब कुछ भूल सकूँ के लिए अब अनचाहा उपचार भी करना चाह रही है—छि: छि: !

“जी नहीं, मेरे लिए आवश्यक नहीं है, आप ही लें।”

मोर मुखे निश्चयई वाक्य का रूखापन आ गया होगा, क्योंकि मुझे ऐसा लगा कि मैं बहुत तेज़ नहीं तो कड़वे शब्द अवश्य बोल गया हूँ। और ठीक भी है, मैं क्यों बार-बार—इसे ऐसा नहीं कहूँ जिसमें बुरा लग जाय—के अंकुश से अपने आप पर नियंत्रण करता चलूँ? मेरे पास स्वयं इसका कोई उत्तर अब नहीं होगा कि पूरी गाथा सुनने पर क्या मैं इससे प्रेम करने की बात कह भी सकूँगा? जिसने धूप और हवा की भाँति ही अपने को सब के लिए सहज प्राप्य बनाकर वहाँ पहुँचा लिया है, जहाँ से इसे उठाने के लिए (चाहे वह आलिंगन या उद्धार जैसी मूर्ख भावना ही क्यों न हो) सामनेवाले को कितना नीचे उतरना होगा; सोचकर ही नाली के किलबिलाते, छोटे लम्बे पतले गिलबिले रबड़ की तरह नरम-नरम कीड़े याद आ जाते हैं जैसे बहुत सारे हों, एकदम बहुत सारे !! क्या मैं कभी इसकी लालसा कर सकूँगा? और जिन्होंने ऐसी लालसा की उन्हें क्या मिला?

मैं देख रहा हूँ कि वह कमरे से अभी-अभी बाहर गयी है और सोच भी सकता हूँ कि एक क्षण में हाथ में बोटल और पैग लिये वह आ रही होगी और मुझे जाने क्यों, कदाचित् ब्राह्मण घरे पैदा होने के कारण स्मरण आ रहा है कि शिव की मूर्ति पर एक जलपात्र अभिषेक रूपे टँगा रहता है, और उसमें से जलधारा निरन्तर शिर्वालिग पर गिरती रहती है। मुझे ऐसा लग रहा है उच्च वर्ग की इन पार्वतियों पर भी अभिषेक रूपे वाशुनी इसी प्रकार गिरती रहे तो कदाचित् उपमा में कहीं कोई असंगति न हो।

सामने छोटी टेबल रखकर अब उसने अपना पैग पूरा भर लिया है। एक बार

पैग के तरल पदार्थ के रंग को ठीक अपनी आँखों में भरते हुए मेरी ओर ऐसे देख लिया है कि जैसे—शिव तो इस समय वारुणी पान के मूड में नहीं है लेकिन पार्वती को तो आज्ञा होगी ही कदाचित्—

और मैं देख रहा हूँ रंगीन तरलता उसके कंठ के नीचे पहुँच रही है : ताकि कथा कि धरती और भी मसृण हो जाये, तो क्यूटेक्स रंगे नाखूनोंवाले कोमल पैरों को रखने में अड़चन न हो ।

दूसरा पैग भरते हुए कह रही है—

“अकलंक !”

मेरी इच्छा उत्तर देने की नहीं हो रही है ।

“क्या इस सीमा तक सोच रहे हो ? या कुछ बुरा लग रहा है अकलंक !”

“जी, क्या कहा आपने ?”—

और मैं खिड़की की ओर देखना चाह रहा हूँ ।

“अच्छा तो व्यावहारिक बनने का प्रयास फिर से किया जा रहा है ?”

और यह कहते हुए वह कितने जोरों से हँस रही है कि हाथ के पैगवाली लाल शराब हिल रही है और उस हिलने से छोटी-छोटी लाल रंग की कम्पनें हो रही हैं ।

“अकलंक ! तुम्हें अपनी बदली हुई रंजना को देखकर आश्चर्य हो रहा होगा, है न ?”

“नहीं तो ?”

“क्यों नहीं आश्चर्य हो रहा है ? तुम्हारी रंजना क्या कभी ऐसी थी ? नहीं अकलंक ! रंजना उस समय तक कभी भी ऐसी नहीं थी । तुम भूलते हो, या फिर तुम मेरे प्रति घृणा के इतने ऊँचे शिखर पर खड़े हो कि मैं फिर कभी तुम्हें न छू लूँ । तुम लोग भले ही अपनी ऊँचाई-नीचाई लेकर आओ, परन्तु ऐसा मैं नहीं कर पाऊँगी ।

“तुम कहोगे मैं उस रंजना को भूल गया । परन्तु देखती हूँ मुझे कितना सारा सब कुछ साफ़-साफ़ याद है । जब पहले दिन मैंने तुम्हें देखा था, तुम लड़कों का जुलूस लेकर आगे-आगे चल रहे थे, तुम्हारे हाथ में झंडा था । तुम सिर से पैर तक खादी पहने थे । तुम्हें देखकर जानते हो पहली और अंतिम बार विचार आया था कि मैं अपने जूटे मन से अगर तुम्हें चाहूँगी तो देवता के प्रसाद को निर्माल्य-सा जूठा कर दूँगी—परन्तु स्वार्थ, पवित्रता और अपवित्रता तो नहीं देखता है न ? तुम कहोगे कि जब यह स्वार्थ समझती हो तब फिर इसे प्रेम नाम मत दो, परन्तु अगर तुम ऐसा कहोगे तो मुझे क्लेश होगा । क्योंकि स्वार्थ, यदि समर्पण कराता है तो चाह के बंधनों में बँधकर घुल भी जाता है । और, जब वह नहीं घुलता तब वह मात्र मैथुन बनकर नीचता होता है । मैंने कितनी बार सोचा कि मैं तुम्हें छू कर अष्ट कर दूँगी क्योंकि मुझे तुम्हारी पवित्रता पर उतना विश्वास नहीं था जितना कि मुझे अपने शाप पर, और हुआ भी वही । परन्तु मैं पाकों में बैठ-बैठकर स्वप्न देखनेवाली,

स्वयं को कालिदास की शकुन्तला, शेक्सपीयर की जूलियट, ट्रॉय की हेलेन समझने वाली उस पगली रंजना को क्या कहती बताओ अकलंक ? शेले की सारी कविताएँ मुझे लगती थीं उस अंग्रेजी कवि ने जैसे मेरे ही विरह में लिखी हैं—मेरा ही वह मुख है जिसने अनेकों जलयानों का संतरण करवाया और हजारों मस्तूल भस्मीभूत करवाये । रंजना के वे कल्पना-पंख उसे रावी की उस रेती पर थोड़े ही रहने देते थे अकलंक ! वह तो डैन्यूव के किनारे, आल्प्स की बर्फ-चोटियों पर पहुँचकर अपने स्वर्णिम केश खाले—बर्फ की भाँति उजला गाउन पहने नाइटिंगल की तरह गा उठना चाहती थी कि—

‘देखो, मैं आ गयी—मैं ही वह गीत हूँ जो चिड़ियों के कंठों में है, मैं ही वह तुम्हारी कल्पना हूँ जिसे तुम आकाश की खिड़कियाँ खोल कर इंद्रधनुष के महलों में देखा करते हो’—

“और सब देखते कि हाँ, मैं आ गयी—जलते हुए मस्तूलों पर फिर से रंगीन झंडियाँ आ जातीं । अकलंक ! उस असीम वांछामयी रंजना के विराट् मोह को क्या मैं बाँध सकी कभी ? ओर मैं ही क्या, किसी भी नारी के मन को यदि उन्मुक्तता मिल जाय तो संसार की कोई बाँह उसे बाँध सकती है ? तुम समझते हो कि तुम्हारी दो बाँहों ने उसे बाँध लिया है, किन्तु यह तुम्हारा भ्रम है ! क्योंकि वह सत्य की नारी नहीं है, वह तुम्हारी धर्मद्वारा बंधिता दासी पत्नी है जिसका तुम शरीर बाँध सके हो, ओर जिसके पास मन तो कभी था ही नहीं—जब मन नहीं तो वांछा नहीं; मोह का तो प्रश्न ही नहीं उठता । और जो मेरी उस रंजना नारी को बाँध सकता था किसी सीमा तक, तो उनमें से एक था अकलंक, जो मूर्खों की तरह उम दिन लाहौर की सड़कों पर गुलमुहर का गुच्छा देकर सदा के लिए अंडमान चला गया । रंजना में अधिक महत्वपूर्ण उसके लिए उसकी राजनीति थी । दूसरा था वान निकोलस जो गंधर्व था—पुरुष नहीं; रंजना आज खो नहीं गयी, बल्कि टुकड़े-टुकड़े होकर नष्टभ्रष्ट, खंडखंड होकर कुरूप निर्लज्ज बनी हैंस रही है, तो तुम्हें क्यों आश्चर्य होता है ? अगर रंजना आज निर्लज्ज, चरित्रहीन वासना-मयी और पतिता लग रही है तो इसका उत्तरदायी कोन—रंजना, या अकलंक ! या वान निकोलस ??—कदाचित्, कोई नहीं ! !

“लेकिन रंजना जहाँ भी रहती, सीमातीत होकर ही रहती । प्रेम वह कर चुकी थी, शेष जीवने उसे उपेक्षा करनी थी और वह उपेक्षा उसने अपनी सामर्थ्य भर की । उपेक्षा वह प्रलय की तरह वहती चली गयी । मनुष्य होने के नाते कुछ मोह हुआ हो, किन्तु उसके अंदर की प्रतिक्रिया ने उसे रुकने नहीं दिया कहीं । उन दिनों न रुकने का कारण नहीं जान पायी थी परन्तु आज जानती हूँ, क्योंकि ज्योंही दोपहरे ताँगे से तुम उतरे थे; जानते हो, दौड़ती हुई नदी जैसे समुद्र को दूर से ही देखकर समझ जाती है कि नहीं—वह व्यर्थ ही इतने लम्बे मैदान, जलते मरुस्थल और जंगली पहाड़ पार करने के लिए ही घर से नहीं चली थी—यही वह समुद्र है, यही उसका चिर अंत है, महामिलन है, जहाँ के लिए उसकी अपनी लहरें शेषादित थीं ! ! अकलंक ! तुम मेरे महामिलन

थे, जिसके लिये मैंने अपनी लहरें शेष रखी थीं। और जानते हो तुम लँगड़ाते हुए ठीक वैसे ही आये जैसे तुम लाहौर की सड़कों पर लँगड़ाते हुए आया करते थे।”

रंजना यह सब कहती है, परन्तु क्या वह यह सब तर्क देकर भी एक क्षण को सिद्ध कर सकेगी कि रंजना का सीमातीत तथा असामाजिक व्यवहार उचित था ? अनागरिका है रंजना !

वह फिर दूसरा पैग भरना चाह रही है और मैं टोकना चाह रहा हूँ—

“रंजना ! ज्यादा न . . .।”

और उसने मुस्कराते हुए पैग नहीं भरा।

“अगत्या अकलंक ! कितने वर्षों को भेदकर आज तुम्हारा आदेश मुझे मिला तो। क्या मुझमें इतनी सामर्थ्य है कि मैं तुम्हारा आदेश टाल सकूँ ? कदाचित् नहीं, क्योंकि तुम्हारा आदेश मेरे लिए बिल्वपत्र है, जिसे अपने सिर पर धारणकर अब मैं शेष को जी ले जाऊँगी। अकलंक ! अब मुझे कोई चिन्ता नहीं !! तुम्हारा आदेश मुझे ठीक तरह याद है—उस दिन विद्यार्थी-सभा के चुनाव के लिए मैं तुम्हारे लिए होस्टलों के कमरों में घूम-घूमकर प्रचार कर रही थी, पोस्टर बनाये थे, सभा-गान किया था; क्या वह सब मैंने तुम्हारे आदेश से नहीं किया था ? लड़के तुम्हें देख-देखकर मुस्कराते थे और मैं विभोर हो जाती थी। तुम तब तक पूरी तरह राजनीति में भी शायद उतर चुके थे। मैंने तुम्हें क्रांतिकारियों के मझे जाने से मना किया और तुमने कितने गुस्से में मुझसे पूछा था—

‘क्यों ? तुम क्यों मना करती हो ? क्योंकि तुम्हारे पिता को भी हम एक दिन दूसरे लखपतियों की तरह पैसा देने का वाध्य करेंगे, कदाचित् इसीलिए न ?’—

“और जानते हो मैं कितनी फूट-फूटकर रोई भी थी, तुमने मुझे जीवन भर सामने न आने के लिए भी आदेशा था। उस दिन राबी के पानी की लहर को सिर पर धारण करते हुए तुम्हारी वह आज्ञा मान ली थी। तुम्हारी आज्ञा मेरे लिए कवच थी अकलंक ! पर तुम चले गये और मेरा कवच भी तुम्हारे साथ चला गया। मैं कुण्डल तथा कवचहीन कर्ण की भाँति हो गयी। यदि मैं कवचहीन होकर जीवन में घायल या रक्ततरता हो गयी, तो मेरा क्या दोष इसमें अकलंक ? यदि तुम भी मुझे दोषी समझोगे तो मैं उस समझने पर रोक नहीं लगा सकूँगी। तुम्हीं ने कब पलटकर कवचहीन रंजना को देखा, जो आज इतने बरस बाद जब कि मैं अपना सारा लेनदेन पूरा कर चुकी हूँ, रंजना को कुलटा एवं चरित्रहीन कहने आये हो ? जो भी मैं हूँ, क्या उसमें तुम कही नहीं हो ? केवल मैं ही हूँ उसमें ? और मैंने क्या किया अकलंक ऐसा ?”

“नहीं रंजना ! मैं कौन होता हूँ यह सब कहनेवाला ?”

मेरा मन फिर कोमल होना चाह रहा है और मैं रंजना में ऐसा कुछ भी तो नहीं पा रहा हूँ जिसमें मुझे उससे घृणा होनी चाहिए।

“हाँ अकलंक ! तुम अपनी ओर से भी कुछ थे मेरे लिए, पर आज तो नहीं

हो तभी तो ऐसा कह पा रहे हो। काश मैं भी ऐसा हो पाती। किन्तु क्या कभी हम ऐसा हो पाती हैं? निर्लिप्तता, तुम पुरुषों को शोभा देती हो, किन्तु नारी तो प्रजनन के कीचड़ में आपूर्ण सनी रहती है अकलंक! इसलिए ऐसा सोचना मेरे लिए अशुभ है, और अशुभ का मुकुट पहनकर ही यहाँ से क्या बिदा होना पड़ेगा?"

और वह फिर रोने-रोने को हो गयी है !

मेरा मन भी जाने क्यों खिन्न तथा उदास हो गया है ।

रंजना ने अपनी जलती आँखों पर अपने हाथ में मेरा हाथ लेकर फेरना शुरू कर दिया है ।

रंजना की आँखों पर मेरा हाथ धीमे-धीमे फिर रहा है ।

“वान निकोलस का वह बँगला और उपवन थोड़े ऊँचाई पर होने के कारण काफी लम्बे बसे हुए नगर का अंश यहाँ से बहुत साफ़ दिखायी देता था। एक ओर बंदरगाह दिखायी दे रहा था जिसके वारे में मुझे वान निकोलस ने बताया था कि उसके पिता फ़िलिप निकोलस ने सन् १९२१ में कुछ ठेका इन बंदरगाहों के बनवाने का लिया था और इसके लिए घूस में उन्हें अपनी वह सम्पत्ति जो ‘पोल्डर्स’ के समये कमायी थी, का आधा भाग सरकारी अफ़सरों को दे देना पड़ा था। इस पर लोगों ने उन्हें कहा था कि वह अपनी लड़की की भाँति ही पागल हो गया है परन्तु फ़िलिप निकोलस ने इस बंदरगाह के ठेके से, चौगुना-पंचगुना ज्यादा ही कमाया और इसीलिए आम्सटरडम के आसपास सैकड़ों की संख्या में जो बगीचों वाले गाँव हैं फ़िलिप ने उनमें से कइयों को खरीद लिया था। गवर्नमेंट जावा, मलाया के उपनिवेशों से रबड़ मँगवाकर रबड़ की सड़कें बनवाना चाह रही है। उसका ठेका भी उन दिनों फ़िलिप लेने की चिन्ता में था। वान को अपने पिता फ़िलिप से बिल्कुल प्रेम नहीं था, क्योंकि उन्हें मात्र पैसे के अलावा और किसी भी चीज़ में सार्थकता नहीं दिखलायी पड़ती ।

“मैं, वान निकोलस के उपवने खड़ी धुँव में लियटे हुए शहर को देख रही थी, वह कहीं बाहर से लौटा था और मुझे शहर की तरफ़ बगीचे लगी रेलिंग के पास खड़ी देख, अभिवादन करके मेरे पास हैट उतारकर खड़ा हो गया। वह उस समय गहरे भूरे रंग का सूट पहने था—कोट, जो कि पीछे की ओर से लम्बी काट लेकर सिला हुआ था, वेस्ट कोट में उसकी सोने की चेन उसकी साँस के साथ ही ऊपर-नीचे होते हुए हिल रही थी, पतली काट का उसका पेंट और गले में बहुत ही उमदा मफ़ेद स्कार्फ़ लपेटे वह अत्यन्त सुन्दर लग रहा था। बाहर की ठंड से लीटने के कारण उसके गालों के पास की हड्डी एकदम लाल चिकनी होकर चमक रही थी। उसकी आँखों में हल्की लाली थी जो बतला रही थी कि वह बहुत ड्रिंक करता रहा है। उसके पतले-पतले ओठों में मुस्कान बहुत ही कोमलता के साथ दर्बी हुई थी। उसका कहना था कि वह इंग्लैंड भी गया है, फ़्रांस भी गया है, और जर्मनी भी, पर हालैंड—हालैंड ही है, और आम्सटरडम से सुन्दर स्थान जब

ठंडे देशों में नहीं है तो गरम मुल्कों में तो क्या होगा (यह ठंडे-गरम का तर्क कदाचित् उसके सामने खड़ी महिला अतिथि को ध्यान में रखकर कहा गया होगा) किन्तु गलत उसने कुछ नहीं कहा था क्योंकि आम्सटरडम मुझे भी बहुत पसंद आया।

“वह मुझे मेरे कमरे तक छोड़ गया और दूसरे पहर यदि ऋतु साफ़ रही तो आम्सटरडम घूमा जायगा, कहकर अपना लम्बा ऊँचा हैट पहन तथा हाथ में बेंत को हल्के घुमाते हुए कमरे के बाहर निकल गया। मैंने दुआर बंद कर लिया मिर्फ़ उमे छिपकर देखने को ख्याल से कि वह जीना चढ़ते समय कहीं कूबड़ निकालकर तो नहीं चढ़ता या वैसा ही सुन्दर लगता है? किन्तु वह जीना चढ़ते समय भी सुन्दर लग रहा था। कूबड़ निकालकर चलनेवाले से हम स्त्रियों को बहुत ही घृणा रहनी है।

“जांस्टीन मेरा पति लगभग बारह वजे लोटा और वह अपने कई मित्रों, डाक्टरों-वगैरह से मिलकर बहुत प्रसन्न था। वह चाहने लगा कि उसकी पत्नी भी उसकी इस प्रसन्नता में आज साँझे डांस की अनुमति देकर उसे कृतज्ञ करे। लंच के बाद वान निकोलस, हमें अपने कमरे ले गया और मैंने देखा कि उसके पास आवश्यकता से भी कहीं अधिक स्थान है और वह यहाँ अकेला, विल्कुल अकेला रहता है। उसकी अपनी एक चित्रों की गैलरी है, जिसमें पुराने से पुराने चित्रकारों के तथा उसके समकालीन प्रसिद्ध चित्रकारों के छविचित्र हैं। उसने अपने चित्रों की गैलरी विल्कुल अलग बनायी हुई है और जहाँ उसने बचपन की मूर्खताओं वाले चित्रों से लेकर आज तक के बहूत से चित्र एकत्रित कर रखे थे। उमे अपने चित्रों में, संगीते, और स्वयं के व्यक्तित्वे एक बहुत बड़ा अभाव लगता है। वह मानता है कि उसकी कला में रंगाभरण एवं मधुर स्वरगुम्फन भले ही हो किन्तु मूल प्रेरणा का सम्पूर्ण रूपे अभाव है। अपनी कला में उमे आत्मा का सौंदर्य नहीं लगता था। यह कहते हुए वह कई बार पियानो के परदे की तरह हँसने लगता था। वान निकोलस को संगीत में इतनी अधिक रुचि थी कि वह बचपन में रात-रात भर कन्सर्ट गेवो, नीदरलैंड ऑपेरो में हमेशा व्यस्त रहता था। वान निकोलस आम्सटरडम का एक बहुत ही प्रसिद्ध व्यक्ति माना जाता था। वह स्वयं आर्केस्ट्रा, निर्माण भी करता था और उसने संगीत को कई नये-नये आपेरा-संगीत दिये थे। उसका अपना पियानो पूरे आम्सटरडम में प्रसिद्ध था। मेरा पति जांस्टीन कहता था कि वान निकोलस बचपन में रात को घर से भाग-भागकर सड़कों पर बेला बजानेवालों के साथ घूमा करता था। वह भिखारियों, मजदूरों की संगीत-सभाओं में हमेशा बेला बजाया करता था।

“मैं मानती हूँ कि वान का प्रभाव मेरे मन पर होता जा रहा था, किन्तु मैं इस बार अपने को सभी प्रकार के संकल्प-विकल्प से परे ले जाना चाहती थी, क्योंकि किसी भी दूसरे प्रकार के विचार आने का अर्थ था -- भयंकर परिवर्तन !! मैं उन दिनों अपने जांस्टीन के साथ अधिक से अधिक रहा करती थी और प्रयत्न करती थी कि किसी भी प्रकार

वान से अकेले में न मिलूँ, क्योंकि मुझे अब अपने पर से बहुत पहले ही विश्वास उठ गया था ।

“राते देर तक जो पियानो की ध्वनि संगे हल्की मंद रागिनी उठ-उठकर वान की खिड़की से निकल सुनसान बगीचे एवं मुझ तक आती थी जो कि डच भापा में होने के कारण समझ में तो नहीं आती थी, किन्तु, वह इतनी मंद और काँपती हुई हुआ करती थी कि जैसे यह स्वर प्रिया, पूरे यूरोप और समुद्र पार करती हुई मुझे भारतवर्ष से यहाँ खींच लायी है । और अकलंक ! कई बार मैं रात-रात भर सो नहीं पाती थी । क्योंकि वान पूरी रात गाकर ही बिता दिया करता था । मैं तब अपने को इस नये मोह से बचाने के लिए, पास के पलंग पर सोये हुए अपने पति की बाँहों को अपने मन पर ओढ़कर, जैसे इन स्वर प्रियाओं से बचना चाहती थी ओर जांस्टीन मेरे बालों में हाथ फेरते हुए, मेरे काँपते मन को अपने भुजपाशों से संतुष्ट कर देता था । किन्तु वे स्वर प्रियाएँ मेरे मन को बारम्बार खिड़की के बाहर बुलाती थीं—जो कुहरे के रूप में शतशः रूपों में घिरती थीं । मेरा पति मेरे अधरों पर अधर रखकर कहा करता था—

‘रंजना ! वान कितना मीठा गाता है और इन मधुमयी रातों में रूप के चंद्रमा की भाँति इस वान के ये नाइटिंगिल के मे स्वर ! ! जानती हो यह गान क्या है ?—

नाविक !

उत्तरी समुद्र में बहने वाली गर्म जलधाराओं में सम्मिलित होकर आना कारण कि वहाँ भाप के बादल गहरे, बहुत गहरे हो जाते हैं—

तुम लोटकर जब तक नहीं आओगे
मैं सपर के लिए तुम्हारे प्रतीक्षा करूँगी ।

वीथिकाएँ निर्जन हो जायेंगी—

उत्तर दिशाएँ पतझर भी आ जायेगा,

फूलों के रंग

वर्ष की ठंडी रूई से ढँक जायेंगे ।

परन्तु

मोर मन,

तुम्हारे जहाज के गोल पाल वाले ऊँचे मस्तूल को

दूर-दूर तक के आकाशों में खोजा करेगा —

उसी रीते

जैसे कि ‘ओरीरिया बोलिस’ के रंगमंडल

नक्षत्रों को ध्रुव प्रदेश खोजते हैं ! !

“और मैं अपने तन को पति की बाँहों में छोड़, मन उन संगे स्वरप्रियाओं के लिए जाने कहाँ-कहाँ उड़ानें मारती हुई, जाने कब तक सोचा करती और सो जाती थी ।

कदाचित् जांस्टीन तब मुझे रेपर ओढ़ा मेरे विस्तरे पर मुझे मुला जाता। एक नहीं अनेकों रातों मेंने इन मोहपाखी यात्रियों के लिए काटीं अकलंक ! मैं समझ नहीं पाती थी कि क्या कहूँ ? क्योंकि अब मेरे लिए वान एक स्वप्न था और यदि मैं स्वप्न के पीछे बराबर भागती रहूँगी तो कैसे क्या होगा ? और अकलंक ! मैं अपने पति से बराबर कहती थी कि वह शीघ्र अपनी डिस्पेंसरी खोलकर प्रेक्टिस शुरू कर दे क्योंकि वान का घर चाहे मित्र का घर हो, परन्तु हमें अलग रहना ही चाहिए।

“जांस्टीन स्वयं यही सब करने के लिए उतावला था, परन्तु उन दिनों पूर्वी और दक्षिणी हालैंड से बहुत से शरणार्थी आ-आकर आम्सटरडम में भर गये थे। भागकर आने वालों में सबसे अधिक तो पैसे वाले थे जो अपने-अपने परिवार लिये हुए उत्तर की ओर भाग आये थे और प्रतिदिन आम्सटरडम का स्टेशन ऐसे लोगों के आने में भरा रहता था। जर्मनों का दबाव बढ़ता जा रहा था, प्रत्येक दिन ऐसा लगता था कि यदि जर्मन इसी प्रकार बढ़ने रहें तो वे निश्चय ही हालैंड पर अधिकार कर लेंगे। महारानी जूलियाना कनाडा जा चुकी थीं। सरकार के सामने जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हो रहा था। सारी मड़कों फ़ौजी बूटों की कवायद से गुंजती रहती थीं, पर जर्मन सेना कही सकती नज़र नहीं आ रही थी। पैसे वाला वर्ग अपनी फ़र्माँ को, बैंकों को, बंद करके अमरीका भागने में लगा हुआ था। वान का पिता भी उत्तरपूर्व के उपनिवेशों में जापान के आक्रमणों के कारण बराबर चिन्ता में था, क्योंकि उसके रवड़ के जहाज नहीं आ पा रहे थे। अब और रवड़ की खरीद करने से उसे हानि होने की सम्भावना थी, क्योंकि वर्तमान सरकार के सामने उसके टिके रहने का प्रश्न महत्वपूर्ण हो रहा था। फ़िलिप निकोलस जर्मनों से गठबंधन करने की सोच रहा था, क्योंकि वह जान रहा था कि यदि जर्मन जीत गये तो उन्हें यहाँ के पूंजीपति वर्ग की आवश्यकता रहेगी और उसने अर्नहेम के आमपाम के मिलिट्री क्षेत्र में रसद और सामान पहुँचाने का ठेका हथिया लिया था। साथ ही उसने आम्सटरडम में मांस और मछली के आयात-निर्यात पर भी कब्ज़ा कर लिया था, क्योंकि उसने सरकार के सैनिक विभागों को युद्ध-पामग्री खरीदने के लिए हालैंड के सभी बैंकों के डाइरेक्टरों पर जोर डालकर पैसा दिलवाया था।

“उन दिनों बंदरगाहों पर सेनाएँ, फ़ौजी गोलाबारूद, भारी-भारी लड़ाई की मशीनें ही दिखलायी पड़ती थीं। छोटा व्यापारी वर्ग और बड़ा पूंजीपति वर्ग दोनों बाजारों से पैसा लूटकर अपने अमरीकन बैंकों में भेजते जा रहे थे। खाने की साधारण चीज़ें, कपड़ा सब का सब लड़ाई के मोर्चे पर भेजा रहा था। सारे कल-कारखाने लड़ाई की वस्तुएँ बनाने में लगे हुए थे। निम्नवर्ग के सामने लड़ाई की विभीषिका मुंह खोले खड़ी थी। फ़ैक्टरियों में मजदूर अठारह और बीस घंटे से भी ज्यादा काम कर रहे थे। डच सरकार तथा व्यापार पर ब्रिटेन और अमरीका की सरकारें, फ़ौजी शासन कर रही थीं।

“परन्तु अकलंक ! वान निकोलस के आर्कस्ट्रा के स्वर फिर भी नित्य राते

उठे थे। जीवन दो भागों में बँटा हुआ था—उधर ऑपेराघरों में सिम्फनीज रागनियाँ लहरा रही थीं और दूसरी ओर फ्रैक्टरियों में लड़ई का सामान बनाता हुआ मजदूर बीस घंटे की कड़ी मेहनत में पिसा जा रहा था। मुझे अपने आप से घृणा हो रही थी, किन्तु वान को एक मुस्कान। मुझे मोह की रंगीन साँझ में बाँध लेती थी। मैं समुद्र तट पर खड़ी-खड़ी वान के बारे में सोचा करती थी—जो कि मेरे पास ही खड़ा रहा करता था—कि कैसा स्वप्नशील व्यक्ति है, स्वर और रंगों के माध्यम से अनेक रूपों और भावों की सृष्टि में विश्व को ओतप्रोत कर देने वाला यह वान, मेरे कितने निकट, विल्कुल इतने पाम जितने कि आलिंगन में कोई व्यक्ति पास आ जाता है—परन्तु;

“ओर अकलंक ! मुझे लगता कि कहीं अब ऐसा न हो कि जांस्टीन भी मेरे जीवन में विकनी घाटी बन जाये और मैं फिर वहाँ से फिसल पड़ूँ। क्योंकि फिसलते-फिसलते अब किसी चीज़ पर मेरा विश्वास नहीं रह गया है। मैंने कितनी बार जांस्टीन से अनुनय-विनय की थी,

‘जान ! किसी भी तरह तुम अब अपना काज शुरू कर दो’—

परन्तु बचारा जान अपने लाख प्रयत्नों के बाद भी डिस्पेंसरी नहीं खोल पा रहा था क्योंकि सरकार उसे बाध्य कर रही थी कि फ्रंट पर जाना होगा कारण कि वह मिलिट्री में एक प्रमुख सर्जन माना जाता था।

“मुझे ठीक याद है अकलंक ! जब जान के युद्ध में जाने का निश्चय हो चुका, तब हम लोग मारकेन टापू पर सात दिन बिताने गये थे। वान से विदा लेते समय उसकी आँखों का भाव मैं समझ रही थी कि—रंजना ! तुम अवश्य पति संगे जाओ, किन्तु मेरी स्वरप्रियाएँ ओर रंग तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे—और उसने फिर मेरा हाथ चूमकर कितनी नम्रता से हैट उतार, झुककर मुझे जहाज़ पर चढ़ाया था और बहुत देर तक मैं डेक पर खड़ी-खड़ी देखती रही थी कि उसका वह श्वेत हिलता हुआ रुमाल ऐसा लग रहा था जैसे कुहरे में कोई ब्लाका उड़ रही हो।

“जान ओर मैं उम टापू पर पूरे सात दिन रहे ओर मैं अनुभव कर रही थी कि मुझे अपने पति को इतना प्यार करना है इस बार कि अपने मन में ऐसी कोई संधि न रहे जिसमें वान ही क्या ओर भी कोई प्रवेश न कर सके ! पहले यह टापू ‘जी डेयर जी’—कहा जाता था। यहाँ के लोगों के लकड़ी के लट्ठों पर बने मकान बहुत नैनप्रिय लगते हैं अकलंक ! हम लोगों ने इस टापू के एकान्त छोर पर एक लट्ठों पर बना लकड़ी का मकान किराये पर लिया। दिन-दिन भर समुद्री हवा और बर्फ़ पर अपने पैरों को धँसाते मछलियाँ पकड़ने हुए हम इतना घूमते थे कि कई बार अपने निवास पर लौटना भी दूभर हो जाता था। किन्तु इस सबके पीछे कितना उत्साह और गहरी प्रसन्नता थी। जान की बेखन की गरमीवाली गोरी बाँहें, अपने कंधों पर डाल जीवन भर मैं घूमना चाहती थी—

पर प्रत्येक क्षण वान निकोलस अपनी छड़ी घुमाता हुआ, श्वेत स्कार्फ बाँधे मुस्कराता मेरे सामने खड़ा हो जाता था, और मैं पागल हो जानी थी।

“जान को जाननेवाले इस टापू पर बहुत थोड़े लोग रह गये थे। क्योंकि एक तो वह बहुत पहले यहाँ से चला गया था और दूसरे जो साथी थे उनमें से कुछ तो नीचे हालैंड में जाकर बस गये थे और कुछ पोलंडर तथा युद्ध के लिए इस टापू को छोड़ चुके थे। जब कभी कोई मारकेनी स्त्री अपनी चटकीली रंगीन वेशभूषा में दिखायी पड़ती थी तो जान को अपनी माँ स्मरण आती थी। इस टापू पर जो भी जान को जानता था वह उसकी विचित्र, किन्तु सुन्दर पत्नी पर आश्चर्य एवं प्रसन्नता प्रकट करता था, और जब जान उन्हें बतलाता था कि वह अपनी पत्नी ईस्ट इंडिया कम्पनीवाले देश से लाया है तो देहाती मारकेन निवासियों की भूरी सफेद पलकों, प्रसन्नता में बन्दरों की तरह खुलने-मिचने लगती थीं।

“मैं यहाँ सात दिन से अधिक ठहरना चाहती थी, क्योंकि एक तो जान के युद्ध पर जाने में अभी देरी थी और दूसरे मैं वान के प्रभाव को अपने मन में सम्पूर्ण रूपे नष्ट करना चाह रही थी। एक ओर कारण यह भी था कि अगले मन्ताह जो वान का ‘नाइट वाच’ वाला ऑपेरा हो रहा था उसमें मैं सम्मिलित नहीं होना चाहती थी। परन्तु मेरा पति जान, अपने मित्र की इस कृति को किसी भी मूल्य पर देवना नहीं छोड़ सकता था। मैं स्वयं से संवर्ध कर रही थी। भला जान को मैं कैसे बताती कि वान से मैं क्यों दूर रहना चाहती हूँ ? ओर हम लोग आम्पटरडम के लिए ठीक समय पर रवाना हुए।

“जिस दिन हम वापस वान निकोलस के घर पहुँचे, ऑपेरा में दो दिन और शेष थे। वह उन दिनों, दिन दिन भर रिहर्मल में व्यस्त रहता था। घर भी बहुत राते लौटा करता था। उस रात जब वह घर देर से लौटा और उसे मालूम हुआ कि हम लोग लौट आये हैं, तो वह सीधा हम लोगों के कमरे की तरफ आया, क्योंकि कमरे में अभी तक प्रकाश था और उसे पूर्ण विश्वास था कि रंजना जाग रही होगी। जब धीरे उसने दुआर खोला, मैं यद्यपि कुछ पढ़ रही थी परन्तु सच बात तो यह थी अकलंक ! कि मैं वान की प्रतीक्षा कर रही थी—मे समझ गयी कि वान ही है और मैंने मुड़कर देखा तो उसके बाल बहुत ही अस्त व्यस्त तथा मुखे गहरी थकान के काले चिन्ह दिखायी पड़ रहे थे। जान पास ही के पलंग पर गहरी नींद में सो रहा था।

हम दोनों कमरे के बाहर आये और वान के कमरे में ऊपर पहुँचे। कदाचित रात के तीन से भी ज्यादा हो रहा था। अपने को गरम पानी से स्वस्थ बनाते हुए वान ने पूछा—”

‘रंजना ! यात्रा कैसी रही ?’

ओर मैं बैठी हुई वान की आँखों में पिछले दिनों के विरह का इतिहास पढ़ रही थी। जब उसने मुझे चुप देखा तो उसने पूछा—

‘रंजना ! क्या कोई गान सुनना पसंद करोगी ?’

और मैं तो जानती थी कि वान काँपते स्वरों के रेगमी बंधनों में मेरे मन को बाँध लेगा तारपोर मेरा क्या बस चल सकेगा ? वान के चेहरे पर गहरी प्रसन्नता और निरपेक्ष गम्भीरता दोनों साथ साथ दिखलायी पड़ रही थीं। उसकी बगल में बैठते हुए मैंने उसके बालों की लटों को ठीक करना शुरू किया। उसकी आँखों में जाने कितने इंद्रधनुष बनते-मिटते जा रहे थे। उसने आज पहली बार मुझे अपनी बाँहों में भरकर मेरे सदा के प्यासे मन को चुम्बनों और आलिंगनों से भर दिया। अकलंक ! कहना तो नहीं चाहिए पर मुझे लगा कि मैं कदाचित् बहुत दिनों से प्यासी थी और वह भी इसी जल की—पर उसी क्षण इस विचार ने कि जान नीचे सो रहा है, वह मेरा पति है, और उसके विश्वासों को मैं वान के चुम्बनों द्वारा जूठा कर रही हूँ, मुझे विचलित कर दिया और मैं तेजी के साथ वान से अपने को छुड़ाकर नीचे अपने पति के कमरे की ओर भागी। मेरा पति उस समय भी गहरी नींद में सो रहा था। मैंने उसके सोते हुए मुख पर, जिस पर अंगीठी की आग की लाल छाया गिरकर उस मुख को ताँबे के रंग का बनाये हुए थी, अपना एक बहुत हल्का मीठा चुम्बन अंकित किया। मैं जान को जगाकर अपना तन मन आज पूरी तरह सम्पूर्ण मन संगे अंतिम वार तक के लिए दे देने पर तुली हुई थी, परन्तु मेरे मन को हल्की ठेस लगी कि क्या यह अच्छा होगा कि इस गहरी नींद के प्रतिदाने मैं अपने हाहाकार से भरे मन और कितने ही आलिंगनों की छाया लिये हुए इस तन को दूँ ? मेरा मन बहुत उद्विग्न हो रहा था अकलंक ! वान इतनी रात गये पियानो पर वही ‘प्रतीक्षा-गान’ दोहरा रहा था —

नाविक !

उत्तरी समुद्र में धँसे वाली गर्म जलधारों सम्मिलकर आना
कारण कि वहाँ भाप के बादल गहरे, बहुत गहरे हो जाते हैं—

तुम लौटकर जब तक नहीं आओगे

मैं सपर के लिए तुम्हारे प्रतीक्षा करूँगी।

वीथिकाएँ सुनसान हो जाएंगी—

उत्तर दिशाएँ पतझर भी आजायेगा,

फूलों के रंग

बर्फ की ठंडी रुई में ढँक जाएंगे।

परन्तु

मोर मन

तुम्हारे जहाज के गोलपाल वाले ऊँचे मस्तूल को

दूर-दूर तक के आकाशों खोजा करेगा—

उसी रीते

जैसे कि 'ओरीरिया बोलिस' के रंगमंडल
नक्षत्रों को ध्रुव-प्रदेशे खोजते हैं !!

“जिस रात वान निकोलस का ऑपेरा होने को था, मेरे पति जास्टीन और वान दोनों के मुख प्रसन्नता से भरे दिखलायी दे रहे थे। जब-जब भी मैं वान के साथ आम्स-टरडम में बाहर निकली, लोगों का ध्यान मेरी ओर आकर्षित हुआ है और मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया था कि वान आम्सटरडम का वहुन ही प्रसिद्ध तथा सम्मान्त व्यक्ति है। अकलंक ! हँसोगे, किन्तु सचमुच ही मुझे लोग वान की 'भारतीय प्रेमिका' तक कहने लग रहे थे।

“वह दिन आम्सटरडम का वह सबसे बड़ा कलात्मक प्रदर्शन का दिन था। जब मैं वान और जान के साथ आपेरा घर पहुँची, लोगों का एक दल वान की प्रतीक्षा में बाहर ही खड़ा था। वैसे लोग, मुझे पहचानने लगे थे फिर भी कई सम्मान्त व्यक्तियों से वान ने मेरा परिचय कराया। वान, मुझे और जान को बिठलाकर मंच पर चला गया। मुझ अपरिचित को साड़ी में देखकर लोगों की दृष्टियाँ उठी की उठी रह जाती थीं। अकलंक ! मेरी सचेष्ट सज्जा भी चाहे कारण रही हो किन्तु मैं लोगों की ओर न देखते हुए भी अनुभव कर रही थी कि वे सब नीच नयन मुझे ही देख रहे थे। तभी पर्दा उठा और स्वरगंधर्व की भाँति वान निकोलस, जो कि इस आयोजन के लिए विशेष परिधान पहने हुए था—अभिवादन कर मुस्कराते हुए रेम्ब्रेन्ट की कला की महानता में बोलने लगा। मंच के प्रकाशपुंज में वह नारियों की सी ऊँचाईवाला व्यक्ति—किस मंत्रमुग्ध भावे मेरी ओर देखते हुए बोल रहा था—मैं कई बार सहम उठी थी कि कहीं जान को कुछ आभास न हो आये। उसकी उस समय की आँखों में बिलकुल दूसरी ही भाषा थी कि 'रंजना ! तुम मेरी वास्तविक कला हो। तुम ही तो वह हो जिसके कारण मेरी कला प्राणवंत होगी, तुम्हें खोजते तो आँखें पथरा चली थीं’—और तब वान का 'नाइट वाच' वाला प्रदर्शन प्रारंभ हुआ। पास बैठे हुए लोगों का उत्साह एवं प्रसन्नता मेरी आँखों में वैसी ही चमक भर जाते थे जैसे बिजलियाँ बादलों की नीली कोरों पर चाँदी की गोठ जड़ जाती है।

रूप, स्वर एवं छवि की दृष्टि से वह आपेरा, काल्पनिक सृष्टि भले ही रहा हो, पर सभी पात्र कितने यथार्थ की भूमि पर खड़े थे। इस महान ऑपेरा के सृष्टा को मैंने मोहा था—मैंने उसे प्रेरणा दी थी—और मुझे लगने लगा कि मैं इन सबसे ऊपर हूँ इस महान सृष्टि की आत्मा तो मैं हूँ—वान और उसकी ये अभिव्यक्ति के रूप, रंग, संगीत मुझ प्रेरणा के सम्मुख कितने बौने हैं !! वान को मैंने मोहा है। आमी प्रज्ञा !!

“जिस समय ऑपेरा समाप्त हुआ जान ने मेरा कंधा हिलाते हुए कहा—

‘रंजना ! चलोगी नहीं ?’—

“ओर अकलंक ! मैं उस समय स्वप्न देख रही थी कि—मैं और वान हंसमिथन की

मानी चाँदनी भरे आकाशों उड़ते हुए चंद्रमा को पकड़ने के लिए संतरित हैं, और वान के पंख बारम्बार मेरे अंगों को छू रहे हैं—नीचे धरती पर गोरी चमचमाती बरफ़ बिछी है—केवल आमी, वान आर चंद्रमा—कि तभी जान ने मेरा कंधा हिलाया। मंच पर से बच्चों की भाँति प्रसन्न वान ने दौड़ते हुए आकर मेरा हाथ थामते हुए पूछा—

‘ऑपेरा कैसा था रंजना !’

“और मुझे पहली बार लगा कि वान बिल्कुल बच्चा है। उत्तर देने में थोड़ी सी भी देर कर देने का अर्थ होगा कि वान के टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे। मैं अपने दोनों हाथों में उसके काँपते हुए दोनों हाथों को लेकर केवल यही कह सकी—

‘वान, तुम समय की मानी विराट् ओर महान !!’

“जिस समय हम लोग बधाइयों और लोगों की प्रसन्न भीड़ में अलग हुए तब उसने धीरे से कहा था—

‘तुम्हारी बधाई मेरे जीवन के आकाश का उज्ज्वल नक्षत्र है रंजना !’

“और मेरी बधाई उसके यश के आकाश का सबसे उज्ज्वल नक्षत्र है, यह मैं समझ गयी थी।

“मैंने कितने आवेशे उस ऑपेरा के बाद आम्सटरडम की वे चमचमाती हुई सुन्दर विशाल सड़कें, बग़ी में बैठे हुए पार कीं और रास्ते भर वान मेरे बायें हाथ को अपने हाथ से दबाते हुए आया था। दाहिने हाथ पर बैठा हुआ जान कदाचित् इस बात से प्रसन्न हो रहा था कि उसकी पत्नी का मन यहाँ अब लग जायेगा, क्योंकि पिछले दिनों से वह इसी बात की चिन्ता में था और कई बार वह उसकी चर्चा भी मुझसे कर चुका था। वह इस समय इस चिन्ता से मुक्त था और उसे विश्वास हो चला था कि उसकी पत्नी को अब हालैंड प्रिय हो जायेगा। उसकी इस प्रसन्नता की झलक बग़ी में आते हुए हल्के प्रकाशे स्पष्ट दिखायी पड़ रही थी।

“रात बहुत देर तक हम लोगों ने उस ‘नाइट वाच’ वाले ऑपेरा की चर्चा की। जान, जो कि हमेशा वान निकोलस की कला का प्रशंसक रहा है, उस रात बहुत प्रभावित शब्दों में कह रहा था कि युद्धोत्तरकालीन कला और संगीत पर वान का प्रभाव गहरा और परिपक्व रूपे आ रहा है। हम लोग कला की बातों में उलझे हुए थे और हालैंड की सड़कें सो रही थी। पूर्वी और दक्षिणी हालैंड कदाचित् जर्मन बमों से छलनी हो रहे होंगे। वहाँ का आकाश उस समय भी पीली लपटों में लिपटा हुआ गरम हो गया होगा, परन्तु आम्सटरडम तब भी वान निकोलस के ऑपेरा के मन्द स्वरों में तन्मय था और अब अपने-अपने गरम कमरों, नाइट सूटों में लिपटा हुआ सोने की तैयारी कर रहा था। वान की चलती बेला की मुस्कान मुझे अभी तक स्मरण है अकलंक ! जैसे नील गगन के पियानो की संगीत की उजली रीढ़ हो !!

“वान के साथ ही मैंने फ़िलिप निकोलस को एक बार देखा था, तब फ़िलिप

अपने पैसों के बल पर हालैंड की राजनीति में प्रवेश करना चाह रहा था। उन दिनों फ़िलिप ने 'कैथोलिक पीपुल्स पार्टी' को अपने पैसों से क्रय लिया था। वान को वह बराबर अपने व्यापार के किसी न किसी विभागे लगाना चाहता था ताकि वह राजनीति में खुलकर सामने आ सके, किन्तु वान के कलात्मक व्यक्तित्व के सामने फ़िलिप चुप रह जाया करता था। पिता-पुत्र के सम्बन्ध अंदर से काफ़ी कड़वे थे क्योंकि फ़िलिप ने साठ साल की उम्र में वान की इच्छा के विरुद्ध एक कैथोलिक वृद्धा से पाँचवीं बार विवाह किया था। फ़िलिप ने यह विवाह मात्र अपने राजनीतिक महत्त्व को बढ़ाने के लिए किया था, क्योंकि यह वृद्धा उन्नेच्छ के सभी पादरियों पर अपना प्रभाव रखती थी, और इस विवाह से कैथोलिक पादरियों के बीच फ़िलिप ने अपना राजनीतिक महत्त्व बढ़ा लिया था। फ़िलिप की यह नयी पत्नी उन्नेच्छ से भागकर थोड़े दिन पहले आम्सटरडम में आकर फ़िलिप के साथ ही रहने लगी थी और इसका नाम मेरी था। मेरी के माता-पिता दोनों कनाडियन थे, परन्तु बहुत पहले ही वे हालैंड में आकर बस गये थे। मेरी ने अपनी बहुत सारी अस्तरवीक और होल्टन के पास की धरती लड़ाई की कब्रगाहों के लिए इंगलैंड और कनाडा की सरकारों को दे दी थीं, और अब वह अपने पति फ़िलिप के पास रहने चली आयी थी। अपनी पत्नी द्वारा युद्ध की कब्रगाहों के लिए ज़मीन दिलवाने पर सभी मिलिट्री अफ़सरों के बीच में भी फ़िलिप का मान बढ़ गया था। वान, अपने पिता की इस पत्नी से मिलने कभी नहीं गया था, बल्कि वह फ़िलिप की दूसरी किसी भी पत्नी से मिलने पहले भी कभी नहीं गया था। पुत्र के इस आचरण से फ़िलिप बहुत नाग़ज़ रहा करता था, परन्तु वान के व्यक्तित्व के सामने फ़िलिप को मदा ही चुप रह जाना पड़ता था। वान शादी करने का कभी पक्षपाती नहीं था, क्योंकि एक बार वह प्रेम में वह गया था। प्रेमिका के धोखा देने पर जीवन भर के लिए विवाह न करने का संकल्प कर चुका था—और अकलंक ! मेरा दुर्भाग्य कि वही वान रंजना के बिना एक पल का जीवन भी भारी समझने लगा।

“उन दिनों जांस्टीन जाने की तैयारी में लगा था और उसे जल्दी ही चला जाना चाहिए था, परन्तु मैं गर्भवती थी, और वह लड़ाई पर जा रहा था इसलिए हम लोग अधिक से अधिक साथ रहना चाह रहे थे। जिस दिन उसके जाने का मुहूर्त आ ही गया वान ने और मैंने निश्चय किया कि जान को उन्नेच्छ तक पहुँचाया जायगा, जहाँ वह रिपोर्ट करने के बाद आगे मोर्चे पर चला जायगा। जब मैंने भी उन्नेच्छ तक चलने की बात कही थी, मुझे अभी तक याद है अकलंक ! जान की आँखों में जल भर आया था और वह मेरे बच्चे की तरह मेरी जाँघों पर एक क्षण सिर रखकर झुक गया। मैं जानती हूँ वह एक बहुत सीधा व्यक्ति था, उसने मुझे बहुत चाहा; और पत्नी की तरह मैंने भी उसे संतुष्ट किया। परन्तु वान निकोलस ने बीच में आकर मुझे उसके प्रति ईमानदार नहीं बने रहने दिया। जान के मना करने पर भी वान ने उसे मजबूर कर दिया था कि रंजना,

इस देश से बिल्कुल अपरिचित है, फिर जान लड़ाई पर जा रहा है, तीसरे रंजना गर्भवती है, इसलिए रंजना का अलग प्रबन्ध नहीं किया जा सकता। जब सब ठीक हो जायगा तब जान को अपने पैरों पर अलग तो खड़ा होना ही है। जान ने कितनी जोरों से वान की बाँहें दोनों हाथों से हिलाते हुए कहा था प्लेटफार्म पर कि—

‘वान ! तुम केवल संगीतज्ञ और चित्रकार ही नहीं हो एक पूर्ण मनुष्य भी हो’ और वान केवल हँस दिया था।

जब जांस्टीन उत्रेच्ट से आगे फ्रंट पर जाने के लिए विदा हुआ, मुझे सच ही बहुत बुरा लगा और मैंने पहली बार जान के कंधे पर रोते हुए सिर रख दिया था। मेरे आँसुओं ने उसका कंधा भिगो दिया था और कदाचित् उसके कंधे पर के वे मिलिट्री तारे भी भीग गये थे। उसने मेरे गालों पर थपकियाँ देते हुए कहा था —

‘रंजना ! अपने जान को कमजोर न बनाओ—फिर वान तो है ही, चिन्ता किस बात की ?’

उत्रेच्ट में वान ने मुझे बहुत घुमाया। वहाँ के चर्चों की ऊँचाइयाँ देखते देखते अकलंक ! आज तक मेरी गर्दन दर्द करती है। यहाँ से बहुत से लोग भागकर उत्तर की ओर चले गये थे। रात रात भर विमानों की ‘गूँ’ ‘गूँ’ नींद हराम कर देती थी, क्योंकि पास ही में अर्नहेम, ऊस्टरबीक वाले लड़ाई के फ्रंट थे जहाँ घमासान युद्ध हो रहा था।

“उत्रेच्ट और आम्सटरडम के रास्ते भर वान मुझे प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता रहा क्योंकि जान को विदा देते समय मेरी जो मानसिक स्थिति हो गयी थी वह उसे मालूम थी और उसने ट्रेन में मुझे बताया कि वह जांस्टीन को सबसे अधिक स्नह करता है। रास्ते भर वान मुझे अपने देश के बारे में बताता रहा कि कहाँ क्या हुआ है। किस तरह उसके देशवासियों ने इस धरती को समुद्र की डाढ़ों में से लड़-लड़कर छीना है और मुझे वराह अवतार की बात याद आ गयी। उसने भारत के बारे में बहुत कम पढ़ा था परन्तु वह यहाँ के संगीत और चित्रकारी के विषय में जानता था, तानसेन और अजन्ता दोनों ही नाम उसके लिए परिचित थे। उसने कितनी नम्रता तथा कोमलता के साथ हँसते हुए कहा था कि—

‘रंजना ! जान को लौट आने दो और अब की बार तुम्हारे साथ तुम्हारा भारत देखूँगा तथा तानसेन की कन्न पर एक आपरा तैयार करूँगा, साथ ही सुना है कि अजन्ता की चित्रकारी संसार की सर्वश्रेष्ठ चित्रकारी है, मैं उन चित्रकारों की महान कला के सम्मुख प्रार्थना में नतमस्तक होना चाहता हूँ।’—

“और हमारी ट्रेन उस आम्सटरडम प्रदेश के गुलाबी लंबे फूलों से भरी हुई धरती के बीच में से चली जा रही थी।

“जिन दिनों मुझे बच्चा होने वाला था, युद्ध की जलती लपटों के बीच से बड़ी मुश्किलों से जान आठ दिन के लिए आ सका था। जिस सांझ मैं अस्पताल में दर्द से

परेशान थी, जांस्टीन और वान निकोलस दोनों ही बाहर नवागान्तुक प्राणी की प्रतीक्षा में बैठे हुए थे। जब नर्स ने जाकर उन लोगों को सूचना दी कि 'एक लड़का' तब जान पागलों की भाँति दौड़ता हुआ आकर अपने खुरदरे काँपते हुए हाथों से मेरा हाथ दबाने लगा था। मेरे चेहरे पर कदाचित् पहली और अंतिम बार एक वास्तविक पत्नी के माँ बनने की स्वस्थ हँसी आयी थी और वान हम दोनों को देख-देखकर मेरे पैताने पलंग की रेलिंग पर कोहनी टिकाये अपनी छड़ी ऊँगलियों में नचा रहा था और एक क्षण को अकलंक ! मेरे मन में जाने कहाँ से यह भाव आया जिसके लिए, मैं अपने आप को कभी भी क्षमा नहीं कर सकती—

'काश, यह वान की संतान होती'---

ऐसा क्यों हुआ अकलंक !! —और तत्क्षण मैंने वान की ओर से अपनी आँखें हटाकर जान के सर्जनवाले हाथ, प्रसव के कारण अपने पीले चिकने गालों पर लेकर फेरना शुरू किया। मैं अनुभव करने लगी कि यदि ये हाथ न होंगे तो मैं कहीं भी, कभी भी भटक सकती हूँ। किन्तु ये हाथ इतने सबल नहीं हैं कि स्मृति में भी बल दे सकें और इसीलिए कि अब मैं स्वयं से डरती हूँ—इसलिए इन हाथों को अपने पास चाहती हूँ, पर यह भी जानती हूँ कि इन हाथों का महत्त्व जान के देश के लोगों के लिए बहुत अधिक है, लोगों की गोली खायी टाँगों और बाँहों के लिए ये हाथ जरूरी हैं, दवा हैं और मैं स्वार्थी बनकर इन हाथों को केवल अपना बनाकर नहीं रख सकूंगी।

"जान ने नर्स से बच्चे को लेकर अपने दोनों फैले हाथों पर लिटा लिया था और किताना प्रसन्न होते हुए कहा था —

'रंजना ! तुमने हालैंड को एक और सर्जन तथा सिपाही दिया जो बीमारों की सहायता करेगा साथ ही खूंखार जर्मनों से लड़ेगा भी।'—

और नर्स ने हँसते हुए बच्चे को लेकर मेरे पास लिटा दिया था। वान ने जान को टोकते हुए कहा था —

'रंजना ! मैंने इसीलिए कहा था कि बच्चा जान को कभी मत देना, वरना जान इसे सिपाही और सर्जन बना देगा। तुम इसे या तो अपने साथ रखना जिसमें यह बहुत सुन्दर हो, या फिर मुझे दे देना जिसमें यह एक कलाकार बन सके।'—और दोनों मित्र हँसने लगे थे—

"मेरा पति जान तब वापस फ्रंट पर जा चुका था जब मैं अस्पताल से लौटकर आयी थी। वान निकोलस उन दिनों चौबीसों घंटे मेरी देखभाल किया करता था और मेरे बच्चे के साथ खेला करता था। हँसते हुए कहा करता था—

'पता नहीं आकृति तो रंजना की पायी है मगर शक है कि कहीं जान के जैसा मिलिट्री दिमाग न हो।'—

और इस प्रकार मैं हँसते हुए स्वस्थ हो रही थी।

“वान निकोलस कई बार मेरे बच्चे को इतना अधिक स्नेह करता था कि जैसे उसकी अपनी ही वह सन्तान हो। जब वह थोड़ा बड़ा हुआ तब वान उसको अपने साथ ऊपर ले जाकर पियानो के पास लिटा देता था और अपने देश की लोरियाँ गाया करता था। हमेशा हँसकर वान कहा करता था कि—

‘तुम उसे और कोई भापा सिखा दोगी और बेचारा बच्चा डच सीखने से वंचित रह जायेगा तो उसे हालैंड छोड़कर भागना पड़ेगा!’—

कहते हुए वह बच्चे को जाने किस-किस तरह के फूलों के नाम, रंगों के नाम और वाद्य-यंत्रों के नाम सिखाता रहता था। बच्चे की आया को उसने कड़ा आदेश दे रखा था कि इस बच्चे को दूसरे बच्चों की अपेक्षा जल्द और अधिक शुद्ध डच आनी चाहिए।

“वान मेरे हाथ पर अपनी उँगलियाँ फेरने हुए दूर आया की गोदी में जाते हुए बच्चे को देख-देखकर कहता था कि मैं इसे वान निकोलस से कहीं अच्छा संगीतज्ञ और चित्रकार इसलिए बना सकूंगा क्योंकि इसे संस्कार रूपे अपनी माँ के देश का संगीत और चित्रकारी भी तो मिलेगी।—और मैं वान के इन विचारों में कितना खो जाती थी कि मेरा पुत्र एक दिन संगीतज्ञ और चित्रकार बनेगा जब कि इसका पिता प्रसिद्ध सर्जन है और इसकी माता ? और मैं अपने को किसी भी चीज़ पर टिकाना चाहने लगी, लेकिन फटी-फटी आँखों से स्वयं से प्रश्न करने लगती थी कि मैं क्या हूँ ?—कदाचित् सुन्दर, पर सुन्दरता तो शरीर का गुण है, क्या इस गुण पर विश्वास किया जा सकता है ? नहीं !!

“वान के निकट बैठकर मुझे इनती प्रसन्नता और इतनी मिठास का अनुभव क्यों होता है ? इसके बारे में मैं आज तक नहीं जान पायी।

एक साँझ—

“आया मेरे बच्चे को लेकर बाहर घूमने गयी थी और मैं दिन भर वान के पास, बहुत सारे पत्रों के लिखने के झमेले में जा नहीं सकी थी। गोधूरी को जब मैं ऊपर उसके पास गयी वह सिर नीवा करके कोई चित्र बना रहा था। लाइट जल रही थी। आज सुबह से ही गगने धूप इतनी उजली फैली थी कि पूरा आम्सटरडम एक खिले हुए सोना-सूरजमुखी की तरह लग रहा था। मेरी समझ में यह नहीं आया कि वान लाइट जलाकर दिन के इस चौथे पहर में क्या कर रहा है ? ठीक है, चित्र बनाये, यह तो इसका काज ही है पर दिन के प्रकाश में लाइट की क्या आवश्यकता ?

“मैं जब पास में पहुँची वह अपनी टेबल पर झुका हुआ इतना तन्मय था कि मेरे आने की आहट भी उसे नहीं हुई। वह पहले ‘वाश’ की तैयारी कर चुका था। मुझे लगा कि किसी स्त्री का चित्र है और कदाचित् वान ने रात इसी के पीछे काट दी थी। दिन हो आया, धूप भी आज है—इन सबका कुछ ध्यान ही नहीं है इसे।

और जब मैंने टेबल लैम्प को बुझाया तब वह चौंका और एक क्षण मेरी ओर देखते हुए मुझे अपने आलिंगने भरते हुए कहा—

“जानती हो किसका चित्र है ?”

“मैं नहीं जानती”—

“तो, फिर कल देखना”—

और कहते हुए मेरे वालों को सूँधने लगा । मैं समझ गयी कि वह मेरी ही छवि है जिसने वान को रात भर मॉने नहीं दिया है ।

“जब मेरा चित्र वह पूरा कर चुका और बड़े गर्व में उसने अपने कमरे के ठीक बीचें टाँगा वहाँ, जहाँ पहले उसने ‘प्रिंस आफ़ ऑरेंज’ सोम्य विलियम का चित्र टेंगा था । और जब वह मुझे तेउने नीचे आया उस समय मैं एक पत्र उमे लिखने बैठी थी और जो आधे से ज्यादा भी हो गया था । उसे इस तरह एकदम प्रसन्न, बाल बिखराये और ढीली कमीज़ जिसकी आस्तीनें चढ़ी हुई तथा तंग मोहरी का पेट पहने आते देखा तो मैं एकदम पीली पड़ गयी । मैं चाहने लगी कि उस पर मेरी मनोदशा अभिव्यक्त न हो और मैंने बहुत ही फीकी हँसी हँमते हुए उसका स्वागत किया था । मुझे परेशान देखकर भी वह समझ नहीं पाया था और हँमते हुए मेरी कमर में हाथ डालते हुए कहा—

“रंजना ! चलो ऊपर एक महिला आयी है तुम्हें उनसे मिलाना है ।”

और मैं जान रही थी कि उसने मेरा चित्र पूरा कर लिया है । जब वह सोम्य विलियम का चित्र उतार रहा था और मेरा चित्र टाँग रहा था तब मैं उमे छुपकर देख आयी थी और तभी पत्र लिखने बैठी थी । मैं जान रही थी कि वान मेरे लिए पागल है और मैं कदाचित् वान को उससे भी अधिक चाहने लगी थी । किन्तु मुझे जान और अपने बच्चे के प्रति ईमानदार बने रहना है—के विचार ने पत्र लिखने के लिए बाध्य किया था । जिस समय वह मुझे लेकर अपने कमरे में पहुँचा तो आशा कर रहा होगा कि रंजना शायद प्रसन्नता से भर जायेगी और वह उसे चुम्बनों से उसी तरह भर देगी जैसे भोर, फूल के पंखों को भर देती है ।

“किन्तु जब वान ने देखा कि मेरे चेहरे पर उसके अनुमान के अनुपाने एक अंश भी प्रसन्नता नहीं है तब उसके उत्साह पर पानी फिर गया । अकलंक ! यह नहीं था कि मैं अपने आपको वान निकोलस की चित्र गैलरी में देखकर प्रसन्न नहीं हुई थी, पर मैं क्या करती बताओ ? वह जिस गति में मेरी ओर बढ़ रहा था, उसी गति से मुझे पीछे हटता था, तभी तो दूरी यथावत् रह सकती थी, अन्यथा मैं बहुत पहले ही वान से टकरा गयी होती । किन्तु अकलंक ! मैं जो यह कह रही हूँ यह मिथ्यात्मक सत्य है ; या तुम चाहो तो अर्ध-सत्य की संज्ञा भी दे सकते हो । मेरे मन में कहीं छुपा हुआ यह भी एक भाव था कि सौंदर्यमयी रंजना को दर्प करने का यह प्रथम अवसर प्राप्त हुआ है । जबकि वान निकोलस जैसा

रूपवान, कलावान, धनवान, ज्ञानवान तथा महान कलाकार एक प्रेमी के रूपे प्राप्त हुआ है। तब तुम बताओ कि मेरे अंदर की दर्पमयी सुन्दरी हेलेन का अभिमान करना, क्या युक्तिसंगत, सहज नहीं था? रंजना के अंतरतम दर्प को गौरव के उच्च शिखरों तक पहुँचाने का श्रेय चित्रकार वान निकोलस को था। उस समय अकलंक! वान निकोलस की कला की प्रेरणा सुन्दरी रंजना ने यदि कलाकार को तृणवत् समझा तो क्या तुम नारी का यह मिथ्या अभिमान समझोगे?

“और बेचारा वान उस समय कितनी वेदना से सिर झुकाकर खड़ा हो गया जैसे उसने रंजना के निकट, उस नारी के निकट, जिसे वह जीवन में सब कुछ मानकर चल रहा है एक ऐसा अपराध किया है जिसे वह कलात्मक मान रहा था। अपनी दृष्टि में मेरी इस छवि को निर्मित करके उसने संसार के सभी नारी-चित्रों को पीछे छोड़ दिया था। अकलंक! मैंने उसके निकट क्या अपराध नहीं किया? क्या मैं नहीं जानती थी कि वह मुझे अत्यंत प्रेम करता है। मैंने अपने आप को तभी क्यों नहीं उमसे उमी भाँति अलग कर लिया, जैसे हम बिजली छू लेने पर झटका खाकर अग्न हो जाते हैं। और उम दिन अकलंक! उसकी कला की प्रेरणा के चरम क्षणों में मैंने अपने आप को धोखा दिया और अनायास ही अमजाने ठीक उसी तरह शतशः खंड में वान के टुकड़े-टुकड़े हो गये—जैसे शीशे का बर्तन हुआ इंद्रफूल किसी मूर्व के हाथों से गिर जाये और वह मूर्व अपने हाथ भी काट बैठे!!—किन्तु अंतरतम में बैठी हुई दर्पमयी सुन्दरी रंजना को कहीं हल्के प्रतिहिंसा का संतोष भी था, जिसे आज कह देने में मुझे कोई संकोच नहीं क्योंकि मेरे लिए अब शेष कुछ नहीं है। आर शेष की अकलंक! बाओ!!

“वान जाकर अपनी टेबल पर मिर थामकर बैठ गया और मैं अपनी भूल ठीक करने के लिए उसके कंधे पर हाथ रखकर खड़ी हो गयी।

“वान!”

परन्तु वान पत्थर के बस्त की भाँति चुप था—

“रंजना का ‘वान’ पुकारने का ढंग इस तरह का था कि मैं चौंक पड़ा हूँ, और मेरी वे सारी चेतनाएँ वापस लौट रही हैं जिन सब पर रंजना का प्रभाव था। कदाचित् बारह से अधिक ही होंगे। सुबह जो रंग आँखों में गिरा था वह इस समय तक भी जल रहा है। और रंग का ध्यान आते ही मुझे लगा कि इस नारी ने मुझे इतनी बार ‘अकलंक’ ‘अकलंक’ कहकर मुझसे अपना नाम तक छीन लिया है। मुझे एक क्षण को इस सामने बैठी हुई नारी की साहसिकता पर ईर्ष्या हुई जो जीवन न जीकर, उपन्यास जीकर मेरे सामने सवरे से बैठी हुई है। मैं सोचने लगा हूँ कि कभी एक क्षण को मुझे उपन्यास की एक पंक्ति ही जीने के लिए मिल जाती।

दूर पर बारह की गजर बज रही है और मुझे याद आ रहा है कि हौजरी में काम करते हुए रातपाली के मजदूर बगासी ले रहे होंगे। कुछ अपने बगलवालों को साँचा देखने

के लिए कहकर गंदे होटलों में बैठे चाय पी रहे होंगे तथा सस्ती सी मिगरेट पीते हुए खों-खों खांस रहे होंगे और आज की इस महँगाई पर नेहरू सरकार को गालियाँ दे रहे होंगे कि—

“अरे यार, ये सब चोर इकट्ठा हुए हैं”—

और उसके बाद अपनी नीली खाकी पतलूनें तथा गाढ़े के पाजामों और कमीजों में काटती हुई मैल को खुजलाते हुए वापस काम पर जा रहे होंगे और अपने गंदे हाथों से उजली बनियानें ‘खटा खट्’ बुनते चले जा रहे होंगे।

मैं इस तरह बहुत कुछ सोच सकता था पर मेरे हाथों पर रंजना का गदराया हुआ कोमल हाथ फिर रहा है और मैं जानता हूँ कि भावुक होने की सीमा पर पहुँच चुका हूँ। सच तो यह है कि यह मेरे सामने बैठी हुई नारी मेरी इस कमजोरी को भी भली भाँति पहचान गयी है और कदाचित् यह सब इसीलिए है भी। मैंने यह हटाना चाहा है, पर हँसकर उसने मेरा हाथ दावते हुए कहा—

“क्या तुम मुझे सचमुच ऐसा समझते हो अकलंक !”—

मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि इसका मतलब ‘ऐसा’ से क्या है ? यदि कुछ नीच या चरित्रहीन से है तो क्या मैं गलत सोचूँगा ? पर नहीं जी, मुझे क्या रंजना से !! मैं अनायास ही आया था आज, और अब विहान होने में कोई विशेष देर भी नहीं है जब कि मैं कानपुर होता हुआ कुछ दिनों में वापस विजगापट्टम पहुँच जाऊँगा जहाँ मेरी पत्नी है, मेरी बच्ची है, कमरा है, पुस्तकें हैं और मेरे मित्र हैं—तब रंजना कही भी तो नहीं होगी।

परन्तु क्या मैं सचमुच ही रंजना से आने को एकदम अलग रखकर देख सकता हूँ ? सोच ले जाना इस समय तो सम्भव है, किन्तु विहाने यही सब सोचना मेरे मन को चाकू की तरह धीरे-धीरे उसी तरह काटेगा जैसे बकरे की गर्दन !! मैं रंजना को बहुत ध्यान से देख रहा हूँ—

“क्या है अकलंक !”—कितने स्नेह से उसने कहा है।

रंजना के इस मोहक प्रश्न का मेरे पास क्या उत्तर है ?

“तुम सोच रहे होगे कि वान के निकट मेरा वह रूप, दर्प, प्रेम, सब छल था। किन्तु अकलंक ! मैं उसे प्रेम करती थी—हो सकता है तुम उसे छलनामय का रूप दो, यदि मेरे प्रेम में छलना का कोई अंश हुआ तो मैं उसे परिस्थिति ही कहूँगी। क्या तुम इस सबमें दोष मुझे ही दोगे ? जानती हूँ हम काज कर चुकने पर उसी तरह अपना कंधा हटा लेना चाहते हैं, जैसे शव को ले जानेवाले थोड़ी-थोड़ी देर में उस शव को किसी दूसरे के कंधे पर लाद देना चाहते हैं। ठीक भी तो है, प्रत्येक तो शिव की भाँति सती का शव लिये पूरी पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने से रहा ! यदि मैंने भी वही किया तो क्या बुरा किया ? जानती हूँ तुम कहोगे कि मैं क्यों बुरा मानूँगा ? ठीक

है कि ओठों का कहा हुआ यदि मन का भी हो जाया करता तो मुझे अपनी ओर से कुछ भी कहने को नहीं। ”

मैं इसका प्रतिवाद करूँगा क्योंकि यह तर्क से किसी के सामने भी सिद्ध कर सकती है जो कुछ उसने किया वही ठीक था।

“देखो रंजना ! तुमने अपने व्यक्तित्व को इतना फैला दिया कि उसमें की सारी गहराई नष्ट हो गयी, और सम्पर्क में आनेवाला छोटे से छोटा व्यक्ति भी तुम्हें आर-पार देख सका। तुम्हारे विशाल फैलाव का आतंक कहीं भी तो गहरा नहीं था, तभी तो आज सब स्थाने सूखकर अपने विगत को मात्र रेगिस्तान के रूपे देख पा रही हो जो प्यासा है, जिसमें पानी के नाम पर एक बूँद भी नहीं।”—

“मैं देखती हूँ कि तुम्हारी इस उपमा को ठीक मानकर तो मुझे लगेगा कि मैंने सब गलत किया।”—

रंजना ने सामने का दीवारों में कही देखते हुए कहा।

“न मानने को तो कोई प्रश्न ही नहीं अकलंक ! न तो तुम्हारी उपमा ही और न मेरा पश्चात्ताप ही विगत की अजगर जैसी चट्टानों को रंगफूल वाले कदम्ब में परिणत कर सकते हैं। इसीलिए तो विश्लेषण करके तुम मुझसे दूर ही जाओगे और और पश्चात्ताप करके मैं अपनी ही दृष्टि में गिर जाऊँगी। इमाइयों में जानते हो अंतिम क्षणों में सब स्वीकार कर लेने पर पादरियों का कहना है कि ईश्वर क्षमा कर देता है। अकलंक ! कितनी मज्ज की बात है। उस एक स्वर्गीय क्षमा को प्राप्त करने के लिए जानते हो कितना बड़ा बलिदान तुम्हें देना होता है ? पूरा जीवन !! परिताप के प्रतिदान में मिलती है ईश्वर की क्षमा !—कोन जाने कैसी होती है वह क्षमा ?? और पता नहीं मिलती भी है या नहीं—क्योंकि तब हृष्ट सुख-दुःख अनुभव करनेवाले इस शरीर और मन दोनों को त्यागने के जलते तटों पर होते हैं। इसके आगे किमने देखा कोई लोक है भी ! !”

मैं देख रहा हूँ कि वह झूठ कहती है कि उसे पश्चात्ताप नहीं हो रहा है—तब यह बार-बार आँखों में हल्की नमी क्यों ?

“जानते हो अकलंक ! तुम अपने मित्र से मिलने आये, यह सब सुनने नहीं आये थे। दोपहर से लेकर पूरी रात थकाने के लिए रंजना तुम्हें फिर मिल जायगी, इसकी भी तुम्हें कल्पना नहीं थी और बिना कुछ विरोध किये चुपचाप सुनने के लिए तुम बाध्य हुए हो। क्या, बहुत कुछ ऐसी ही बाध्यता मेरे पूरे जीवन के जीने में नहीं अनुभव कर सकते ? सहानुभूति क्या ‘स्व’ के लिए ही स्वीकारोगे, अन्य के लिए नहीं ?”

और वह मेरी ओर फटी हुई आँखों से देख रही है जिनमें लाल रंग के डोरे अँजें हुए हैं।

“अकलंक ! अभी कथा की परिममाप्ति थोड़े ही हुई है कि मैं तुम्हारे निर्णय और विश्लेषण को अंतिम मान लूँ—जानते हो मैंने अपने बच्चे का नाम तुम्हारे नाम से मिलता-जुलता ‘अमित’ रखवा था, और वृत्तिस्मा के दिन जान और वान दोनों ने मिलकर उसका पूरा नाम ‘विन्सेंट वान अमित’ रख दिया था। मैं उसे ‘अमित’ पुकारती थी, वान उसे ‘विन्सेंट’ पुकारता था और कभी-कभी छुट्टियों में आने पर जान उसे ‘वान दी यंगर’ कहता था।

“मैं उन दिनों बहुत प्रसन्न थी अकलंक ! अमित को वान दिन भर खेलने के लिए फूल, रंग और वाद्यों से घेर देता था। जान को कदाचित् सबसे अधिक प्रसन्नता थी कि उसकी पत्नी आम्सटरडम में बहुत प्रसन्न है, और इसका कारण वह वान को मानता था ? मैं अमित को बुलाती ही रहती थी और वह वान की ओर देखकर मुस्कराता हुआ अपने छोटे हाथों में आने के लिए मना कर देता था। मैं उन दोनों को एक साथ देखती और मेरा मन एक हल्की उदामी में भर जाता था—कि वान को इस इतने गहरे प्रेम का प्रतिदान मैंने क्या दिया है !! कदाचित् यही कि वह मेरे लिए हमेशा विकल बना रहे !! नैकट्य की विभीषिका !!

मुझे उसने समाज के जिस वर्ग की एक प्रतिष्ठित महिला बना दिया था साथ ही मेरे उस चित्र के कारण मैं दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गयी थी—वे ऊँचाई के सबसे ऊँचे कंगूरे थे जहाँ मे पूरा आम्सटरडम, पूरा हालैंड रंगता हुआ लगता था। मैं नारी मे कला-आत्मा बनी अकलंक ! किन्तु जाने दो ।

“उम रात ‘नाइट वाच’ के कार्यक्रम पर आलोचना करते हुए उसने कहा था,—

‘रंजना ! आज के पहले तक भी वान ने स्वर और रंग की कल्पना-सृष्टि से हालैंड की कला को संवारा अवश्य था, परन्तु क्या उनमें वासी फूल की सी या कब्र पर चढ़ाये फूल की भाँति एक गहरी उदामी नहीं थी ? यह ठीक है, हालैंड ने उसकी उन कृतियों को भी कला माना, पर ऐसा लगता था कि मैं किसी की चिर प्रतीक्षा कर रहा था। जिस दिन जान के साथ हालैंड में तुम उतरी मुझे लगा कि मैं जिन मस्तूलों की प्रतीक्षा कर रहा था वे मस्तूल धीमे-धीमे लौटने हुए मेरे कुहरे भरे तटों पर आ रहे हैं और आज की रात जो कुछ भी मैंने दिया वह रंजना का दान है,—तब तो निमित्त मात्र है।’—

‘रंजना ! परन्तु वे मस्तूल किसी दूसरे पोत के मस्तूल हो चुके थे, कदाचित् कुछ क्षणों का व्यवधान हुआ था, किन्तु इससे क्या होता है, मैं फिर प्रतीक्षा करूँगा कि वे मस्तूल फिर कभी मेरे तटों पर, मेरे ही पोत के बनकर लौटें—प्रतीक्षा करना मेरा धर्म है—और प्रतीक्षा कर भी रहा हूँ रंजना। तुम खेद क्यों करती हो ??’

“नित रात को सोने से पूर्व वह मस्तूल वाला ‘प्रतीक्षा-गान’ जरूर सुनायी पड़ता और बेचैन होकर अपने पति के विचारों में खोयी बच्चे से लिपटकर सोना चाहती थी

कि मैं कहीं भटक न जाऊँ—परन्तु असित, मेरे पास न होकर वान के कमरे में पङ्ग पर लेटा होता, ओर मेरा पति घायल सिपाहियों के पैरों में धँसी जस्ते की जर्मन गोलियों को अपनी पूरी ताकत से निकालता रहा होगा—चारों ओर बम बरसते होंगे,—‘धुम’ ‘धुम’ ओर वान का पियानो प्रतीक्षा के गान स्वर बजाता रहता—

‘मेरे नाविक, मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ—दूर-दूर के आकाशों में मस्तूल!...’

“मेरे अंदर बैठी हुई नारी क्या निर्णय कर पाती अकलंक ! क्योंकि मैं डरती थी कि यदि वान जैसा कलाकार मेरे छू लेने पर शाप-भ्रष्ट हो गया तो मैं कहीं की भी नहीं रहूँगी—तुम इसे भी मेरी छलना ही कहोगे, ठीक है मैंने निश्चय कर लिया था कि अब की जान लौट आये ओर फिर मैं यहाँ से चली जाऊँगी

‘वान को जब कभी मैं दूर चले जाने के लिए कहती थी तो वह हँसकर कह दिया करता था—

‘अपनी ओर से चेष्टा कर सकती हो, मैं तुम्हें रोकूँगा तो नहीं, परन्तु यह तुम्हारा भ्रम होगा कि वान से दूर चले जाने पर तुम उमका, उमकी कला का भला करोगी। हाँ, जीवित रहना चाहता हूँ; पहले कदाचित् कला के लिए जीवित रहना चाहता था ओर अब कला तथा विन्सेंट दोनों के लिए !! क्योंकि, विन्सेंट एक महान संगीतज्ञ और चित्रकार बनेगा, कारण कि वह वान की तरह टूटे-फूटे व्यक्तित्व वाला भी नहीं बनेगा। पश्चिम की वाद्य-कला को विन्सेंट पूर्व के रस ओर आत्मा से परिपूर्ण करेगा। मैं इसे विन्सेंट क्यों कहता हूँ ? इसलिए कि ‘विन्सेंट वान गो’ को ‘माँवे’ जैसे महान कलाकार ने हालैंड की सारी कलाओं में दक्ष करके संसार को एक चित्रकार दिया। हो सकता है, ‘विन्सेंट वान असित’ ‘स्टिल लाइफ़ विद आइ राइजेज़’ जैसी अन्यतम कृतियाँ जिनमें पूर्वीय भाव ओर आत्मा दोनों हों—दे सके। वान यदि विन्सेंट के साथ यह सब कर सका रंजना ! तो वान का कला का ऋण, तुम्हारे प्रति कर्तव्य, सब पूरा कर सकेगा’—

और वह दूर गगन में उड़ते किमी समुद्री काक को देखने लगता।

“ओर मैं पागल हो उठती थी !

“वान का वह प्रेम मुझे हमेशा, वेस्टर्न टॉरेन के चर्च पर लगे पवित्र क्रॉस की तरह ही दिव्य महान् लगा करता था। चर्च में प्रार्थना करते हुए बच्चों के स्वरों में भी मुझे वान का वह ‘प्रतीक्षा गान’ सुनायी देता था और मैं तब अपने ओर वान के बीच में बैठे हुए असित को एक क्षण के लिए सटा लेती थी। वान चर्च जाने में विश्वास नहीं करता था, परन्तु रंजना के लिए वह सब कुछ कर सकता था। राँयल पैलेस पर बने रोमन त्रिभुज की उन तीनों मूर्तियों की तरह वान का विश्वास कितना उजला, मांसल तथा कलात्मक था।

जिन दिनों असित बीमार पड़ा, पतझर बीत चुका था। वान उन दिनों लैंडस्केप में नये-नये प्रयोग कर रहा था। पहले तो वह समझा कि विन्सेंट की तबियत मामूली

खराब होगी, और वह प्रयोगों में दिन भर डूबा रहता। किन्तु एक दिन महसा जब मैंने देखा कि अमित की बीमारी बढ़ती जा रही है, तब वान को चिन्ता हुई और उस दिन से उसने अपने रंग और ब्रश रख दिये। अमित चार वर्ष का हो गया था। उसकी वेशभूषा पर वान का ही अधिक प्रभाव था—पाथ ही यह कह दूँ अकलंक ! कि नाम मात्र को मेरा और जान का पुत्र था अन्यथा वह वान को ही सब कुछ मानता था। वान किसी भी मूल्य पर जान को अमित की बीमारी की सूचना नहीं देना चाहता था और, उसने अमित के लिए आम्सटरडम के बड़े से बड़े डाक्टर को बुलवाया। मुझे जाने क्यों इस बार बहुत डर लग रहा था कि अमित को हालैड का क्या संसार का कोई डाक्टर बचा नहीं सकेगा, किन्तु वान के लिए यह जीवन-मरण का प्रश्न बना हुआ था। वह अपना सब कुछ देकर भी विन्मेट को बचाने पर तुला हुआ था। उन दिनों वान के पिता फ्रिलिप निकोलस वान से बहुत अस्तुष्ट था, इसलिए उसे पैसों की तंगी भी बहुत थी। जिसे उसने मुझ पर कभी भी व्यक्त नहीं होने दिया था।

“लगभग छह महीने तक अमित बीमार रहा और मैंने देखा कि रात-रात भर वान ने मुझे जागने न देकर स्वयं जागकर मेरे अमित को बचा लिया। और जिस दिन अमित के ओठों पर छह महीने बाद पहली बार मुस्कान आयी, वान की आँखों में इतनी प्रसन्नता, जल बनकर आने लगी कि वह वहाँ से उठकर अपने कमरे चला गया।

‘मैं पीछे-पीछे उसके कमरे तक पहुँची, कदाचित् कई महीनों बाद मैं उस दिन उसके कमरे में गयी थी। वान उन दिनों बहुत कमजोर हो गया था। उसका कमरा भी अस्त-व्यस्त था और मैं अनुभव कर रही थी कि वान और अमित दोनों, एक दूसरे को कितना अधिक चाहते हैं। मैंने कमरे में पहुँचने ही देखा कि वान के बहुत से चित्र गायब हैं। मेरे पूछने पर भी वह मोन रहा। मुझे बाद में पता चला कि अमित की बीमारी में उमे अपने चित्र बेचने पड़े थे और उसने अपनी कला बेचकर मेरे पुत्र की प्राणरक्षा की थी अकलंक ! जिस दिन मुझे यह पता चला था मैं वान के कंधे पर अपना सिर रखकर कितना रोयी थी। मैं जानती थी कि वान को इसके प्रतिदान तो क्या, वैसे भी सब कुछ देकर मैं उसके प्रेम की ऊँचाइयों तक नहीं पहुँच सकती थी—और वह मेरे मख को अपनी दोनों हथेलियों में जलफलों की तरह समेटे कहने लगा—

‘रंजना ! जो मुझे नहीं मिल सकता, मैं उसकी कामना कर सकता हूँ, किन्तु अपनी कामना पूर्ति के लिए नीचे स्तर तक उतर जाऊँ तो वह नहीं होगा’—

“और मेरे सामने की उस कमरे की दीवारें, दो तैल चित्र, जिनमें समुद्र किनारे की संज्ञा और पतझर के नंगे पेड़ बने हुए थे—सब घूमने लगे थे; ! !

“निराकरण हम कई बार नहीं पाना चाहते और कामना करते हैं कि जहाँ हम हैं, जो हम देख रहे हैं, वहाँ तक सब वैसा ही बना रहे तो हमें संतोष होगा, परम संतोष होगा। परन्तु अकलंक ! परम संतोष हुआ नहीं कि सृष्टि उसी दिन

ताश के महल की मानी ढहकर बिखर जायेगी। तभी तो चलते हुए क्रम में ये व्यतिक्रम आते हैं, और जिसके जीवन में ये व्यतिक्रम जितने ही अधिक आते हैं उसका जीवन जापान के लकड़ी के घरों की तरह छिन्न-भिन्न होता रहता है। लकड़ियाँ जोड़कर घर फिर खड़ा हो जाता है—परन्तु सम्पूर्ण रूपे घर कभी नष्ट नहीं होता। परन्तु यह सामनेवाले का मात्र प्रवचन समझना चाहिए। आज मैं अपने ऊपर भी ऐमा ही प्रवचन कर सकती हूँ, पर उन दिनों, उन दिनों तो मैं यह सोचकर भी काँप जाया करती थी कि क्या कभी वान से अलग जा सकूंगी ?

जान के बराबर पत्र आते रहते थे, पर कुछ दिनों से जान के पत्र आने बंद से हो गये थे। अर्नहेम के पास जर्मन फिर तेज़ हो रहे थे। पिछले दिनों मे लड़ाई में बहुत तेज़ी आ गयी, थी। कदाचित् १७ मितम्बर १९४४ को रविवार था जिस दिन वान को लेकर मैं चर्च गयी थी। आसपास के लॉनों में तब बहुत कम वच्चे दिखायी पड़ते थे। धीरे-धीरे सभी के घरों के कोई न कोई आये दिन लड़ाई में काम आते जा रहे थे। हालैंड का पूर्वी भाग धीरे-धीरे एक बड़ी कब्रगाह बनता जा रहा था। इस दिन जनरल उरक्वहार्ट के कमाण्ड में आठ हजार सैनिक ऊस्टरबीक और वूल्फ्रबेश के पास उतरे थे, और वहाँ अर्नहेम पर स्थित राइन नदी के पुल की तरफ से बढ़ना शुरू किया था। दक्षिण की ओर से आती हुई मौंटगुमरी की सेना के लिए यदि यह पुल वाला रास्ता साफ हो जाता तो मित्र राष्ट्रों के हाथों में इसका अधिकार हो जाता। परन्तु जर्मन सेना ने जो कि मंथ्या और अस्त्र दोनों में ही मित्र राष्ट्रों से अधिक शक्तिशाली थी अधिकार न होने दिया। पुल से लगे 'वान लिम्बर्ग स्ट्रीम' स्कूल के पास अंग्रेज पराजित हुए। जर्मन सेना ने मित्र राष्ट्रों पर पीछे से हमला बोलकर, मारे अस्पताल, रक्षा पंक्तियाँ और रक्षा शिविरों को नष्ट कर दिया। जान जिस अस्पताल में था उस पर भी जर्मन विमानों ने खूब गोलावारी की, और आगे बढ़ती हुई जर्मन सेना ने सब तहस-नहस कर दिया।

सोमवार वामर था। अर्नहेम की इस लड़ाई का समाचार आम्सटरडम में भयावह रूपे फैल गया कि जर्मन सेनाएँ जिस प्रचंड गति से बढ़ रही हैं उस हिसाब से तो किसी भी दिन उत्रेच्ट को तहसनहस कर देंगी, और फिर तो सीधी सड़क की भाँति वे आम्सटरडम पहुँच सकती हैं। अर्नहेम में जो कुछ हुआ था वह अपनी पूरी भयानकता के साथ आम्सटरडम के धरे-धरे पहुँच चुका था कि

“वहाँ एक भी नहीं बचा।”—

“मैं बेचैन हो उठी क्योंकि मुझे जान के बारे में कई दिनों से पत्र न आने के कारण चिन्ता थी ही। उसी दिन शाम को अखबार में जिन-जिन लोगों को अर्नहेम की लड़ाई में काम आना पड़ा उसमें जांस्टीन का भी नाम पढ़कर मैं बेहोश हो गयी।

जिस समय मैं होश में आयी, साँझ बीते काफ़ी समय हो चुका था। और, मैंने

अपने मिरहाने वान तथा असित को बैठे पाया। मुझे अमिन को देखकर फूट-फूटकर रोना आ गया। आज मैं और मेरा लड़का असित फिर ममय के प्रहारों द्वारा परिवर्तन के द्वारे खड़े कर दिये गये थे। वान की समझ में यह नहीं आ रहा था कि वह किस तरह मुझे सान्त्वना दे। उसे स्वयं ही अपने मित्र जांस्टीन के मर जाने का बहुत शोक था।

वान के कारण मुझे आम्सटरडम में अनेक लोग जानते थे इसलिए लोगों ने, जास्टीन जैसे सर्जन के मर जाने पर उसकी पत्नी को सान्त्वना देना अपना सामाजिक शिष्टाचार समझा।

“मैं फिर एक बार वाध्य हुई कि अपने लिए कोई अन्य मार्ग निश्चित करूँ, परन्तु वान किसी भी प्रकार आम्सटरडम से चले जाने या हालैंड छोड़कर वापस देश लौट जाऊँ, का पक्षपाती नहीं था, और मैं वान के कथन की उपेक्षा भी नहीं कर सकती थी। वान की चिन्ता भी अब मेरे लिए दिनों दिन बढ़ती जा रही थी। वह मेरे लिए दिन प्रतिदिन अधिक चिन्तित रहा करता था। वह मुझे लेकर अपने वगीचेवाले गाँवों में सप्ताहों के लिए घूमने जाया करता था।

“समुद्र के किनारे मीलों फँसे हुए लम्बे ये उपवन, डचों की पुरुषार्थी बाँहों के प्रतीक थे। मेरा मन कहीं और न भटक जाये इसलिए वान जैसा कलाकार मेरी छोटी से छोटी इच्छाओं की पूर्ति के लिए कृतसंकल्प रहा करता था और मैं धीरे-धीरे जान के दुःख को कम कर सकी। वर्षान्त होते-होते जान, हम लोगों की चर्चा का विषय बन गया। उन दिनों जब मैंने बहुत जोर दिया कि नहीं, मैं जान की कब्र पर फूल चढ़ाने जाना चाहती हूँ, तब वान ने कितने दुःख से अपने आँसुओं को रोका था, क्योंकि लड़ाई का भय यद्यपि कम हो गया था और जर्मन धीरे-धीरे खदेड़े जाने लगे थे, पर वह जानता था कि रंजना जब उन कब्रगाहों को देखेगी तो उसके कोमल मन को कितनी ठेस पहुँचेगी। परन्तु, वह मेरे आग्रह को भी जानता था, और साथ ही अपने मन को भी कि वह किसी भी मूल्य पर रंजना की इस इच्छा की पूर्ति करेगा ही।

“और हम अनर्हेम गये—

चैत्र का वह अंतिम सप्ताह था—

“पूर्वी हालैंड को जर्मन सेनाओं ने एकदम कब्रगाह बना दिया था। उत्रेच्ट के बाद हालैंड उजाड़, वीरान तथा मुनसान हो गया था। सड़कें, मकान, शहर सब ध्वस्त कर दिये गये थे। गिरजाघरों की टूटी मीनारें, चैत्र की उस उजली धूप में तथा खुले आसमान में एक लूले आदमी की बाँह जैसी लग रही थीं। फ्रैक्चरों के टुकड़े टुकड़े कर दिये गये थे। स्टेशनों की आधी दीवारों पर गिद्ध बैठे हुए चीखें भर रहे थे, जली हुई दीवारों की छतों की फ्रेमों, आधी पिघली हुई झूलती हुई दिखायी दे रही थीं। कभी इन सब चीजों में भी जीवन था, परन्तु आज तो वे आधेजले शव की

भाँति दिखायी दे रही थीं। रेल्वे गोदामों की टिनें, दोपहरी की इस हवा में खड़-खड़ करती हुई कह रही हों जैसे—

‘अब यहाँ कोई जीवन शेष नहीं है हमें मत घूरो’—

टूटे पड़े वेगन, कुछ उल्टे पड़े हुए, कुछ तिरछे हुए ऊपर, आसमान में जाते हुए विमानों की कर्कश आवाजों को भय से देख रहे थे। लोग कही-कहीं मलबा हटाने में लगे थे। वे बाँध, जिन्हें बाँधकर हालैंड के लोगों ने समुद्र की तूफानी डाढ़ों में से धरती को छीना था, जर्मनों द्वारा तोड़ दिये गये थे। कई स्थानों पर धरती फिर जलाल्लावित हो गयी थी। पश्चिमी हालैंड के कई बाँध तोड़कर जर्मनों ने पूरे हालैंड की रीढ़ ही तोड़ देना चाही थी।

“साँझ होते-होते वान, असित और मैं अर्नहेम पहुँचे। परन्तु हम उस बेला कब्रगाहों की ओर न जा सके, क्योंकि वह लड़ाई का क्षेत्र अभी भी माना गया था और साँझोपरांत वहाँ जाना असम्भव था। रात भर हम लोग एक बहुत ही छोटे और असुविधापूर्ण वाले होटल में ठहरे। मुझे उम रात जाने क्यों नीद नहीं आयी, प्रत्येक क्षण उन कब्रगाहों में से जो कि दूर पर इस खुली चैतिया चाँदनी में दिखायी दे रही थी—हज़ारों सिपाही लड़ते हुए दिखायी देते थे। ओर जान उन सब की टाँगों और हाथों में से जस्ते की गोलियाँ निकालता हुआ हाँफ रहा सा लगता था। उसकी फ्रेंचकट भूरी डाढ़ी युक्त आकृति, बिखरे-बिखरे वाल और फटी कमीज़—जैसे वह थककर ‘रंजना’ ‘रंजना’ दुकार रहा हो—में रह-रहकर चीख पड़ती थी और वान रात भर मेरे सिरहाने बैठा बैठा वाल सहलाता हुआ कहता रहा —

“पागल न बनो रंजना”—

तब जाकर कहीं भोर हुई —

“असित को जगा हम लोग सिमीटरीज़ की ओर बढ़े। भिनसार हवा निदामी ऊँधती बह रही थी। सड़क कभी अच्छी रही होगी, परन्तु गोलों ने उसे कई स्थानों तोड़-फोड़ डाला था, तथा दोनों ओर गिरे हुए मकान खड़े थे जो सब घायल सिपाहियों की तरह लग रहे थे—जिन्हें बंशी कर लिया गया हो और अब वे सब कँटीले तारों में घिरे चुप हैं। हमारे दोनों ओर जीप पर बैठे हुई मिलिट्री के अफ़सर, लारियाँ गुजर रही थीं। यह ब्रिटिश कब्रगाह थी जहाँ जांस्टीन की कब्र बनी हुई थी। मिलिट्री के पहरोँ में काँटे से घिरे इस कब्रिस्तान में, मैं अपने पति की कब्र पर फूल चढ़ाने आयी थी।

“अकलंक ! उस लम्बी कब्रगाह में वे सफ़ेद क्रॉस चिन्ह खोसे कब्रें, जैसे अपने प्रिय व्यक्तियों की प्रत्येक क्षण प्रतीक्षा करती हुई लग रही थीं। कुछ कब्रों पर कल के बासी फूलों की गोल मालाएँ रखी हुई थीं। उन मृत सैनिकों की कब्रें उस समय प्रांतीय ओस में भीगी हुई एक गहरी मौन में लेटी हुई थीं। मैं जितने जल्दी हो सकता था अपने जान की कब्र पर पहुँचना चाह रही थी। बड़ी दूर से सफ़ेद क्रॉस पर जान का नाम

लिखा हुआ था—जैसे वह रात भर मुझे पुकारती रही हो कि —

‘रंजना मैं यहाँ हूँ’—

“और मैं आँसुओं में डूबी, भीगा मन ले उसकी कब्र से लिपट गयी। पीछे-पीछे वान और अमित आ रहे थे। वान आँसुओं में डूबा हुआ मेरे वच्चे का हाथ थामे खड़ा था और अमित का एक हाथ मेरे कंधे पर था। मैंने घुटने के बल बैठकर फूलमाला चढ़ायी। एक कतार में खड़ी हुई नर्सों की तरह वे उजली कब्रें—प्रातःकालीन आकाशे कदाचित् चुप थीं। इनको चुप करने के लिए जर्मनों ने गोलं वरसाये थे और इन बोलते हुए मानुषों की जगह जब तक चुप रहनेवाले क्रॉस नहीं लग गये, संगीनों, वम और गोलावारी होती रही थी। मुझे लगा कि जान अब हमेशा यही पड़ा रहेगा, और अब शायद मैं भी न आ सकूँ। जब दूसरों की कब्रों पर लोग फूलमाला चढ़ाने जायेंगे, मेरे जान की कब्र अपनी प्यासी आँखों में रंजना और अमित तथा अपने मित्र वान का पथ जोहा करेगी।

“मेरा पति जो कभी व्यक्ति था, आज मात्र एक क्रॉस लगी कब्र !!

“तुम कहोगे अकलंक ! कि मैं नीच थी जो जान जैसे पति को वर्ष भर में भूल चली। मैं तुम्हें ऐसे सोचने से रोकनेवाली कौन हूँगी, किन्तु वान जो कि जीवित मेरे लिए घुला जा रहा था, मेरी चिन्ता का कारण बनता जा रहा था। मैं जानती थी कि जान को अब लौटाया तो नहीं जा सकता था, किन्तु वान को भी तो खोया नहीं जा सकता था : मैं पूर्ण रूपे आश्वस्त हो गयी थी कि मेरी छाया भी अगर वान को छू गयी तो, यह वान भी दूसरे सब व्यक्तियों की तरह बालू के महल की भाँति ढह जायगा और मैं अपने को वान से वचाना चाह रही थी। अपने लिए नहीं—स्वयं उसके लिए, उसकी कला के लिए और मेरे अपने वच्चे के लिए, जिसका कि वह पिता और माता सब कुछ था।

मैं मानती हूँ कि वान ने उन दिनों बहुत सुन्दर चित्र बनाये। वह कब्रगाहों का एक चित्र बना रहा था। परन्तु वान प्रत्येक क्षण मेरे जीवन में पास और बहुत पास आता चला जा रहा था। मैं अपने आप को समेटने के स्थाने ढीला करती जा रही थी। वान उन दिनों बहुत प्रसन्न रहने लगा था। वह अपने चित्रों के आधार पर ऑपेरा भी लिख लिखकर प्रदर्शित करता था। वापस लौट जाने का मेरा प्रत्येक निर्णय, उसकी उदासी की एक रेखा के सामने टिक नहीं पाता था। मैं अपने को उससे हमेशा के लिए अलग रखने में ही भला समझ रही थी, परन्तु वह बेतहाशा दौड़ रहा था जैसे कोई बर्फ पर स्कोटिंग कर रहा हो। अब अमित भी पाँच वर्ष से ज्यादा का ही हो गया था, वह बहुत ही सुन्दर बिल्कुल वान की तरह ही डच बोलने लगा था। वह रंगों का मेल मिलाना उन दिनों सीख रहा था। जब कभी वान अपने ऑपेरा की रागनियाँ बनाता था, अमित उसके पास घंटों बैठा रहता था और वान उसे एक बार सिखलाकर बैसे ही पियानो बजाते हुए गाने के लिए कहता था। और जब वह बिल्कुल वान की ही

तरह पियानो पर गा लेता, तब वान पागलों की तरह उसे उठाकर चूमने लगता । मेरे मन को कितनी ठेस लगती थी कि, इसी वान को, इसकी कला के लिए, मुझे छोड़ना होगा और मैं अथाह दुःख से भर उठती थी ।

“वान की समझ में यह नहीं आता था कि मुझे ऐसा क्या दुःख है जिसे मैं कभी भी न तो बूझ पाती हूँ और न कह ही पाती हूँ—इस तरह की चर्चा हो आने पर उसके मुख पर गम्भीरता आ जाती थी । कभी-कभी मैं स्वयं काँप उठती थी कि रंजना और असित के बिना इस वान का क्या होगा ? अकलंक ! कदाचित् मैं अपने अलग होने का विचार उससे बहुत धीमे-धीमे उस पर प्रकट करती, जिसमें उसे ठेस न लगे । क्योंकि वान के साथ रंजना स्वार्थी कभी नहीं होना चाहती थी मैंने उसे तभी इतना चाह लिया था, अब मैं उसे फिर चाहकर पथभ्रष्ट हो करती, उस पर शाप की छाया ही डालती । वान मेरे निकट पुरुष से पहले कलाकार के रूपे आया था और उन दिनों पुरुष के रूप में मेरे लिए पति था ही । अब इस वान में ही दोनों को एक साथ देखने का अर्थ था कि मैं वान से विवाह करूँ । मेरे विवाह के अशुभ पंख इसे अवश्य ही ग्रस लेंगे, ऐसी मेरी धारणा हो चली थी और वान के न रहने की कल्पना से ही मेरा रोम-रोम काँप उठता था—यदि मेरे कारण वान को कुछ हो गया तो तुम्हीं बताओ अकलंक ! क्या फिर मुझ जैसा दूसरा पतित व्यक्ति हो सकता था ? या फिर मेरे लिए जीवन सम्भव था ? यदि मैं वान के न रहने पर जीवित रहती तो, उसका अर्थ होता कि रंजना मात्र शरीर है उसमें आत्मा की छाया तक नहीं !!

“उस दिन आसमान बहुत साफ था । पीली धूप, नभ की नीली दीवारों में ठीक वैसे ही चमक रही थी जैसे दिशाओं के संगमरमर के खंभों में मेघराजा के नीले महल में बड़े-बड़े पीले रेशम के परदे टँगे हों । हम लोग समुद्र नहाने के लिए गये । समुद्र के किनारे और दिनों की अपेक्षा आज कोमों तक धुले-धुले लग रहे थे । लड़ाई बंद हो चुकी थी, पिछले सप्ताह ही हम लोगों ने पूरे आम्स्टर्डम के लोगों के साथ मित्र राष्ट्रों की विजय खूब नाच-गाकर, दिवालियाँ मनाकर तथा आसमान में रंगविरंगे गुंवारे छोड़कर मनायी थी, परन्तु मेरे मन पर जान को लेकर हल्का विषाद भी था । समुद्र में नहाते हुए वान ने आज पहली बार छाती तक गहरे समुद्र जल में मेरा हाथ थामकर कहा—

‘रंजना ! मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ—क्या तुम भी.’

और मैं एक क्षण के लिए काँप गयी अकलंक ! समुद्र का जल एकदम मुझे बहुत ठंडा लगने लगा जैसे मुझे ज्वर हो आया हो । मुझे वान के साथ विवाह कभी नहीं करना चाहिए, यह धारणा पक्की हो चुकी थी, और मैं कभी भी वह स्थिति नहीं चाहती थी कि वान विवाह के लिए प्रस्ताव रखे और मुझे गहरा सुख होते हुए भी अस्वीकार करना पड़े ।

“वान की मूर्खता ने मुझे उसी क्षण, चारों ओर समुद्र जले घिरे हुए यह

निश्चय करने के लिए बाध्य कर दिया कि मैं अपने पुत्र संगे अपने देश वापस लौट जाऊँ, किन्तु वान की कला पर अपने इस अशुभ शरीर की छाया ना पड़ने दूंगी।

“वान ने कदाचिन् समझ भी लिया कि उसने प्रस्ताव रखकर अच्छा नहीं किया। रास्ते भर हम में से कोई कुछ नहीं बोला था। बेचारा असित, गाड़ी में हम लोगों के बीच बैठा हुआ दोनों की ओर गुमगुम देख रहा था।

“एक सप्ताह के बाद मैंने वान को एक दिन अपने कमरे में बुलवाया, क्योंकि उन दिनों हम लोग रात को और दोपहर में लंच के लिए ही मिलते थे। शेष दिन वान, असित को लेकर अपना काज किया करता था। मैं या तो खिड़की में बैठी उदाम सामने दीखने हुए वगीचे और आम्सटरडम की सड़कें देखती रहती थी या फिर कुछ पढ़ती रहती थी। जान के बीमे के तथा मरक़ारी रुपये भी आगये थे।

मैंने उस दिन अंतिम रूप से अपना निर्णय वान को सुना देने के लिए बुलवाया था। अमित और वान दोनों मेरे कमरे में आये और मैंने अमित को पुचकार कर कहा कि—

“अमित बेटा, तुम बाहर जाओ हम लोग कुछ व्यस्त हैं।”

अमित एक क्षण वान की ओर देखता रहा और वान को कहना ही पड़ा कि—
“जाओ विन्सेट ! हम लोग व्यस्त हैं।”—

“विन्सेट वान अमित अपने पैरों को घसीट रहा हो की तरह उदाम बाहर चला गया। मैंने वान को बोलने का अवसर न देने हुए कहा—

“वान ! मैं अगले सप्ताह अपने देश जा रही हूँ, क्योंकि मुझे जाना चाहिए।”

“वह एक क्षण मेरी ओर देखता रहा। कारण कि, रंजना को उमने कभी इस तरह गम्भीर होकर बोलते हुए नहीं सुना था।

“और ठीक भी था अकलंक ! क्योंकि मैं गम्भीर नहीं थी, बल्कि मन ही मन रो रही थी।

“उमने मेरा हाथ अपने हाथ में लेते हुए पूछा—

“रंजना ! क्या यह सत्य है ?”

“और मैंने कह दिया था —

“हाँ, यह सच है वान ! क्योंकि मेरा, तुम्हारा, असित का और सबसे अधिक तुम्हारी कला का भला इसी में है कि मैं चली जाऊँ और चाहती हूँ कि हम लोग इस चर्चा पर अब आगे कुछ न कहें।—बीमे का और मरक़ारी रुपया आगया है।”

मैंने देखा कि वह अपराधियों की माती जैसे हुक्म सुनकर अपने भारी कदमों को रखकर चला जा रहा है। आज वह और दिनों की भाँति मुड़ा नहीं, वह बहुत गम्भीरता के साथ जीना चढ़ रहा था।

“वह दिन, मेरा बिदा वासर था—

मैंने वान से असित को साथ में ले जाने के लिए कहा, परन्तु उसने मुझे ऐसा करने से इन्कार किया, किन्तु मैंने उससे ज़िद की क्योंकि कुछ भी हो मैं उसकी माँ हूँ—जिसका अर्थ था कि वान, तुम कुछ भी हो अगत्या असित के पिता के मित्र ही तो हो। उसने हँसते हुए कहा था—

‘रंजना ! उसी से पूछ लो, यदि वह जाने को तैयार हो तो मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ?—’

‘असित आया, और मैंने देखा कि वान की साश्रु आँखों में कितनी पीड़ा और दुःख दोनों एक साथ हैं। असित, बिल्कुल वान के जैसे ही कपड़े पहने था। वान ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा —

‘विन्सेंट ! तुम्हारी ममी जा रही है, और तुम्हें ले जाना चाहती है’—

“अकलंक ! असित ने मेरे सारे दर्प, गर्व और माँ होने का अधिकार अपने उम एक वाक्य से ध्वस्त कर दिया—

‘ममी कहीं भी जायें, मैं वान को छोड़कर नहीं जा सकता।’—

“मेरा ही हाड़ मांस, रक्त मुझमे विद्रोह कर रहा था, और मैं चुपचाप सुन रही थी। असित के लिए वान सब कुछ था और मैं उसकी माँ होते हुए भी कुछ नहीं थी। उसने वान का हाथ इस तरह पकड़ लिया जैसे मामने खड़ी हुई यह अपरिचित स्त्री, उमे कहीं घसीट कर ले जाना चाहती है। वे दोनों मेरे कमरे से चले गये।

“और मैं फूट फूटकर रो पड़ी अकलंक ! !

“प्रत्येक व्यक्ति मुझमे रूठकर या रुप होकर या विद्रोह करके आज तक विदा होता गया। मैं कौन तटे लगूंगी यह समझ मे नहीं आ रहा था। एक क्षण को यह भाव जगा कि जब असित भी नहीं जा रहा है तब वापस भारतवर्ष जाकर ही क्या होगा ? वान का मुझ पर कितना प्रेम है, मैं उमे टुकड़ाकर, अपनी संतान से अलग होकर, वापस अपने देश, या कहीं भी जाकर क्या पाऊँगी ? ? परन्तु रंजना के अंदर बैठी दर्पमयी को यह अपमानजनक लग रहा था कि रंजना कमज़ोर बने। आज तक जब वह बढ़ती ही आयी है तब उमे ऐसी क्यों झिझक होनी चाहिए ?

और मैंने भंड्या की गाड़ी में विदा होने का निश्चय कर लिया —

शाम को वान और असित मुझे स्टेशन पर छोड़ने आये। वान की आँखों में आँसू रह-रहकर आ रहे थे। मैं भी कम दुखी नहीं थी, परन्तु मेरे लिए लौटना भी सम्भव नहीं था। वान ने गाड़ी चलती बेला एक बार फिर पूछा था—

‘रंजना ! क्या यही अंतिम निर्णय समझूँ ?’—

“मैंने असित को प्यार करते हुए कहा था—

‘वान ! रंजना को निर्णयों की सीमा के परे मुझे अब ले ही जाना होगा, रोको मत, भले ही आगे मेरे लिए गति न हो।’

“और अकलंक ! आम्सटरडम स्टेशन की लाल, हरी लाइटोंवाले प्लेटफार्म पर खड़े वान और अमित धीरे-धीरे दोनों दूर होते गये और मैं अपने कम्पार्टमेंट में फिर रो पड़ी।

मेरे विचारों में वान का वह लम्बा सा हँट, छड़ी, बगुले की मानी हिलता हुआ सफ़ेद रुमाल, और वह छोटा वान मेरा अस्मिन्, अपने गोरे गदराये हाथ हिलाता हुआ—बारबार घूम रहे थे, क्या मैं अब कभी देख सकूंगी ?? वे दोनों ही प्रश्न बनकर स्टेशन पर पीछे छूट चुके थे और मेरे साथ असमाधान के अश्रु अनागत जीवन भर के लिए गाड़ी में चल रहे थे।

“हालैंड जाती बेल्टा जब भारत छोड़ा था तब मेने कितनी करुणा से दूर होते हुए अपने देश को देखा था और एक क्षण के लिए विचार घिरा था—कि अब कदाचित् जीवन भर के लिए यहाँ लौटकर नहीं आ पाऊँगी। मेरे देश के पेड़, पौधे, फल, फूल, वस्त्र मेरे रंग ओढ़कर हँसनेवाली ऋतु, पतझर में हर वरस नंगे होते रहनेवाले वन—ये सब नहीं देख पाऊँगी और मरदा के लिए इन सबसे दूर हो रही हूँ, पर तब मेरा पति जान साथ में था !!

“परन्तु, अब जब मैं वापस बम्बई पहुँची विलकुल एकली थी। मुझे लगा कि बम्बई के समुद्र की एक-एक लहर वैसी की वैसी ही है, जैसी कि वे चीनी फूल या पंखे लायलेन या आकाशदीप बेचते समय बरसों पूर्व इन्हे देखा करती थी। तब की और आज की रंजना को अलग करने में कई व्यक्तियों, और परिस्थितियों का हाथ है। लीड् इमी बम्बई में कहीं अपने चीनी पति के साथ हांगी—जो कि दाँत बनानेवाले किसी चीनी डाक्टर के यहाँ अब भी काज करता होगा। दो-चार बच्चों की माँ भी वह अब हो गयी होगी। रंजना को वह भूल गयी होगी, की सम्भावना नहीं। आज प्रत्येक की गति में परिवर्तन आ चुका है—बल्कि अच्छा तो यह होगा कहना कि शोप लोग तो चींटी की चाल चलकर थोड़े से ही बदले होंगे, परन्तु रंजना की गति में अवश्य ही गरुड़ की योजना-प्रियता, ईगल के डैने लगे थे और रंजना, मात्र बदल ही नहीं गयी है, वरन् नूतन जन्म ही हो गया है उसका !! कदाचित् पथभ्रष्ट होना भी द्विज होना है।

“बम्बई पहुँचकर मैंने पहली बार चाहा कि क्यों न एक बार बम्बई घूम लूँ ? और मैं पूरा घूम भी आयी अकलंक ! चौपाटी पर मुझे स्वयं लगने लगा था कि मेरे हाथ के वे पंखे, फूल वगैरह कहाँ गये ? मेरा वह बुर्का कहाँ रह गया है ? वह लीड् कहाँ चली गयी अब, जो कि अभी-अभी मेरे साथ थी ?—और मेरा मन खिन्न हो उठा। वह अँधेरीगली वाला मुहल्ला कितना भयावना लगने लगा था कि जहाँ मैं कभी अहमद जैसे बर्बर की बीबी बनकर उसके बच्चे की भी माँ बनी थी। और फिर वे कुटनियाँ, जो मुझे वेश्या बनाना चाहती थीं। मैं चीख भी पड़ती उस दिन चौपाटी पर, परन्तु मेरे निकट देखा कि उसी बेंच पर—एक बहुत साधारण

व्यक्तित्ववाला मिलिट्री का कोई अफसर, आकर बैठ गया है। मैं थोड़ी देर में उठकर वहाँ से चल दी। मैंने बम्बई पहुँचने की सूचना वान को दे दी थी, और आगे कहाँ जाकर रहूँगी, के बारे में उचित समय पर सूचना कर दी जायेगी—यह भी लिख भेजा था। मुझे लगभग प्रतिदिन ही वान को पत्र लिखने पड़ते थे।

बम्बई का वह दिन—

“मैं अंतर्राष्ट्रीय चित्र प्रदर्शनी से लौटी और वहाँ मैंने संसार के महान् कलाकारों के बीच में अपने वान निकोलस के भी चित्र देखे तो मेरा मस्तक गर्व से ऊँचा हो गया। मुझे देखकर कितना आश्चर्य हुआ कि उसने अनेक चित्रों में मेरा चित्र भी प्रदर्शन के लिए भेजा था।

मैंने अनुभव किया कि वान से अलग होकर मैंने कदाचित् अच्छा नहीं किया क्योंकि उसकी कला ने मुझे कितना महान् बना दिया था। मैंने अपने मनोवेग को वान के नाम एक पत्र लिखकर अभिव्यक्त किया। पत्र लिखकर प्रेषित करने के पूर्व इस पर काफ़ी सोचा कि वान के पास लौट जाने की जो अभिलाषा प्रकट की है वह कहाँ तक उचित है? मेरे पास इसका कोई उत्तर नहीं था, क्योंकि मेरा यह आचरण आज तक के व्यवहारों में एकदम पृथक् ही तो था। लौटकर जाना रंजना का स्वभाव—कम से कम उमे तो नहीं स्मरणता कि ऐसा कभी हुआ हो। मैं कई दिनों तक चौपाटी पर बैठी-बैठी अपने इस इस आचरण के औचित्य एवं अनौचित्य पर मोचनी-विचारती रही। मेरे सामने वान के वे सभी चित्र आ जा रहे थे क्योंकि उनके निर्माण में मेरा हाथ था, उनकी एक-एक रेखा जब निर्मित हुई थी तब मेरा हाथ या तो वान के वालों पर रहता था या फिर कंधे पर, और उमका विन्सेंट, सामने बैठा हुआ रंगों के साथ मजाक किया करता था। जिस दिन ये चित्र भेज रहा था उस दिन वान ने केवल चर्चा की थी पर बताया नहीं था कि वह कौन-कौन से चित्र भेज रहा है क्योंकि उसके प्रति मेरी उदासीनता काफ़ी बढ़ गयी थी।

समुद्री साँझ—गुलाबी कूचियाँ आकाश में नीले वस्त्रों की रँगने की चेष्टा कर रही थीं—वह ज्वार की परिसमाप्ति का क्षण था। मैं चौपाटी पर बैठी हुई थी और वह मिलिट्री अफसर आकर उसी तरह ठीक मेरी बेंच के दूसरे कोने पर बैठ गया और मुझे घूरने लगा—जैसे वह मुझे पहचानने का प्रयत्न कर रहा हो। मैंने उमे कई दिनों से इसी तरह नित साँझ को अपने पास आकर बैठते देखा था तब मुझे अच्छा नहीं लगा और मैंने जैसे उसे फटकारते हुए कहा था—

“कहिए, किसे खोजते हैं आप?”

और उसने कितने स्मार्ट तरीके पर हँसते हुए उत्तर दिया था—

“क्षमा करें, देख रहा हूँ कि चित्र को अकेला छोड़कर चित्रकार कहाँ चला गया”

मैंने आँखें तरेरते हुए कहा था—

“क्या तात्पर्य आपका ?”—

उसने टहाका भरते हुए कहा—

“मेरा मतलब है कि वह आपका चित्रकार कहाँ है, जिसे आपको प्रदर्शन की वस्तु बनाकर तो भेज दिया और स्वयं कहाँ....”

“और मुझे लगा कि यह व्यक्ति व्यर्थ ही प्रदर्शनी नहीं देखता था। चित्र-प्रदर्शनी में मेरे पास खड़े होकर मैंने किसी मिलिट्री अफ़सर को बराबर ही देखा था और मुझे तब स्मरण हो आया कि यही वह मिलिट्री अफ़सर था।”—

अबकी बार मैंने रंजना को फिर ध्यान से देखना चाहा है और मैं उसकी ओर देख रहा हूँ कि उम हाल्ड के चित्रकार वान ने इस रमणी को किन रंगों में चित्रित किया होगा।

रंजना के शरीर के एक-एक अंग की बनावट मेरे कितने निकट है जो कभी रंग और कला द्वारा कैनवास पर निखर पड़ी होगी। मैं कल्पना कर सकता हूँ कि वान ने संसार के समस्त नारी चित्रों का चुनौती देने का जो माहस किया था और उसके लिए जिस व्यक्ति का अंकन किया था वह मिथ्या नहीं था, क्योंकि उसने वह चित्र बनाकर स्वयं और व्यक्ति दोनों को अमर कर दिया—किन्तु उस वान जैसे कलाकार को अपनी कला की अमरता का कितना बड़ा पुरस्कार इस नारी के हाथों प्राप्त हुआ है। विश्व की कड़ी से कड़ी आलोचना वान को दहा या गिरा नहीं सकती, किन्तु रंजना की एक अस्वीकृति—क्या किसी भूचाल या प्रलय में कम है ? फिर वह भी वान जैसे संस्पर्शवान व्यक्ति के लिए !! और मैं देख रहा हूँ कि अगर वान मुझे मिल सके तो मैं सब कहकर बतला दूंगा कि तुम्हारी रंजना जिसे तुमने रंग और कला का रूप देकर इतना उत्कृष्ट बनाया और उस नारी को अपना मन देकर पीड़ा या ठोकर पायी—वह क्या है ? मात्र छलना !! जो कगारों को छूकर उन्हें सदैव के लिए उपहास में जीने देने के लिए पीछे छोड़ जाने में विश्वास करनेवाली इस ब्रह्मपुत्र रंजना को वान ! तुम समझ सके ?

और मैं भी समझ रहा हूँ यह दावा भी गलत है, क्योंकि मेरा मन तटस्थ का मन तो नहीं है न ? मैं जानता हूँ अपने मन के भाव को अभिव्यक्त करके वान की सी ही गलती कहेगा....

वान एक महान कलाकार और मैं एक बनियान की फँसरी में डिज़ाइनर !!

दो व्यक्तियों का महान अंतर !!

रंजना इस अंतर को जानती है, परन्तु वह तो मुझे ‘अकलंक’ समझती है।

“देखो अकलंक ! हो सकता है जितनी देर तुम्हें सुनने का अवसर मिले, सोचने के लिए कम ही मिले परन्तु मैं तुम्हें उसके लिए भी अवसर दूंगी। इसलिए मुझे अपना विगत गम-पत कर लेने दो, और मुझे वर्तमान के भी निर्णय आज ही

लेने हैं इसलिए वाधा न पहुँचाओ। फिर, शेष अब है ही कितना !!

“यह मिलिटरी अफसर कर्नल कुलकर्णी था, और उसके साथ मैं तब नित प्रदर्शनी जाती थी। वह घंटों मेरे चित्र के सामने मुझे ले जाकर एक-एक रेखाओं का उतार-चढ़ाव बहुत ध्यान से देखता हुआ वान निकोलस की महान कला की प्रशंसा करता था।

कर्नल कुलकर्णी के पिता, कभी पूना के रहनेवाले थे लेकिन वे मद्रास में जाकर काफ़ी दिनों से रहने लगे थे। वह पहली लड़ाई में फ़ौज़ में भर्ती होकर फ़ांस गये थे, तथा वहाँ पर मारे भी गये थे। कर्नल कुलकर्णी के पिता—वचपन में ही अनाथ हो गये थे, और मिशनरियों ने उन्हें पाला-पोसा था, इसलिए वह लगभग जन्म से ही इसाई थे। कुलकर्णी की माँ, भी इसाई थी। कुलकर्णी के पिता ने विवाह के बाद दर्जी का काम शुरू किया था। बाद में मिशनरी स्कॉलरशिप मिलने पर कनाडा पढ़ने भी गये थे, और वहाँ से उन्हें मिलिटरी में जाने का शौक लगा था। परन्तु कर्नल कुलकर्णी बहुत बच्चा था, तभी उसका पिता लड़ाई में मारा जा चुका था। उसे इसकी माता ने ही उसी दर्जी की दूकान द्वारा ही पालापोसा तथा पढ़ाया था। सरकार ने, कुलकर्णी के पिता की सेवाओं का ध्यान रखते हुए इसे फ़ौजी शिक्षा देकर मिलिटरी में ले लिया था। इस दूसरी लड़ाई में यह जापानियों से लड़ने सिगापुर भेजा गया था, जहाँ से वह अभी लौटा ही था। कुलकर्णी जब लाम पर था तब उसकी माँ एक दिन चर्च में लौटने हुए हार्ट फेल में समाप्त हो गयी थी—क्योंकि पादरी ने उस दिन प्रार्थना के बाद अखबार पढ़कर सुनाया था कि सिगापुर—जापानियों के कब्जे में आ गया और वहाँ मित्र राष्ट्रों की सेना का एक भी व्यक्ति नहीं बचा। यद्यपि समाचार गलत था।

“धीरे-धीरे कुलकर्णी, मेरे यहाँ आने लगा और मैं उसके साथ गाँझ को नियम से घूमने जाती थी। वह पक्का रोमन कथोलिक व्यक्ति था साथ ही चर्च जाना कभी नहीं भलता था।

“वान सोचता था कि मैं अवश्य ही उसके पाम लौट जाऊँगी और उसका सोचना बिल्कुल उचित भी था। वान के लगभग प्रतिदिन के हिमाव में लम्बे-लम्बे पत्र आते थे और जिसमें मुझे वह लौट आने का अनुनय करता था। वान का कभी-कभी अनुनय तो सीमा पर पहुँच जाया करता था और अकलंक ! मेरा मन एकदम उस तक पहुँच जाने के लिए विकल हो उठता था—परन्तु मुझे प्रतिदिन नये-नये निर्णय बनाने पड़ते थे।

मुझे, क्या हमारा मन ज्यामिति की पुस्तक है ? कि हम कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित करके कि वस—प्रत्येक त्रिभुज के तीनों कोणों का योग १८० ही होगा; या इसी प्रकार के सिद्धान्तों में हमारा मन बाँधा जा सकता है?—कि नहीं इस

प्रतिपादित सिद्धान्त की तरह यही प्रतिपादित व्यक्ति है, और हमें इसी के साथ प्रेम या घृणा करनी है !! कदाचित् कुछ लोग ऐसा करने में विश्वास करते हों। तब तो तुम बाँध लो क्योंकि उसकी सीमाएँ हैं, परन्तु मन को कौन सा सिद्धान्त सिखाओगे ?

“मैं अनुभव करती थी कि वान मे दूर आकर मैं तब मे दूर आ गयी हूँ, परन्तु वान का प्रत्येक शब्द मुझे उसके निकट पहुँचा देता था, और मैं प्रत्युत्तर में जाने क्या क्या लिख जाती थी—यह प्रत्युत्तर लिखनेवाला मेरा तब था या मन ? कुलकर्णी को जाने क्यों विश्वास होता जा रहा था कि मैं वान के साथ विवाह कर चुकी थी। यदि विवाह नहीं भी हुआ था तो विवाह करना चाहती थी और किसी कारण विशेष में मुझे हालैंड छोड़ना पड़ा और वह मुझे कलाकार अभी तक आकर्षित करने के लिए अपनी चेष्टाएँ कर रहा था। मैं कभी-कभी कुलकर्णी की इन चेष्टाओं पर उसी तरह ठहाका मारकर हँस देती थी जैसे वह मेरे सामने अभी बचा है और मुझे आकर्षित करना चाहता है। जिनसे वान निकोलस जैसे संसार-प्रसिद्ध कलाकार और संगीतज्ञ को प्रेम को ठुकराया, क्या वह कुलकर्णी जैसे बौने व्यक्तित्व के व्यक्ति के साथ कभी प्रेम के बारे में सोच भी सकती है ? और अब—जब कि ऐसी धारणा की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

“लेफ़िन कुलकर्णी, अपनी धुन में था। हम लोग प्रत्येक मध्याह्न रेस्तराँ में बैठकर डिनर लेते, उसके बाद वह ड्रिक के लिए मुझे बाध्य करता। प्रारम्भ में मैंने बिल्कुल अस्वीकार किया, क्योंकि मुझे वान की वे आँखें स्मरण हो आतीं जब वह और मैं दोनों ड्रिक करते थे। और उसके बाद पियानो पर वान के वे मजग एवं मादक स्वर जो आम्पटरडम के टंडे नील आकाश उड़ते से लगते थे—कला की साक्षात् प्रतिमा वान निकोलस के वे मानवर्णिय रंगमय स्वर!! कितने कलात्मक ढंग से तब वह मुझे भुजङ्गधनों में बाँधकर अपनी नीली आँखों में मेरी आँखों में समस्त वेदना उँडेलता हुआ कहा करता था—

‘रंजना ! तब मेरी प्रतीक्षा हो और मैं जीवन भर प्रतीक्षा करने के लिए बना हूँ’

“और उसके बाद मैं अपना हाहाकार मन ले अपने कमरे में चली आती थी। तभी मुझे मेरे सामने ड्रिक करता हुआ कर्नल कुलकर्णी एक फूहड़ बच्चा सा लगा करता था जो सिगापुर के आश्रम के बारे में, जापानियों की पशुता के बारे में, मिलिट्री के चन्द रटे हुए वाक्यों में घंटों दुहराता रहता था। व्यक्तियों के इस अंतर को जानते-बूझते भी मैं कुलकर्णी की उस एकरस कथा पर, रेस्तराँ के सफ़ेद बगुले के पर की भाँति उजले रूमाल से अपने ओठ पाँछते हुए कितनी मुलामियत के साथ उसकी प्रशंसा करती रहती थी। आसपास बैठे हुए सिविलियन और दूसरे मिलिट्री

कं लोग कर्नल की ओर कितनी ईर्ष्या से देखने लगते थे ।

“मैं आज अब और झूठ बोल कर अपने सिर बोझा नहीं बढ़ाने की अकलंक ! सच तो यह था कि लोग मुझे देखते रहें, इसके लिए मेरा प्रत्येक अंग अपने सारे मुलायम हावभावों को कलात्मक ढंग से उधार देने में विश्वास करता था । मुझे अपनी गोरी चिकनी सुडौल बाँहों परतब कितना मोह हो आता था जब वे पानी के गिलास या कांटे-चम्मच के साथ व्यस्त रहा करती थीं । मेरा मिर, चारों ओर के व्यक्तियों को अपनी ओर देखकर कितने दर्प के साथ एकदम ऊँचा, कुतुबमीनार की मानों उठ, आसमान में जा लगता था ; जैसे मैं कितनी महान् हूँ, तुम बौनों की पूरी बाँहें मिलकर भी मेरी महानता को, सम्पूर्ण रूपे छ् पानों की सामर्थ्य नहीं रखतीं । आसपास बौनों से भरी धरती पर मेरे ये संगमरमर की तरह उजले पैर रखे हुए हैं, इस बात का मुझे खेद भी होने लगता था । अपने इस दर्प भरे रूप को इतने बिखराकर चलते रहने पर भी, भले ही बहुत देर से, किन्तु अब जाकर ही उसे शस्त्र बनाने का अवसर मिला था । सच तो यह भी था कि वान निकोलस इसे अनुभव करे कि रंजना को वह रंगों में बाँधना चाहेगा तो वह जीवन भर उसके लिए अप्राप्य रहेगी—और अकलंक ! वान निकोलस के लिए वह जीवन में प्राप्या कभी नहीं रही ; परन्तु मुझे उससे प्रेम था । वान मेरे लिए आवश्यक नहीं था, वरन् मैं उसके लिए आवश्यक थी । क्योंकि, मैं उसकी कला थी, कलाकार नहीं थी । लेकिन एक बात है अकलंक ! रंजना का वान के विषय में कभी कोई निश्चित मत नहीं था, क्योंकि सच तो यह था कि वान ने रंजना से प्रेम करके रंजना को दर्प करना सिखा दिया था ।

“मैं जानती थी कि कर्नल और मेरा परिचय इसी भाँति चलता रहा तो विधिपूर्वक एक दिन विवाह के प्रस्ताव पर आकर वह रुकेगा और मैं उसे टकराऊँगी । परन्तु कर्नल कुलकर्णी मेरी सारी सम्भावनाओं को पार करता जा रहा था । हम लोगों को लगभग दस महीने में अधिक हो गये थे इस तरह मिलते-जुलते और उमने अपनी ओर से आवेश या उत्तेजना की कोई भी चेष्टा प्रदर्शित नहीं की थी । वान के जो पिछले दिनों में पत्र आ रहे थे उनमें उसकी व्यग्रता चरम होती जा रही थी और मेरा मन वान के लिए विकल था ।

“उस दिन माँझे मैं लॉन में बैठी हुई वान का पत्र पढ़ रही थी और साथ ही प्रतीक्षा कर रही थी कि कर्नल आयेगा और मैं उसे वान का यह पत्र पढ़ाऊँगी । क्योंकि वान ने मुझे धमकी दी थी कि यदि मैं शीघ्र हार्लैंड लौट नहीं जाती हूँ तो वह भारतवर्ष आकर मुझे यहाँ से ले जायेगा, क्योंकि वह बिना रंजना के नहीं रह सकता है और फिर असित जो है—सया कोई माँ अपने बच्चे को इस तरह छोड़ सकती है ?

अकलंक ! वान का यह पत्र पाकर मैं कदाचित् हालैड के लिए चल पड़ती अगर असित के बारे में वान ने न लिखा होता, क्योंकि अमित को मेरी कोई आवश्यकता नहीं थी। वान बिना मेरे नहीं रह सकता इसलिए उसने ऐसा लिखा है, यह सोचकर मुझे वान पर बहुत क्रोध आया कि शायद इसी स्वार्थ के लिए उसने असित के पैदा होने के दिन से यह स्वाँग भरा था। वान के इतने बड़े कलात्मक रूप के पीछे इतना बड़ा स्वार्थ काम करता है और इसलिए उसने असित पर प्रेम का स्वाँग भरा—यहाँ तक कि असित, मेरा ही हाड़-मांस और रक्त मुझसे ही विद्रोह कर बैठा !! सबका कारण ---इसके हृदय में रंजना के प्रति प्रेम नहीं बरन् उसका शरीर प्राप्त करने की भयंकर कापुरुषता एवं कुरूपता वास करती है, जिसे वह अपने यश, वैभव, रंगों और स्वरों के माँहक जाल से आच्छादित करके प्रस्तुत करता है।

मेरा मन वान के प्रति भयंकर 'छिः' 'छिः' से भर उठा। मैं उसे इसकी कुलाता का उत्तर दूँगी, और मैंने निश्चय किया कि वान को आत्म-समर्पण नहीं कर सकती—कभी नहीं कर सकती !!

“उसी क्षण कर्नल कुलकर्णी फूल की डाली लिए आया। मैंने मन ही मन निश्चय किया कि कर्नल ने मुझे विवाह करके वान को उत्तर देना होगा कि जिसमें उसकी सारी कला, सारा वैभव, मारा दर्प रंजना के पैरों पर आकर, टूटे शीशे की भाँति आवाज करता हुआ खंड-खंड हो जाये।

“विवाह के पश्चात् मैंने अपने पुत्र अमित को भी वापस बुलाने का निश्चय कर लिया था। मैंने उस साझ पहली बार कर्नल कुलकर्णी को इस दृष्टि से देखा कि अगर मेरा पति बनता है, तो !!

“और कर्नल, अपनी मटमैले गहरे हरे रंग की स्मार्ट वुशशर्ट की ड्रेस पहन-छाती पर रंगीन रिबन लगाये हुए मुझे पहली बार मुन्दर लगा। मुझे वान की औरतोंवाली उस ऊँचाई पर हँसी आ गयी कि कहाँ वह ओर कहाँ यह कर्नल, छह फूट का ऊँचा व्यक्ति—जो केवल पुरुष है, चौड़े कंधों का, फूली नमोंवाला, आँखों में सिगापुरी अनुभवों की गम्भीरता लिये, भारी-भारी बूटों की आवाजे करता हुआ कितने रोंब से चलता है। मुझे अपने आप पर, इस व्यक्ति की इतने दिनों उपेक्षा करने पर कुछ क्रोध आया और आज मैंने पहली बार अपना हाथ इसे चूमने को दिया। उसने भद्रता के साथ मेरे उस हाथ का आदर करते हुए विनयशील हो चूमा। मुझे लगा कि मेरा यह हाथ बढ़ा देनेवाला आदर, इसे मिलिट्री में दिये जानेवाले सारे पदों से कहीं अधिक गौरवशाली है... और इस गौरव की गुरुता, यह मिलिट्री का कर्नल भी समझता है और समझकर विनयशील होना भी जानता है। मुझे अपने इस नये निर्णय पर प्रसन्नता हुई और हम लोगों ने उस दिन 'ताज' में अपनी

प्रसन्नता को, डिशों और पैगों का रूप देकर आधी रात कर डाली।

“मैं चाह रही थी कि वान को अपने निर्णय की सूचना दूँ, परन्तु मैं कोई ऐसा काम नहीं करना चाहती थी जिससे वह मेरे निर्णय में बाधा पहुँचा सके। उस जैसे झुक जानेवाले व्यक्ति की बाधा से भी मुझे घृणा होती जा रही थी। मैंने उन दिनों घंटों बैठकर वान का विश्लेषण करना चाहा। मैं हमेशा इसी निष्कर्ष पर पहुँचती थी कि मुझ जैसी नारी, उसके उस समर्पणवाले भाव से कैसे प्रेम कर सकी!! और फिर क्या कोई स्त्री उसे प्रेम कर सकती है? जबकि साधारण नारी का भी आकर्षण सम्भव नहीं होता ऐसे झुक जानेवाले के प्रति—तो फिर मैं!! जिसे चित्रित करके वान को अपार यश मिला, सम्पूर्ण रंजना को कैसे दे सकती थी? छिः छिः, वान मुझे बहुत ही छोटा व्यक्ति लगा। उस जैसे के व्यक्ति के साथ मेरा पुत्र रहेगा इसकी कल्पना भी मेरे लिए सह्य नहीं रही।

“वर्षा समाप्त हो रही थी और मैं शरद् की प्रतीक्षा में थी क्योंकि तभी मेरा विचार था कि कर्नल को प्रस्ताव रखने का अवसर दूँगी।

अकलंक! मुझे उस ‘सर’ के लड़के में (जो कि मेरा पति था लाहौर में) और वान में काफ़ी समानता लगी। जानते हो उसका नाम था जगदीशचन्द्र, वह आधा पागल था। क्योंकि उमे मेरे कालेज के जीवन के बारे में सब कुछ मालूम था कि मैं लाहौर के विश्वार्थी लीडर और प्रसिद्ध पड़यंत्रकारी अकलंक से प्रेम करती हूँ। चूँकि अकलंक गरीब था और मैं अमीर, इसलिए सम्भव नहीं हो पाया था कि हम दोनों एक दूसरे से विवाह करने। जगदीश को प्रारम्भ में मुझसे कितना प्रेम था कि वह रात-रात भर मेरे बाल महलाता रहता था और रटी हुई शैले, तथा कीट्स की कविताएँ सुनाया करता था। मैं समझती थी कि यह मुझे बहुत प्रेम करता है क्या हुआ यदि पागल है तो! और उसके बाद जगदीश अपने वास्तविक स्वरूप पर आने लगा अकलंक! तुमने मुझे राजनीति में रुचि लेना सिखाया था जो कि उन ‘सर’ महाशय के घर कुछ काम नहीं आया। धीरे-धीरे मेरा घर से बाहर निकलना बंद कर दिया गया था। कहाँ तो जगदीश मुझे लेकर पाकों में, सिनेमाघरों में ले जाते हुए थकता नहीं था और अब कहाँ उसे मेरी सूरत से घृणा हो चली थी। उसके कथनानुसार अकलंक से मेरा शरीर-सम्बन्ध है और कोई भी भारतीय पति, पत्नी के चरित्र लंछन को सहन नहीं कर सकता है—वह जीवन भर कोढ़ी रह सकता है किन्तु एक क्षण भी चरित्रहीन पत्नी को सहन नहीं कर सकता है? आये दिन अकलंक को लेकर जगदीश प्रतारणाएँ देने लगा था।

एक दिन ‘सर’ महोदय ने सुबह चाय की टेबिल पर बहू के इस लंछन को असह्य कहकर चाय समाप्त की थी। इतने छोटे घराने में शादी करके एक तो ‘सर’ महोदय ने अपनी नाक कटवायी और इस पर उन्हें एक चरित्रहीन बहू मिली।

और अकलंक ! अब आये दिन मुझ पर मार पड़ने लगी । मैं जानती थी कि मुझे समझौता करना ही है । बिना समझौता किये तो अब रहा नहीं जा सकता था क्योंकि मात्र नारी से पत्नी बन गयी थी । और अपने शरीर पर वैवाहिक जीवन के पदक बेतों के रूप में पाती रही । मेरा चरित्रहीन होना भी वे सहन कर सकते थे यदि रंजना के पिता ने पूरा दहेज दिया होता । क्योंकि वे तब उम्र धन से पंडितों द्वारा प्रायश्चित्त करवा लेते । परन्तु 'सर' महाशय दूसरे की बेटी के प्रायश्चित्त के लिए अपनी गाढ़ी कमाई कैसे खर्च कर सकते थे—जब रंजना के पिता के और कोई नहीं है तब क्यों नहीं वे अपने दामाद जगदीश के नाम सम्पत्ति कर देते हैं ?—

मेरे पिता को उन्होंने मरवा दिया और मेरा पति जगदीश पूरी सम्पत्ति का मालिक बना । उसी दिन से मैं घर से अलग कर दी गयी और मुझे मेरी संतान के साथ अलग कर दिया गया—दूसरे बंगले में रहने लगी । मैं इसे भी सहन कर ही रही थी कि अहमद मेरे जीवन में आया । अकलंक ! यह बताओ वान में और जगदीश में क्या कही साम्य नहीं है ? वान मुझसे क्या चाहता था मेरा शरीर ही तो, और वह उसे मिल जाता—जैसे कि दूसरों को मिला, तो क्या विश्वास था कि जैसा जांस्टीन ने व्यवहार किया वैसा ही करता । क्योंकि वान के जीवन में वह जो मारिया लड़की आयी थी वह आम्सटरडम के बहुत बड़े कुल की थी । मारिया ने उसके लिए क्या नहीं किया था अकलंक ! उसने वान को इतना अधिक प्यार किया था कि वह... परन्तु वान उससे हमेशा दूर ही दूर बचना क्यों चाहता रहा ? कदाचित् विवाह के पूर्व ही वान उसके शरीर को प्राप्त करने की चेष्टा में रहा होगा और जब वह शरीर प्राप्त नहीं हुआ होगा तो वान को बहुत निराशा हुई होगी ।"—

मैं देख रहा हूँ कि रंजना अब बिल्कुल पागलो की सी बुद्धि से मुझ जैसे तटस्थ व्यक्ति पर अपने विगत के विषय में यह सिद्ध करना चाह रही है कि उसने जो कुछ किया ठीक किया, क्योंकि उस सबके पीछे उसका कड़वे अनुभव था जिन्होंने उसे प्रज्ञाशील, चेतनावान बना दिया । इसीलिए वह एक तूफान की भाँति परिस्थितियों को समेटकर अपने आसपास के समाज पर छा गयी ।

मैंने रंजना को टोकने का निश्चय कर लिया है क्योंकि रंजना का दर्प, दूसरों के जीवन को मरुस्थल बनाकर उँचा—और उँचा ही होता गया है, यहाँ तक कि काल, परिस्थिति और देश की सीमाएँ अब वह नहीं मानता । उसकी इच्छा ही उसका आकाश है । कुतुबनुमावाला ध्रुव उसका ध्रुव नहीं है, उसका कोई ध्रुव है इसमें भी संदेह है—वह ध्रुवहीना रंजना है !!

'रंजना ! जगदीश और वान का संतुलन तुम नहीं मानती कि वह एक मूर्खतापूर्ण संतुलन है ?'

और मैं अपने वाक्य का प्रभाव उसके मुँह की रेखाओं में पढ़ना चाह रहा हूँ ।

“अकलंक ! इतने शीघ्र संतुलन को विशेषण दे दोगे तो हो सकता है पीछे पछतावा तुम्हें ही हो : फिर यह बताओ कि तुम्हारे औचित्य एवं अनौचित्य का विश्वास नारी को कैसे हो ?”—

कहते हुए उसने फिर न्यून मूँद लिये हैं ।

‘वान के साथ ही तुम्हें इस संतुलन की आवश्यकता भी क्यों हो ?’ —

मैंने यह वाक्य उसके दर्प को ठेस देने के लिए कहा है ।

“मैं वान के निकट जब आती जा रही थी, जानते हो रंजना के पास एक कवच था, उसका पति, और कवच के रहते वान रंजना को प्राप्त या आक्रमण करने से बंचित ही रहता । किन्तु जब मैं पतझर के पेड़ों की तरह अनावृत हो गयी जान की मृत्यु के पश्चात्, तब मैं कितनी असहाय थी क्या यह तुम नहीं मानते ?”— कहते हुए कितने तैश के साथ उसने मेरी ओर घूरना शुरू कर दिया है ।

शायद रात के दो वज्र चुके हैं । रात में, प्रत्येक हलचल जो दिन में बहुत ऊँची चली जाती है वायुमंडल में, वह नीचे उतर आती है ठीक ऊँची उड़नेवाली चिड़ियों की मानी !! इस समय वायुमंडल बिल्कुल शब्दहीन हो रहा है, इसीलिए दो मील के दूर स्टेशन पर इंजन की हल्की सी भी शन्टिंग साफ़ सुनायी दे रही है । कभी-कभी सामने के पेड़ों में ऊँधने हुए कौवे पेड़ों की डाले हिला देते हैं और जिनके हिलने से काला स्वर सुनायी पड़ रहा है । या फिर उल्लुओं की ‘घु-घु’ इतनी डरावनी लगने लगती है कि रोम-रोम खड़ा हो जाता है । खिड़की से बाहर काले आसमान में तारों की बत्तियाँ जल रही हैं—आममान बरमकर इस समय साफ़ हो गया है । सप्तऋषि चिर प्रश्न की तरह ध्रुव के चारों ओर परिक्रमा कर रहे हैं और ध्रुव को जैसे इस चिर प्रश्न का आज तक कोई उत्तर ही नहीं मिला है । वह ध्रुव तारा आकाश की खिड़की पर अपनी कोहनी टिकाये किसी दार्शनिक की भाँति नीचे धरती की ओर झाँक रहा है—बेचारा प्रश्नों से घिरा ध्रुव !!

मैं जानता था कि बहककर कुछ अन्य सोचने लगा हूँ । दिमाग में जैसे सुनते-सुनते रात हो गयी है । मैं जो कुछ भी माँचूँगा, गलत ही सोचूँगा, इसलिए सोचने के स्थाने रंजना को सुनना चाहता हूँ, जिसे अब मेरी सहानुभूति भी प्राप्त नहीं हो सकती । जो अपने को प्रजाशील कहती है, प्रत्येक अदने समझौते पर वह अपने आप को कितना गिरा चुकी है । कभी वह एक क्षण को भी सोच पाती तो उसे लगता कि रंजना आज जहाँ पहुँची है—वह एक पीले-पीले पीप से भरा हुआ समुद्र है, जिसमें उसके दर्प की मीनार इसी तरह से घिरी है जैसे कोढ़ी की सफ़ेद चट्टों से भरी असुन्दर वाँह, अपनी सहायता के लिए पुकार रही हो—परंतु दर्प संगे !!

छिः छिः, रंजना, क्या कभी इसे समझ पायेगी ?

रंजना ने फिर बोलना शुरू किया है ।—

“मैंने तुमसे कहा न अकलंक ! कि न्यायमूर्ति बनने का प्रयास मत करना क्योंकि समाप्त होती द्रुई नदी तूफान हो जाया करती है, और तुम्हारी महानता के प्रतीक ये राजदंड, न्यायदंड कुछ भी काम नहीं देते वहाँ पर समझे ? तटस्थता का दावा करके तुम परिस्थिति को भले ही छल ले जाओ, परन्तु हम लोग तुम्हारी बातों से, चाल तक से समझ लेते हैं कि सोने में कहीं और कितनी खोट है । हम अपनी ही सृष्टि को न पहचानेंगी ? विद्रोह तुम कर लो, क्योंकि यह तुम लोगों का स्वभाव है, पर हमें संशय में डाल सकोगे इसकी कल्पना भी मत करवा । पुरुष के मन का पुण्य हम चाहे न समझ सकें, परन्तु उसके मन के पाप को सबसे पहले तुम्हारे घर का वह व्यक्ति समझ ले जाता है जो गंगा बना हुआ चूल्हे के पास, नीचा सिर किये, हल्की चूड़ियाँ बजाता हुआ तुम्हारे लिए रोटियाँ संकता होता है । तुमने उसे भले ही गंगा कर दिया हो, पर गांधारी बनने के लिए बाध्य नहीं किया है । वह व्यक्ति, चूल्हे की गरम-गरम आँच के सामने बैठा हुआ तुम्हारा विश्लेषण सम्पूर्ण रूपे उतनी ही महजता से कर ले जाता है जितनी सहजता से वह रोटियाँ बेल ले जाता है, अकलंक !

“इसीलिए तो जिसकी वह उपेक्षा कर दे, फिर चाहे वह कोई क्यों न हो— कोई वस्तु उसे नारी के निकट मान नहीं दिला सकती है । नारी की अवहेलना गूंगी होती है अकलंक !

“मैं कह रही थी कर्नल कुलकर्णी के विषय में । सच तो यह है कि कुलकर्णी विल्कुल फ़ौजियों की भाँति उड़्ड स्वभाव का व्यक्ति था, किन्तु मैं अपना निर्णय इसलिए नहीं बदल सकती थी कि वान कहीं किसी भाँति मुझे कमजोर न कर ले जाय । और मैं इसे भी अस्वीकार नहीं कर सकती अकलंक ! कि मैं उसकी कला को उससे अधिक प्रेम करती थी और वह कहीं मेरी छाया से भ्रष्ट न हो जाय इसलिए मैं उसके पालने के सम्मुख सभी सम्भावनाओं के पथ बंद कर देना चाहती थी ।

“कुलकर्णी को मैंने अनेक अवसरों पर उसी तरह गंदा पाया जिस तरह फ़ौजियों के गंदे शरीर, उनकी करीने की वर्दियों में छिपे रहते हैं । कुलकर्णी को वान के इस प्रकार पत्र आना अच्छा नहीं लगता था, परन्तु वह अपना विरोध उसी तरह हँसकर अनभिष्यक्त रहने देता था जैसे कि राजदूत लोग हँसकर विरोध को प्रकट नहीं होने देते हैं । विवाह के पूर्व तक कुलकर्णी अपनी सीमाएँ जानता था और इसीलिए सब कुछ सहन करना उसके लिए प्राथमिक आवश्यकताओं में से एक था । कदाचित् वह विवाह की प्रतीक्षा में था और सत्य बात भी यही थी ।

“वान अपने पत्रों में नूतन चित्रों, नव ऑपेरा संगीतों के बारे में लिखता रहता था साथ ही यह भी कि उसका विन्सेंट किस सीमा तक रंगों के मेल और रूप देने में उन्नति कर चुका है । वान ने लिखा था कि विन्सेंट ने रंजना की एक छवि आँकी है । अकलंक, ! मैं एक क्षण को व्यग्र हो उठी कि मैं क्षण भर के लिए हालैंड पहुँच

सकती होती, तथा मैं अपने पुत्र द्वारा बनाये गये अपने चित्र को देख सकती। यही सब सोचते कभी-कभी मैं अपने लॉन में बैठी हुई खो जाया करती थी। पिछला स्मरण हो आने लगता था और मैं कई बार इतनी तन्मय रहती थी कि कुलकर्णी कब आकर पास में बैठ गया—इसकी भी चेतना नहीं रह पाती थी। साँझ बादलों की रुई, पीली लाल होकर वग्वई के आकाश छितरा जाती थी, और सम्मुख समुद्र-किनारों पर हवा विकल मृगी मानी भटकती होती, परन्तु मैं संकल्प विकल्प से परे होने के प्रयास में उलझती ही जाती थी।

“कुलकर्णी हँसकर कहा करता था...

“मालूम होता है आज के पत्र में अन्य दिन की अपेक्षा प्रेम की मात्रा अधिक है!”—और वह मेरा बढ़ा हुआ हाथ विश्वास संगे पकड़कर चूमने लगता था। मैं उसके ओठों की गरमी से पुरी भर उठती थी और मुझे वान पर हँसी आने लगती थी। मेरे मन का समस्त संघर्ष कुलकर्णी के हाथ में हाथ जाने पर ओई रीते समाप्त होने लगता था जैसे सागर की फैली हुई बाँहों में नदी का शरीर पहुँच जाने पर सब मिटने लगता है। अनन्तकाल तक के लिए व्यक्तित्व का समर्पण !! वान के पत्र, मेरे पत्रों के उत्तर नहीं हुआ करते थे वरन वे केवल अपनी कथा कहते थे और मेरे निर्णयों के शिखरों पर प्रहार होता था। कदाचित् कुलकर्णी, इस वस्तुस्थिति को समझ चुका था और उसने क्वार की एक हल्की टंडक भरी संज्ञाएँ चतुर सेनापति मानी उचित समये आक्रमण कर दिया।

“मैं स्वयं क्वार के प्रारम्भ होते ही प्रत्येक दिन प्रतीक्षा करने लगी थी कि यदि अब कुलकर्णी प्रस्ताव करेगा तो मैं मान जाऊँगी। उस दिन एलीफैंटा की गुफ़ाओं से लौटकर हम लोग स्टीमर की प्रतीक्षा में उस द्वीप के किनारे बैठे हुए प्रसन्न थे, दूर-दूर तक समुद्री तट वैसे ही खुले हुए छितरे थे जैसे कि प्रथम प्रेम की उज्ज्वल वासना—कि तभी कुलकर्णी ने मेरी कमर में हाथ डालते हुए और दूसरे हाथ से मेरी ठोड़ी को ऊँचा करते हुए कह डाला—

‘रंजना ! हमें विवाह कर लेना चाहिए’—

“और मैं उस समय बहुत दूर वग्वई के आकाश को देखने में लगी हुई थी कि जहाँ पर विराट वान, पूरे आकाश के कैनवस पर चित्र बनाता हुआ दिखायी पड़ रहा था। मैंने कितने धवराकर शीघ्रता में ‘हाँ’ भर दी थी और हमने कार्तिक तक विवाह कर लेने का निश्चय किया। स्टीमर तब तक आ चुका था। कुलकर्णी कितने प्रसन्न होकर मेरा हाथ थामते हुए सावधानी के साथ स्टीमर पर चढ़ते हुए मुझे अपने से सटाते हुए हँस दिया था।

परिवर्तन की उस रात को मैं फिर सो नहीं पायी अकलंक ! अपने पति जांस्टीन की वह कन्न मुझे पुकारती हुई लगी—जैसे वह अपनी कन्न में से उठकर कह रहा हो—रंजना ! ऐसा कभी मत करना —

और मैं भोर होते-होते बहुत घबरायी हुई थी ।

कार्तिक आ चुका था और —

“उस दिन विवाह के बाद जब मैं चर्च में लौटकर आयी तो मुझे वान का पत्र मिला कि वह अगले पखवारे भारतवर्ष पहुँच रहा है क्योंकि वह रंजना के बिना नहीं रह सकता—एक बार वह रंग-स्वरों के बिना चाहे जी भी सके पर बिना रंजना के तो नहीं ।

“और मैं उस दिन जाने क्यों यह अनुभव करने लगी कि अपनी इच्छा से मैंने यह पहला काज किया है और जो बिना इच्छा या अपने उत्तरदायित्व से किये हुए दूसरे समस्त संबंधों से अधिक गलत और भयंकर है !!

“किन्तु अकलंक ! मैं इतनी अग्रसरा हो गयी थी कि लौटना सम्भव नहीं था और फिर वान जो कुछ चाहता है वही एकमात्र सत्य और मैं स्वयं कुछ नहीं निर्णयों के आधार पर सोच सकती हूँ ?

“मैंने अपने पार्श्व खड़े अपने नतून पति कुलकर्णी को चुम्बनों से भर दिया । कितने गरम और नवजन्मा थे उसके चुम्बन !!

मैंने अपने को कुलकर्णी की बाँहों में ढीला छोड़ दिया ।

“वान को मैंने अपने नव विवाह की सूचना तुरन्त भेज दी थी, क्योंकि सम्भव था कहीं वह आने का पागलपन कर बैठे । मुझे ठीक स्मरण है कि प्रत्युत्तर में उसका एक बधाई का पत्र आया था तारपोर उसका कोई पत्र नहीं आया ।

“मैं न जानती थी, ऐसी बात नहीं, परन्तु जानकर भी अनजान बने रहना चाहती थी कि वान के पत्रों को लेकर कुलकर्णी को कुछ असंतोष है । पर वह असंतोष भयंकर घृणा बनकर कुलकर्णी के मन में नीचता का रूप ग्रहण कर लेगा, और वह भी इतने शीघ्र, यह न मालूम था । प्रारम्भिक दिनों में जब कभी असित के विषय में चर्चा करती थी तो कुलकर्णी उपेक्षा कर जाता था और जब कभी मैं असित को अपने पास बुलाने की बात उठाया करती तो धीरे-धीरे विरोध करना शुरू कर दिया था । मैं उसके विरोध का कारण जानना चाहती थी और वह बिना कुछ उत्तर दिये चुप रह जाता था ।

“उधर असित के कभी-कभी पत्र आने लगे थे जिनमें वान के बीमार रहने के

समाचार भी हुआ करते थे। प्रत्युत्तर में मैं वान की बीमारी की चर्चा हमेशा टाल जाती थी, या एक व्यावहारिक ढंग से कुछ उल्लेख कर देती थी।

“वान के पिता फिलिप ने अपनी नयी पत्नी को भी तलाक दे दिया था क्योंकि वह पत्नी वान को सम्पत्ति से वंचित करना चाहती थी और इसके लिए उसने दो-एक बार यह भी चेष्टा की थी कि वान को जीवन में भी हाथ धोना पड़े— अगत्या फिलिप को उसे तलाक देना ही पड़ा। अमिन ने लिखा था कि वान चाहता है कि विन्सेंट को अब लीडन पहुँचे भेज दिया जाना चाहिए, कारण कि वान की बीमारी के कारण विन्सेंट की पहुँच आम्बटरडम में ठीक तरह नहीं हो पाती है और फिलिप को भी विन्सेंट का इस तरह रहना प्रिय नहीं था। फिलिप ने अपने पुत्र पर इन दिनों विवाह कर लेने के लिए बहुत जोर डालना, शुरू कर दिया था, परन्तु वान इस सबको एक उपेक्षा की दृष्टि में हँसकर टाल देता था। विन्सेंट किसी भी मूल्य पर वान से अलग नहीं होना चाहता है, यह उसने वान पर भी स्पष्ट कर दिया था। पिता पुत्र की लड़ाई अपनी चरम अवस्था पर पहुँच गयी थी और वे वान को सम्पत्ति से अलग कर देने की धमकी तक दे चुके थे। उन्ही दिनों फिलिप किसी पोल्डर का बाँध टूट जाने में बह गये थे, और वान अपनी परिस्थितियों में नितान्त अकेला खड़ा था अकलक ! !

“अमिन के पत्रों में वान की परिस्थितियों का चित्र बढत ही हल्का होता था क्योंकि अभी वह बच्चा था, और मैं समझ रही थी कि वान को एक तो मेरा और दूसरे अपने पिता का—दोनों ही दुःख सहने पड़ रहे थे। अमिन के पत्र में धीरे-धीरे वान की बीमारी बढते के समाचार मिलते रहे।

“कुलकर्णी का वास्तविक कठोर रूप सामने आता जा रहा था अकलक ! वह अब बहुत शराब पीने लगा था और प्रतिदिन मुझमें ही लड़ता रहता था। मैं अपनी भूल अनुभव कर रही थी। परन्तु, हम जब भूल कर चुकते हैं तो उस एक को ठीक करने के लिए हमें अन्य गलतियों का सहारा लेना पड़ता है और जिसका कोई भी अंत नहीं हुआ करता। या तो हम पहली भूल को ही अनुभव करने पर उसे मढ़े हुए अग की भाँति काटकर फेंक दे, तभी स्वस्थ हो सकते हैं, अन्यथा इस वृत्त में हम बारबार घूमकर वही पहुँच जाते हैं तथा पैरों में दुःखन, मन में आक्रोश भर जाता है—पर व्यर्थ होता है वह आक्रोश !! मैं अनुभव कर रही थी कि मैंने अपने चारों ओर के सब दुआर इस प्रकार बंद कर लिये थे कि मुझे अब मात्र खड़े रहने का स्थान प्राप्त था—न आगे, न पीछे, कहीं कुछ भी तो नहीं !! और मैं घुटन अनुभव कर रही थी।

“कुलकर्णी मुझे चिदान के लिए होटलों की लड़कियों या बेकाइयों को लेकर घूमा करता था। कई बार पाकों में शराब और लड़कियों के साथ पकड़ा भी गया था

—परन्तु उसके मिलिट्री पद ने उसे बचाया। वह बिल्कुल जंगली होता जा रहा था। उसे वान से, असित से घोर घृणा थी। जब तक वह पत्र पहले नहीं पढ़ लेता था कभी मुझे पढ़ने के लिए नहीं देता था। मैं जब-जब भी असित को बुलाने की हठ करती थी तब-तब वह मुझे डरा देता था कि अमिन के डेक से नीचे उतरने ही वह उसे निश्चय ही गोली मार देगा, और मैं काँप उठती थी। प्रत्येक क्षण पश्चात्ताप की आगे फुँकी जा रही थी कि अकलंक ! वान से प्रतिशोध लेने में मैं ही होम हो गयी। फिर अकलंक ! मैं प्रतिशोध किस बात का लेना चाहती थी ? क्या इसी बात का कि वह मुझसे प्रेम करता था ? और उसने अपने प्रेम को झुककर, विनम्र होकर अभिव्यक्त किया !! मेरी नारी का दर्प, पुरुष के झुक जाने पर और भी ऊँचा हो गया, परन्तु कुलकर्णी उस दर्प की मीनार पर अपने अशुभ चील के से पंख लिये मँडराने लगा और मैं तब उसे समझ नहीं पायी थी।

“मेरे अंधड़ का कोई अंत था अकलंक ? परन्तु कुलकर्णी ने आकर बीन बीनकर मेरी कामना की लहरों को जलाना प्रारम्भ किया। मैंने उसे अपने विगत की गाथा के कुछ पन्ने सुनाये और उस दिन से वह पागल हो गया, मैं अब उसे फूटी आँखों नहीं सुहाती थी। वह मुझे मेरे मुँह पर कहने लगा—

‘तुम नारी नहीं हो रजना ! तुम नारी का शरीर हो, और मैं तुम्हारे इस सुन्दर शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा।’—

अकलंक ! कुलकर्णी, मेरे जीवन की सबसे पहली भूल का वह पत्थर था जो मेरी दर्प की मीनार का अंतिम, काला और सबसे ऊँचा शिखर बनकर आया। शिखर, एकदम काला धिनौना—रूा के व्यंग का सबसे बड़ा प्रतीक, एक पशु !!

“किन्तु आज सब व्यर्थ, उस हुए में से न तो कुछ काटा ही जा सकता था और न उसमें जोड़ा ही जा सकता था। पंथहीन जंगल की भाँति, जहाँ सूर्य की किरणें भी पेड़ों के ऊपरी शिखरों से नीचे नहीं उतरतीं अकलंक ! मैं आज तक समझ नहीं पायी कि मुझे जीवन में ऐसा क्या पाना था जो खैबर के दरों से लेकर आम्सटरडम के समुद्री किनारों तक भटकना पड़ा और फिर भी महस्थली सरिता की मानी अपना ही जल पीकर रीती हो गयी—तब दूसरों के खेत क्या सींचती ? बताओ, अकलंक ! इसका उत्तर है तुम्हारे पास ? अनेक बार पत्नी बनने पर भी, पत्नी नहीं रह सकी अकलंक ! अंतिम दिनों में चाहने पर भी, रोने पर भी, अनुनय-विनय करने पर भी—परन्तु क्या किसी की पत्नी बनकर रह सकी ? इतनी बार माँ बनी अकलंक ! किन्तु क्या मैं कोख के सूनेपन का कलंक धो सकी ? नेई, नेई !! निपूता आमि !!

“कुलकर्णी ने स्पष्ट कह दिया था कि वह ऐसी औरत को लेकर क्या करे जो चरित्रहीनता की पराकाष्ठा पर पहुँचकर मनुष्य मात्र के लिए धूमकेतु बन गयी हो !!

वह मुझे प्रत्येक क्षण उपेक्षित करता रहता और मेरा शरीर कभी-कभी वह

उसी भाँति झकझोर डालता था जैसे भूखा व्यक्ति दाँत से बोटी के अंदर के मुलायम मांस को पाने के लिए व्याकुल होकर हड्डी के टुकड़े-टुकड़े कर डालता है। और जब अपना मन भर जाता है तब गंदी बनियान की मानी सब कुछ फेंक देता है।

“वह जानता था मेरी विवशता, क्योंकि मैं अब और कहीं भी नहीं जा सकती थी। मेरे लिए वह अनिवार्य था, परन्तु मैं उसके लिए वैसा ही बोज़ थी जैसे तीन दिन की सड़ी हुई लाश। घर के किसी भी प्रिय व्यक्ति की हो... बोझा ही नहीं, असहनीय भी नहीं, डर का कारण भी नहीं, जीवन के स्वास्थ्य की दृष्टि से हम अपने उम्र प्रिय की लाश को जला डालना चाहते हैं। और हम जला फेंकते भी हैं। कल तक जो मुख, हमें चिकने और सुखपूर्ण लगते थे... हम उन्हें हमेशा के लिए दूर कर देते हैं। अग्नि ही शरीर की गति है अकलंक !

“वह मुझे काट फेंकने के लिए उतावला हो रहा था। मैं जान रही थी, परन्तु अब परिवर्तन मोर द्वारे नहीं आयेगा यह भी मैं मान चुकी थी। मैं जान रही थी कि ज्वार लौट कर सदा के लिए तटों को छोड़ कर चला गया है। अब बेली पर बैठ मात्र शंख, सीपियाँ बंदोरना ही भाग्यलेख शेष है। गये हुए समस्त ज्वारों में अनेक बार पोत आये थे। बन्दरगाह पर जीवन लौट आता था किन्तु आज ? ज्वार कहाँ ? कहीं भी तो नहीं... मन ही मन चाह रही थी कि कुलकर्णी का उद्वेग किसी भी रूपे समाप्त हो तो कुछ आगे के लिए सम्भावना हो सकती है।

“एक दिन अमित का पत्र आया कि वान की अवस्था बहुत शोचनीय हो गयी है और वह ‘रंजना’ रंजना’ ही कहा करता है। जानने हो अकलंक ! कुलकर्णी ने पत्र मेरे मुँह पर फेंकते हुए कहा...

“जाओ तुम्हारा यार, वान तुम्हें पुकार रहा है... मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता न कभी थी, न है और न रहेगी। मुझे तुम्हारे शरीर की इच्छा थी, और वह मुझे मिला, मैंने उसे शराब के पेंग में कभी अधिक नहीं समझा। मुझे तुम्हारे रूप की कोई आवश्यकता नहीं। अपने रूप के लिए जाओ किसी अन्य चित्रकार को खोजो, क्योंकि खोजना तुम्हारा धंधा है। ओर ऐसे व्यक्ति को खोजो जो तुम्हारे इस न जाने कितनों के त्याज्य शरीर को चित्रित कर स्वयं भी जलें और शेष मानवता को जलाने के लिए वान की तरह रंगमयी रेखाओं को कैनवास पर उतारे... जाओ, तुम्हें पुरुषों की कमी कभी रही है ?” ;
और वह कहता हुआ अपने आफिस चला गया।

“मैं दिन भर रोती रही।

“मैं जानती थी कि वान को मेरी सबसे अधिक आवश्यकता है। किन्तु क्या मैं वापस उसके पास जा सकती थी अकलंक ? वह तो मुझे क्षमा कर देगा किन्तु

वहाँ पहुँचने के लिए मेरे पास क्या आत्मा का औचित्य शेष रह गया था ? मैं इस सबके बाद फिर लोटकर जाती ?

साँझ जब कुलकर्णी लौटा तो वह बहुत गुस्से में था । कदाचित् आज वह दिन भर गिरगटे धौकता रहा होगा । आने ही उमने कहा कि उमने निश्चय कर लिया है कि वह रंजना को नयाक दे देगा और वह बहुत शीघ्र दूतावास में मिलिट्री अटैची होकर चला जाने वाला है ।

“वह पागलों की भाँति चीख रहा था—

‘तुमने वान को आज मृत्यु-मुखे पहुँचाया । तुम दुरु मे लेकर आज तक विवाह करनी आयी, और आगे बढ़ती गयीं । पुरुष तुम्हारे लिए प्रारब्ध था । जाने कितनों के रमशानों पर तुम्हारा यह रूप , अहं की तरह खड़ा हुआ है । मैं चित्रकार या संगीतज्ञ नहीं रंजना ! जापानियों को भुनने के लिए गोली चलाते हुए मुझे कभी आनन्द न मिला हो, परन्तु तुम्हें अपनी गोली में उड़ाते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता होगी । तुम पुरुष की कोढ़ हो, मैं तुम्हारा पति कहलाकर कोढ़ी नहीं बनना चाहता । तुम्हें मैं अपने साथ नहीं रख सकता । तुम पापिष्ठा, सर्वभक्षी, मुझे तुमसे घृणा, तुम्हारे रूप से घृणा है !! जाओ निकल जाओ यहाँ से !”

मैं रात भर रोती रही अकलंक ! मैं उममें मात्र यही चाहती थी कि वह मुझे चाहे अलग कर दे, हम लोग साथ-साथ भले ही न रहें, पर वह कम से कम ‘श्रीमती कुलकर्णी’ कहलाने का अधिकार न छीने । तुम कहोगे कि रंजना इनने नीचे उतरकर समझौता करके तुमने क्या पाया ? ठीक है, परन्तु जानते हो अकलंक मैं अंतिम रूपे अपनी पराजय स्वीकार कर रही थी ? क्योंकि, मुझे फिर गर्भ था और उम सन्तान को मैं क्या उत्तर देती कि वह किसका है ? कारण कि कुलकर्णी मुझसे सदा के लिए दूर जा रहा था । कुलकर्णी जानता था कि आर्मि गर्भवती । मैं उसके लिए वह मड़ा अंग थी जिसके साथ वह कभी भी यापन पसंद नहीं कर सकता था, हाँ बिना जिसके यापन में उसे गहरी प्रसन्नता होगी ।

मैंने उस रात बम्बई में चलती बेला उमके सब संबंधों को तन और मन से तोड़कर समुद्र के ज्वार में उसी भाँति फेंक दिये जैसे कि ज्वार के दिनों में गले में जो डोरा पहना जाता है और जिसे हम स्वस्थ होने पर तोड़ फेंकते हैं—

और मैं लखनऊ पहुँची ।

यह शहर मेरे लिए बिल्कुल अपरिचित था परन्तु यहाँ मैं अपनी आशाओं के पहले ही सब प्रबन्ध हो गया । पुरी के इस आधे बँगले में गवर्नर का पहले एक ए० डी० सी० रहता था जो कर्नल कुलकर्णी को जानता था, उसी ने मुझे इस आधे बँगले में रहने का प्रबन्ध करवा दिया क्योंकि वह किसी दूतावास में बड़ी पोस्ट पर जा रहा था और इस तरह मैं पुरी संगे इस बँगले में रहने आयी ।

“अकलंक ! इस बेला मुझे अपने शरीर के अंदरवाले प्राणी से जाने क्यों मितली आया करती थी। और कभी कभी स्वयं को तथा उस बच्चे को ही समाप्त कर देने की सोचती थी। जिस समय अस्पताल में नर्स ने कहा ” बच्चा मरा है” तो जानते हो मुझे बहुत प्रसन्नता हुई थी, जो कि इस बात का प्रमाण थी कि मैं कुलकर्णी की किसी ऐसी चीज को अपने पास नहीं रखना चाहती थी जो मुझे फिर उन डोरों में बाँध दे जिन्हें मैं उस दिन समुद्र किनारे ज्वारों में बहा आयी थी।

“प्रारम्भ में मैं कभी पार्टियों शिफ्टभेटों में जाया करती थी, परन्तु मैंने अपना आना-जाना बिल्कुल ही बंद कर दिया था। तुम्हारे यह पुरी साहब, मैं कदाचित् ही कभी इनसे मिलती रही, परन्तु बहुत भले व्यवित हैं। लेकिन अब प्रत्येक व्यक्ति भला या बुरा रंजना की सीमा के बाहर जा चुका था। इसलिए मैंने अपने को समाज से, अपने उस वर्ग से भी, जो शुरू-शुरू में प्रतिदिन अपनी आठ गजी लम्बी-लम्बी मोटरों पर चढ़कर मेरे बँगले पर आया करता था, सबसे उसी भाँति अपने को अलग कर लिया मैंने, जैसे साँप अपने को कँचुल से अलग कर लेता है—जो कभी साँप थी तथा लोगों के डर का कारण भी हो सकती थी परन्तु अब एक निरर्थक वस्तु की भाँति, हल्की हवा की प्रतीक्षा में मृत पड़ी हुई यह देख रही थी कि, पता नहीं कब हवा आये और कहीं भी उड़ जाना पड़े। किन्तु क्या मैं इतनी असंगमयी हो सकी ? क्योंकि यह दावा भी तो दम्भ से कम नहीं है अकलंक ! कि मैं सब प्रभावों से ऊपर या प्रभाव-चुम्बकों से हीन हुई... क्या ऐसा कभी सम्भव है ?

“तुम नहीं जानते अकलंक ! नारी का मन, प्याज के किसी छिलके में होता है। तुम मूल्य की भाँति उसे केन्द्र की गाँठ में खोजते जाते हो, और वह छिलके के बीच में जाने कब का तुम्हारे हाथों में आ चुका होता है। फिर मुझ जैसी सुन्दर स्त्री का मन, कहीं भी तो नहीं होता अकलंक ! तुम उसके शरीर को लेकर समझ बैठते हो कि यही उसका गुलाबी रंग का मन है।”...

मैं देख रहा हूँ घड़ी के काँटों को... जो सतर्कता से अपना काज करते चले जा रहे हैं। मैं जानता हूँ कल दोपहर को एक बजे जो तूफान आरम्भ हुआ था वह अब भी बहता जा रहा है। मैं जो जान पाया हूँ वह यही कि किनारा कभी का छोड़ चुका हूँ। पूरी रात्रि समाप्त होने को आयी है लगभग तीन हो चुके हैं और मैं थपेड़े खाकर उद्विग्न हो उठा हूँ।

परन्तु रंजना अपने विगत को परिस्थितियों पर नहीं छोड़ सकती है, क्योंकि वान ने परिस्थिति उपस्थित भी की और रंजना ने अपने से तथा अपने चारों ओर के समाज से खेलने की भावना में तिरस्कार नहीं किया ? आज यह वान का तिरस्कार करके स्वयं तिरस्कृत नहीं हुई है ? और आज जलते हुए अनावृत सत्य के बीचे खड़ी, सत्यासत्य से परे यह नारी, तर्क तथा दम्भ, पत्नी और मातृत्व की

हुआई दे रही है—क्यों ? मैं चाहने लगा हूँ कि यहाँ से जितनी जल्दी हो भोर की गाड़ी मिलने ही चला जाऊँ और फिर कभी वापस नहीं आऊँ, कदापि नहीं !!

मैं देख रहा हूँ कि रंजना मेरी ओर देख रही है और कदाचित् इस आशा में है कि मैं सब कुछ सुनने पर कह दूँगा कि...

‘नहीं रंजना ! प्रत्येक व्यक्ति गलत था और तुम बिल्कुल पवित्र थीं और रहीं भी। चाहे समाज कुछ भी कहे, मैं तुम्हें बिल्कुल उचित मानता हूँ’—

और तब वह ललककर मुझे अपनी चिकनी गोरी बाँहों के आलिंगन से उपकृत कर देगी। सर्प-केंचुल का आलिंगन !!

छिः छिः, अगर यह ऐसी आशा मुझसे कर रही होगी तब तो इससे ओछी रमणी मुझे देखने को शेष नहीं है। परन्तु जानता हूँ रंजना के प्रस्तर भी इतने ऊँचे होंगे कि उनकी ओर देखते-देखते गर्दन में दर्द अवश्य हो आयेगा।

मुझे बिल्कुल भी ध्यान नहीं रहा है कि पानी फिर से कब बरसना प्रारंभ हुआ है, क्योंकि जो मुझे ज्ञात है वह यही कि एक बजे के लगभग आकाश साफ-चिकना था, जिसमें तारे बैसे ही लग रहे थे जैसे संगमूसा में रुपये अटनी जड़े हुए हों। परन्तु पानी बहुत ही तेजी के साथ और जोरों से गरजकर बरस रहा है। काफी ठंडी हवा एकदम बह रही है। पानी बरसने के ख्याल से मुझे ठंड का ख्याल हो आया है और मुझे सचमुच की ठंड लग रही है। बाहर पेड़, पत्तों, सड़कों, बिजली के तारों पर आकाश खूब सारा पानी बरसा रहा होगा और सड़कों के गड्ढों में पानी भर जाने से बिजली के लट्टू उनमें अपना मुँह झाँक रहे होंगे। सड़कों के दोनों ओर की कच्ची जमीन पर ताँगों के पहियों के लम्बे गड्ढे भी पानी की नालियों की तरह लग रहे होंगे और उनमें मिट्टी के कारण पानी भूरा गँदला हो गया होगा। हवा में उड़ता हुआ रंजना का नीला गाऊन उसके अंगों की सीमाओं को स्पष्ट दर्सा रहा है। मैं जानता हूँ यदि मैं इस तरह रंजना के पास केवल बैठने का ही काज करता तो मैं अब तक कहाँ बह जाता पता नहीं।

परन्तु जान रहा हूँ कि फिर ऐसा सोचकर भूल कर रहा हूँ, क्योंकि रंजना का सौंदर्य जो आकर्षित करता है, वह सौन्दर्य भर होता तो कोई बात न होती; परन्तु क्या रंजना निरपेक्ष सुन्दरी है—जैसे कि फूल सुन्दर होते हैं ? या साँझ सुन्दर होती है ?? लेकिन क्या निरपेक्ष सत्य या सौन्दर्य होता भी है ?

“अकलंक ! जहाँ इतनी देर सुनने का अनुग्रह किया केवल कुछ क्षण की बात और है—फिर तो मैं विगत की सभी कड़ियों को तोड़कर एक वर्तमान की काली नग्न जलती चट्टानों पर खड़ी रहूँगी और तब शायद तुम रंजना को—अनावृत्त रंजना को सम्पूर्ण रूपे अछद्म वेशे देख सकोगे।

“मैंने लखनऊ से कुलकर्णी को और वान को पत्र लिखे थे। कुलकर्णी ने असित

के आये हुए कुछ पत्र मेरे पास भेज दिये थे, परन्तु उत्तर में वह चुप ही रहा। असित के इधर के पत्रों में वान के बचने की भी कोई सम्भावना नहीं दिखायी दे रही थी। मोर मने अकलंक ! एक बार और तूफान आना चाहने लगा, परन्तु इस बेला मैंने बहुत ही निर्ममता के साथ अपने अंदर निवास करने वाली असित की माँ को, वान की प्रेमिका को कुचलने का संकल्प कर लिया था। कुलकर्णी, बम्बई छोड़कर दिल्ली चला गया था और वह शीघ्र ही अपने दूतावास के लिए जाने की तैयारी में लगा था।

“और देखती हूँ कि हम कितने मूर्ख होते हैं कि प्रत्येक पल को अमर मान बैठते हैं, सोचते हैं यही सत्य है। विगत की हम उपेक्षा कर देते हैं, जो अनागत होता है उसे हम कभी नहीं आनेवाला मानकर, जो क्षण हमारे सामने होता है उसे ही पूरे जीवन पर फैलाकर सुख तथा संतोष की साँम लेना चाहते हैं। क्या ऐसा कभी हुआ है अकलंक ? मैं भी अपने इन कमरों में, परदों के पीछे बैठकर जीवन में से इस ‘आज’ को चुनकर इस आज में से जो ‘अब’ था उसे ही जी रही थी और इस ‘अब’ को भी ‘इस क्षण’ बनाकर ही पिछले कुछ महीनों से जी रही थी अकलंक ! तथा मूर्ख योगी की मानी आँखें बंद किये समझ रही थी मुझे ‘सिद्धत्व’ प्राप्त हो रहा है; सिद्धत्व, दुःख का अनुचर है।

“किन्तु, दिवस को खोजने आप नहीं जाते वरन दिवस आपको खोजता हुआ आप की छत पर, आपके कमरे की खिड़कियों में से आ जाता है जहाँ भी आप सोये हुए हों। उसी तरह जीवन, परिवर्तन तथा बड़ी से बड़ी घटनाएँ लेकर आपके सम्मुख उपस्थित हो जाता है, चाहे आप उन बातों के लिए तैयार हों या न हों। ‘क्षण’ को जीनेवाला व्यक्ति सच तो यह है अकलंक ! कि किसी भी बात के लिए तैयार नहीं होता है और... आज से तीन दिन पूर्व मैं अपने लॉन में बैठी हुई अनुभव कर रही थी कि आज की साँझ अत्यधिक लाल-लाल हो रही है। पुरी और उसकी पत्नी थोड़ी देर पहले ‘मेरी, गेट यूवर गन’ देखने गये हुए थे। झीने पतले बादल, रुई के ढेर की तरह जल रहे थे। इंजिन के बाइलर की तरह गरम-गरम लाल आँच का वह आकाश, गाछों, मकानों के ऊपर नीचे उतर आया सा लग रहा था। साँझ के इन अंगारों की लाल शिखाओं से दूर-दूर तक के हरे लॉन, यूकैलिप्टस के सफ़ेद भूरे तने, बंगलों की दीवारें, इक्के-दुक्के आने-जानेवाले लोगों के उजले कपड़े सबके सब लाल दिखायी दे रहे थे। टेबल क्लाथ एकदम लाल हो रहा था, उस समय मेरे सामने काफ़ी की ट्रे रक्खी हुई थी जिस पर पूरे लाल आसमान की प्रतिच्छाया दिखलायी पड़ रही थी। फाल्गुन साँझ वर्ष भर में सबसे सुन्दर होती है। आज का एकलापन भयावना सा लग रहा था। हवा बिल्कुल नहीं चल रही थी। अपनी गुमसुम पत्तियाँ लिये हुए अशोक, यूकैलिप्टस जलती साँझ की लाल आँचें बहुत अधिक तप रहे थे। बरसाती के खम्भों पर एकदम घनी होकर बेलें चढ़ी हुई थीं। सब ऐसा लग रहा

था अकलंक ! कि किसी भी क्षण यह आकाश का बॉइलर फट सकता है और पूरी धरती पर उसमें के हज़ारों अंगारे बरस पड़ेंगे और सब जल जायगा—गाछ, बाड़ियाँ, फूल, केशों के जूड़े, भद्रलोकों के सितार और बेला, पियानो—सब इस आग में भस्म हो जायेंगे। और मैंने देखा कि मेरे अहाते का दुआर खोलकर पास्टमैन आ रहा है। मैं समझ गयी कि आज मैं निश्चय ही इस पोस्टमैन द्वारा लाये गये पत्र में अपने जीवन का सबसे बड़ा अशुभ पढ़ूँगी और और कॉफी का प्याला मेरे हाथ में हल्के-हल्के काँप रहा था जब मैंने दूसरे हाथ से डाकिये से पत्र लिया।

“हालैंड के टिकटों से भरा वह लिफ़ाफ़ा असित के पत्र का था। मुझे वान का स्मरण हो आया, वह बीमार था—असित के अन्तिम पत्र में जो समाचार था वह था कि वान की अवस्था बहुत ही अधिक खराब है। मैंने पत्र खोला, जानते हो अकलंक ! वह पत्र किसका था ?

“वह पत्र वान का था जिसके साथ असित का भी पत्र था।

वान का पत्र देखकर रंजना के अंदर बैठी हुई वान की प्रेमिका उत्साह से भर गयी क्योंकि विवाह की बधाई वाले पत्र के बाद से उसका कोई पत्र नहीं आया था।”—

और मैं देख रहा हूँ कि रंजना एकदम अपनी कुर्सी पर से उठी और उधर दूसरे कमरे में चली गयी। मैं इस समय बहुत कुछ सोच सकता हूँ परन्तु मेरे दिमाग पर इस नारी ने घटनाओं के भारी-भारी पत्थर रखकर उसे हमेशा के लिए बंका कर दिया है।

वह बहुत तेजी के साथ एक बड़ा लिफ़ाफ़ा लेकर लौट रही है। उसके नीले हिलते हुए गाउन में उसके दोनों लम्बे गोरे पैर कितनी सुन्दरता के साथ इस कमरे की तरफ आ रहे हैं।

“यह है वह पत्र अकलंक ! तीन रात हो गयी है मैं सो नहीं सकी हूँ और नहीं, कुछ नहीं इसे वाचो अकलंक !”—मैं अभी आयी।

और मैंने वान का वह पत्र खोलना शुरू किया। जो पत्र मैं खोल रहा हूँ वह एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ एवं चित्रकार का लिखा हुआ है और कदाचित् बहुत बीमारी में लिखा होगा। लिखते समय अवश्य ही इस नारी का रूप, जिसे उसने चित्रित कर कला को एक महान देन दी है—सामने आया होगा और धीरे-धीरे उसके मन में उस ‘प्रतीक्षा गान’ के स्वर गूँज गये होंगे क्योंकि इस नारी ने सदा के लिए उसके मन को ताश का ताजमहल समझकर ठुकरा दिया।

और मैं पत्र पूरा खोल चुका हूँ...—

‘रंजना !

‘तुमने विवाह किया, मेरी बधाई भी मिली होगी। सोचा था, तुम अब प्रसन्न

भी होगी किन्तु हम सबका भ्रम निकला । क्योंकि तुम्हारे पति कुलकर्णी ने मुझे एक पत्र भेजकर यह सूचना दी है कि उसने तुम्हें तलाक दे दिया है—सचमुच मुझे इससे बहुत पीड़ा हुई है ।

मैं जानता हूँ कि तुम्हें वान क्या, वान की किसी भी वस्तु की अपेक्षा नहीं रही है—जब कि वान के लिए तुम सब कुछ रही हो । इधर बहुत बीमार रहने से लगता है जीवन के तट पर पहुँच चुका हूँ । यदि इस जीवन के तटे तुम्हारे हाथ में हाथ डालकर एक बार भी उन्मुक्त होकर समुद्री हवा में मैं अपने केश तथा वस्त्र उड़ाते हुए घूम सकता होता तो मुझे कदाचित् हमेशा के लिए एक गहरा संतोष प्राप्त होता । क्योंकि संतोष ही मुक्ति है ।

तुम पहले ही चली गयीं, और पिता भी चले गये; रह गया असित जिसे मैं सब कुछ मानता हूँ । कल राजकीय तौर पर से उसे उत्तराधिकारी बना लिया है । तुम कहोगी कि ऐसा क्यों ? परन्तु रंजना ! मेरा अब क्या ठीक ? इस समय रात के एक बज रहे हैं, पूरा आम्सटरडम सोया हुआ है, केवल जाग रहे हैं तो मेरे कमरे के ये अभाग चित्र, और इन अभाग चित्रों का निर्माता दुर्भाग्यशाली मैं ! ठीक मेरे सिरहाने की आरामकुर्सी पर सोया हुआ असित, मौन है—जो कि अभी-अभी रोते हुए सोया है और जिसे नोंद में कभी-कभी हिचकियाँ आ जाती हैं । पैरों की ओर सम्मुखे नर्स, कुर्सी पर झपकियाँ लेते हुए ऊँघ रही है ।

मैं जाग रहा हूँ, और यह मेरा जागना अंतिम बार के लिए है । रंजना ! मेरी मोमबत्तियों की तरह जलनेवाली पलकों में यदि किसी की श्वेत मौन छवि रह-रहकर नृत्य कर रही है तो वह है मोर प्रेमिका, मोर पत्नी रंजना की !! तुम्हें पत्नी कहने का वैसे व्यावहारिक रूपे मुझे अधिकार नहीं है ।—जिससे मैं बातें कर रहा हूँ वह है मेरी पत्नी जो मुझसे रूठकर चली गयी है । उसे नहीं ज्ञात कि आज मेरी अंतिम रात्रि है और खिड़कियों के पल्लों के बाहर दूर दूर तक बरफ झर रही है । कल यही बरफ मेरी कन्न पर उजले ठंडे फूल की तरह हल्के-हल्के, बहुत ही हौले-हौले झरेगी । यह पत्र तुम्हें मिलने तक मैं कन्न में पहुँच जाऊँगा, मेरे असित की आँखों में मानसून होंगे और मेरी पत्नी रंजना जाने कहाँ, भारतवर्ष के एक नगर लखनऊ में होगी, और उसे सूचना भी तब नहीं होगी ।

मैं जान रहा हूँ कि मेरे हाथ अब काँप रहे हैं । मेरे जीवन की मोमबत्ती पूरी तरह से समाप्त हो चुकी है, रंजना ! मुझे अंतिम बार कह लेने दो कि यदि तुम लौट आतीं तो. . . किन्तु उस 'तो' की चर्चा भी चलाना व्यर्थ ही है, क्योंकि मुझे अपनी इस अंतिम रात को दूर चली गयी अपनी पत्नी के जहाज के मस्तूलों को पुनः डाकने के लिए 'प्रतीक्षा गान' तो गाना ही होगा ।

मैं तब गिरता पड़ता उठा हूँ रंजना ! और बहुत धीमे-धीमे पियानो पर गान शुरू किया । मोर कंठे प्राण अवरुद्ध हो रहे हैं, इसलिये केवल यही गा पाया हूँ —

मोर मन

तुम्हारे जहाज के गोल पाल वाले ऊँचे मस्तूल को.....

दूर दूर तक के आकाशों खोजा करेगा ।”

मेरा हाथ पियानो के परदे पर झन्न से गिर पड़ा और मैं वहाँ बेहोश हो गया ।

रंजना यदि इन दिनों तुम मुझे देख पातीं तो तुम्हें अवश्य मुझ से घृणा हो जाती—क्योंकि मैं बहुत कुछ पीला काला पड़ गया हूँ । मेरे गाल घँस गये हैं, मैं ठठरी का पिंजर मात्र रह गया हूँ—क्यों रंजना ! मैं बहुत ही क्रूर हो गया हूँ है न ?

पियानो के पर्दों पर मेरे बेहोश हाथों ने जो झन्न से आवाज की उसे सुनकर नर्स और असित दोनों जाग पड़े, और उन्होंने दौड़कर मुझे बिस्तर पर लिटा दिया । मेरे सिर में बहुत अधिक चोट आ गयी है । चोट मुझे लिखने नहीं दे रही है रंजना ! और मुझे पत्र बन्द करना ही पड़ेगा रंजना !! कदाचित मैं अब कभी नहीं बोल पाऊँगा—बाहर सफेद उजले ठंडे बरफ के फल झर रहे हैं, जो कल मेरी कब्र पर ढेर के ढेर पिरेमिड के रूपे झरते रहेंगे—और मैं इन सफेद उजले फूलों में दबा हमेशा-हमेशा के लिए मौन हो जाऊँगा !! संभवतः, तुम एक श्रृण को मुझे देख सकतीं । अब मुझ पर कब्र की मिट्टी डाली जा रही है—देख रही हो रंजना ! पादरी मेरी आँखों पर क्राँस फेर रहा है, और मेरे ओठ जहाजों के मस्तूल खोजनेवाला गान प्रारंभ कर रहे हैं—पर रंजना...प्यार...वान !!”—

मेरे दिमाग में वान की मौत स्पष्ट होती जा रही है असित के पत्र में मात्र इतना ही लिखा है कि—

“ममी !

वान आज सवेरे हमेशा के लिए चला गया है । मैं आगे नहीं लिख पाऊँगा ममी, वह तुम्हें बहुत प्यार करता था और तुमने ही उसे मृत्यु मुखे.....

असित,—”

मेरे सामने रंजना इस समय एक भयंकर रूप-प्रतिमा की तरह खड़ी दृश्य है, जिसके हृदय के स्थान पर जलते हुए लाल-लाल अंगारे भरे हुए हैं—जिनकी आग में वह स्वयं जली है और दूसरे भी जले हैं । आज यह रूपमयी, दर्परता ‘श्रीमती कुलकर्णी’ स्वयं के वस्त्रों में आग लगाये जैसे चीख-चीख कर चिल्लाकर कह रही है

‘अकलंक ! रूप और सौन्दर्य की उल्काएँ क्या नहीं कर सकतीं ? किसे नहीं जला सकतीं ?’

और मेरा मन काँप उठा है । रंजना का रूप, मात्र अग्निजा है !!

घड़ी में इस समय पौने चार बज रहे हैं । मैं कामना कर रहा हूँ कि शीघ्र ही सबेरा हो आये और अंधकार के ये काले बाधनख जिन्होंने मुझे रात भर से बंदी कर रखा है—टूट जायें और मैं फिर कभी नलौटने के लिए यहाँ से चला दूँ ।

“...तीन रातों और दो दिनों से मैं सो नहीं पायी हूँ। वह वान की मृत्यु ही तो थी जो उस दिन उस साँझ आकाश देख रही थी। तुम समझोगे कि मैं और कुछ कहूँगी, है न ? किन्तु अकलंक ! मेरी गाथा अशेष हुई, जो कहना था कह चुकी। रही बात तुम्हारे बारे में, वह मैंने बहुत कुछ तभी लिखकर रख ली थी अकलंक ! जब तुम यहाँ आये थे और नहाने गये थे कल दोपहर। लो इसे समाप्त कर लायी हूँ यह तुम्हारा पत्र है अकलंक ! और मैं चाहती हूँ कि तुम यहाँ से अभी इसी क्षण साढ़े चार की गाड़ी के लिए रवाना हो सको तो उचित है। मैंने बैरा को ताँगा लाने के लिए कह दिया है। वह शायद ले भी आया होगा—रुको, मैं देखती हूँ कि वह लाया कि नहीं ?”— और वह कमरे के बाहर तेज़ी से चली गयी है।

मैं विस्तरे पर से उठ आया हूँ। मुझे लग रहा है कि मैं अवश्य ही अभी-अभी कोई भयंकर स्वप्न देख रहा था। किन्तु मात्र स्वप्न कहकर इस सबकी उपेक्षा भी कैसे कर सकता हूँ ? क्योंकि श्रोता के रूपे ही सही, कहीं न कहीं भागी तो हूँ।

रंजना ने मुझे टाइमटेबल, वही कल का पुराना अखबार और एक चमड़े के थैले में कलवाले मेरे कपड़े लाकर दे दिये हैं।

“चलो अकलंक ! ताँगा बाहर आ गया है।”—

और वह आगे-आगे चल रही है।

मैंने चलती हुई रंजना का हाथ पकड़ लिया है। उसने बिना मुड़े ही मेरा हाथ झटकते हुए कहा,—

“पागल न बनो अकलंक ! मृत्यु के गोरे हिमहाथ चाहे कितने ही सुन्दर क्यों न हों, जीवन उन्हें अपने ओठों से चूमना कमी प्रिय नहीं करता है।”

एक क्षण को मोह की साँझ जो घिर आयी थी... अस्ता गयी और मुझे अपने आप पर घृणा हो आयी कि इस रंजना नाम की स्त्री ने मुझे क्या समझा होगा, कि मैंने भी रंजना को बिना प्राप्त किये वही समझा जो दूसरों ने इसके शरीर को पाकर अभिव्यक्त किया। और मैं अपने प्रति जाने कैसी-कैसी छिःछिः कर उठा हूँ कि पैर भी मुझसे घृणा करके मुझ बहुत तेज़ी से बाहर ले जा रहे हैं।

मैं इस समय जहाँ से गुज़र रहा हूँ वह रंजना का वही ड्राइंगरूम है जहाँ हब्शी का फ़ौलादी मुख चित्र में गुरी रहा है—‘लेकून्सक्राई’ की मूर्तिवाला दार्शनिक इस समय भी अजगर के कुण्डल में फँसा चीखें लगा रहा है, उसके बच्चों की चीखों से तो जैसे मेरे कान ही फट जायेंगे। कमरे के गलीचे पर बने बारहसिंधे की नाक पर से मेरी चप्पल अभी-अभी गुज़री है। यह वही ऊँट की खाल के रंग का पाँवपोश है जिस पर लाल अक्षरों में ‘वेलकम’ लिखा हुआ है जो कि कमरे की बत्ती में इस समय भी दिखायी दे रहा है। रंजना के दोनों कुत्ते भी नींद से जाग कर साथ-साथ चल रहे हैं।

हम परदा ऊँचा करके कमरे के दालान में पहुँच रहे हैं इसी दुआरे तो वह 'मिसेज रंजना कुलकर्णी' वाली नेमप्लेट लगी है जिसे भ्रम में मने 'मिसेज रंजना पुरी' पढ़ा था। और यहीं वे वरसाती की तीनों सीढ़ियाँ हैं कि जिसके दालान में वे दोनों हरे-पुते हुए मोढ़ अभी भी रखे हुए हैं।

रंजना मुझे वरसाती में खड़ी-खड़ी बिदा दे रही है। वह अपने नीचे गाउन में जिमके ऊपर हल्का ओवरकोट डाल रखा है—कदाचित, बेश सुन्दर लग रही है। परन्तु मुझे धृणा होनी चाहिये कि वान की मृत्यु का कारण इसे इसका पुत्र तक ठहराता है। छिः-छिः रंजना का रूप, विप है। और अब मने कितने वनावटी ढंग से, विलकुल खरबूजे की तरह फ्रीकी हँसी के साथ अपने दोनों हाथ जोड़े हैं और ताँगा चल पड़ा है। ये फूल, क्यारियाँ, लताएँ, बेलें हैं जिन्हें कल दोपहर में मने आती बेल्ला देखा था, इस समय चारबजे के ऊँघते हुए आकाश के अंधकार के नीचे मव मने हैं, ओर भोर की पुरवा में धीमे-धीमे करवटें बदलने की तरह हिल रहे हैं। पानी थम चुका है, किन्तु आसमान साफ नहीं है। बादलों में ऊपर कहीं पर तारे होंगे। मैं आधे मिनट के अंदर ही इस अहाने के बाहर पहुँच जाऊँगा जहाँ कि मेरे मित्र के बंगले का पोश्शन बंद है, जहाँ मेरा मित्र अपनी पत्नी के साथ सुखी जीवन बिताता होगा।

मैं देख रहा हूँ कि रंजना वरसाती में खड़ी हुई है। और उसके कुत्ते डुम हिला रहे हैं। मुझे लगा कि जैसे उसके सुन्दर मुँह पर दोनों ओर से तूफान की पीली हथेलियाँ फिर रही हैं। मेरा ताँगा बँगले से निकल नार्थ एवेन्यू रोड पर आ गया है। सड़कें एकदम धुली हुई हैं। इस बड़ी सी सड़क की लाइटें लम्बी पाँत में बहुत दूर तक चली गयी हैं जिसका कि मैं अब नाम भूल रहा हूँ, और गौली सड़क पर लाइटों की छायाएँ नीचे उतरकर सड़क पर फैल गयी हैं।

मैं जानता हूँ कि मेरी जेब में रंजना का पत्र है और जिसके लिए यह आदेश है कि मैं ट्रेन में ही पढ़ूँगा। रंजना के वे गुलाबी गाल, गोरी बाँहें कितनी मोहनेवाली हैं। पर मैं पत्र पढ़ने के लिए बहुत ही उत्सुक हूँ, क्योंकि यह कल जब मैं स्नानघर में था तभी बहुत कुछ लिखा गया था और इतनी बातें हो जाने के बाद भी असार्थक नहीं हुआ है, यही बात मुझे आश्चर्य में डाले हुए है।

बड़ी कठिनाइयों से स्टेशन पहुँचा हूँ। रास्ते भर मेरा दिमाग रंजना की महागाथा के चरित्रों के संग दौड़ता, घूमता रहा है। मने जल्दी से ताँगेवाले को पैसा देकर बिदा कर दिया है और टिकट लेकर ट्रेन के डिब्बे में पहुँच जाना चाह रहा हूँ, जहाँ पैर फैला कर एक बार नये सिरे से विलकुल अकेला बैठकर वह पत्र पढ़ूँगा उस रमणी का, जिसने स्वयं के साथ क्या नहीं किया और अपनी सीमा में आये हुए दूसरों के साथ भी।

ट्रेन के डिब्बे में पहुँचकर मने सबसे पहला काज जो किया है वह है एक तरफ

की सीट पर जाकर पैर पसारना। पत्र को उलट-पुलट रहा हूँ। रंजना के अक्षर कदाचित् रंजना से भी बढ़कर सुन्दर हैं —

“श्री स्वामीनाथन,

आमि जानी के तुमि अकलंक नेई, कारण अकलंक नाम के व्यक्ति को तो अंडमान से भागने के अपराध में आज से दस वर्ष पूर्व ई गोली मार दी गयी थी — जानते हो तुम मुझे अकलंक के रूप में कैसे लगे ?

जब मैं इस बँगले में आयी तब तुम्हारे मित्र पुरी ने दूसरे दिन मुझे चाय पर बुलाया। हम लोग डाइंगरूम में बैठकर चाय पी रहे थे जहाँ तुम्हारा चित्र दीवार पर टंगा हुआ था। मेरी आँखें सहसा उस पर गयीं और मुझे भ्रम हुआ कि यह चित्र ‘अकलंक’ का है, क्योंकि बिल्कुल वैसे ही घुंघराले बाल, लम्बी पतली आँखें और हल्के मोटे ओठ—अंतर था तो नार्क का क्योंकि तुम्हारी उतनी लम्बी नाक नहीं है। पुरी ने पूछने पर बताया कि तुम लँगड़ाकर चलते हो जो कि तुम्हारे इंगलिश मास्टर के कृपा-दण्ड का फल है।

मैं तुमसे मिलने को उत्सुक थी, इसलिए नहीं कि मुझे कोई प्रेम हो गया था तुमसे, कारण कि किसी से भी प्रेम करने की सीमा मैं पार कर चुकी थी। पर एक तो अकलंक जैसे व्यक्ति को देखकर मैं उसके अभाव को पूरा कर पाऊँगी और मैं तुम्हें जानबूझ कर ‘अकलंक’ ‘अकलंक’ कहकर थोड़ी सी कथा कह पाऊँगी तो मेरे मन का बोझ हल्का हो जायगा। तुम कहोगे कि मुझ पर इतना बड़ा विश्वास करने को मैं कैसे तत्पर हो गयी—अपने रहस्यों को किसी अनजान पर प्रदर्शित करने पर वह अनजान व्यक्ति भी उसे रहस्य मानकर मन के गुप्त भंडारे बंद कर लेगा ?

स्वामीनाथन ! तुम जैसे लोक सीधे व्यक्तित्व के हुआ करते हैं और कोई भी नारी चाहे तो उन्हें अच्छी तरह छल सकती है—अब बोलो, मैंने तुम्हें पहचानने में भूल तो नहीं की ? अस्तु,

तुम्हारे मित्र ने तुम्हें कभी बुलाने का मुझसे वादा किया। एक बार तुम्हारा पत्र जलगांव से आया और मेरे ही कहने से पुरी ने तुम्हें बुलवाया। तुम्हें बुलवाने तक परिस्थितियाँ वैसी नहीं थी जैसी कि कल २२ मार्च की संज्ञाएँ हो गयीं और मैं २३ मार्च की भोर से ही प्रतीक्षा करने लगी—पुरी को अचानक अपने घर बरेली से तार पाकर चला जाना पड़ा।

तुम किस तरह आओगे, मुझे क्या समझोगे, इसकी मुझे पूरी अशंका थी। जब तुम्हारा ताँगा अहाते आया, मैं उस समय कमरे के परदे के आड़े तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी। पिछले एक घंटे में जितने भी ताँगे इधर से गये थे मैंने सबको ध्यान से देखा था। ज्योंही तुम अंदर आये मैंने पहचान लिया कि यह स्वामीनाथन है। पहले तो मैं स्वामीनाथन ही कहना चाहती थी किन्तु मुझे सब कुछ कहना था और एक

अपरिचित को परिचित का रूप देकर तो मैं कुछ भी कह सकती थी किन्तु अपरिचित को जब आप और भी अपरिचित बना दें तब तो कठिन ही है न ? लोग तो जब परिचित से अपरिचित हो जाते हैं तब उनसे कहने में हिचकते हैं। अस्तु।

अनुमान के अनुमार ही तुमने मुझे 'श्रीमती पुरी' समझा और मैंने उसी क्षण निश्चय किया कि तुम्हें बिना मुनाये लौटने न दूंगी। मैं जान रही हूँ कि तुम गाथा अशेष हो जाने पर घृणा ही करोगे। कथा में ऐसे अवसर भी आ सकते थे कि तुम मुझसे क्या कुछ न माँग सकते थे—तब, जब कि यह मैं पत्र लिख रही हूँ मेरा इस पर कोई निर्णय नहीं है, क्योंकि मेरा निर्णय शुरू से ही इस विषय में अंतिम था कि सब कुछ मैं दिन भर और रात के दो बजे तक सुना दूंगी और तब उसके बाद तुम्हें बिदा दूंगी।

तुम मेरे जीवन में एक ऐसे व्यक्ति के रूपे आये स्वामीनाथन ! कि मेरे जीवन के सबसे अंतिम तथा महत्वपूर्ण व्यक्ति बने, किन्तु गोपन रहने हुए भी समानान्तर रेखा की मानी ब्रिलग रहोगे। क्योंकि तुमको मैं बचपन की रंजना से लेकर अपने पुत्र अमित द्वारा घोषित घिनौनी रंजना को एकदम सौंप दूंगी—यह मेरा निश्चय था। जिसने भी रंजना को देखा था या पाया वह विभाजित टुकड़ों का सौभाग्य था। अच्छी या बुरी जो कि रंजना है, जिसे आज तक केवल मैं ही संपूर्ण रूपे जानती थी, उसे मैंने तुम्हें कहकर प्रदर्शित किया है कि स्वामीनाथन ! रंजना, नारी के पुण्य शरीर के रूप में पाप मानी ही तो है—न इससे कम, न इससे বেশ।

कथा सम्पूर्ण हुई स्वामीनाथन ! तुम मेरे पिता, पति, प्रेमी या पुत्र कुछ भी नहीं रहे हो। मेरे पास केवल एक ही प्रश्न है—और वह है मेरा शरीर, सुन्दर शरीर !! सबने मेरे इस प्रश्न के उत्तर दिये अपने-अपने ढँग पर किन्तु क्या कोई भी मुझे अप्रश्नशील कर सका ?

मेरा अंतिम पति कुलकर्णी, जिसे मैं किसी भी मूल्य पर जीवन भर निभाना चाहती थी, मुझे प्रेम के प्रति छलना करनेवाली स्त्री कहा करता था। चरित्रहीन पुरुष भी, स्त्री से सतीत्व का विश्वास चाहता है स्वामीनाथन ! मैंने जो कुछ किया उसे तुम संज्ञा दोगे, मैं जानती हूँ। किन्तु रंजना ने जो कुछ किया उसमें उसकी महत्वाकांक्षा नहीं थी यह भी नहीं है, परन्तु केवल रंजना ही इस सब के होने में थी, यह मैं नहीं स्वीकारूँगी। मेरे जीवन के अन्य पथ तुम्हें दिखायी देंगे कि 'यह भी हो सकता था'—बैसा ही मैं भी, आज सोच सकती हूँ—किन्तु जीवन, ज्यामिति नहीं !!

अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिए स्वामीनाथन ! परन्तु मैं तो जो कहूँगी वह यह कि सबके उत्तरों को अंत में मेरे शरीर ने किस प्रकार उत्तर दिया वह है कि—अकलंक अहंवादी था, जिसे रंजना मिलती भी तो तोड़ देता; जांस्टीन एक चरित्रहीन पत्नी का चरित्रवान पति था और रंजना को पूरी तरह पाने के लिए पुरुष का पति से

अधिक प्रेमी भी होना आवश्यक नहीं, और रहा वान—वह एक स्वप्नशील, जिसके आलिंगन में देवत्व अधिक था। रंजना, देवता का पाथर कैसे ढोती स्वामीनाथन ? टामस, कंचन का मृग और शेष—वे अमहत्त्वपूर्ण बिन्दु जो समग्र रूप के लिए अनावश्यक होने पर भी अपेक्षित होते हैं।

रंजना न तो पत्नी ही बन सकी और न माता ही—उसे जो लोगों ने बनाया वह उसके शरीर का मात्र विभिन्न रूप। तुम्हारी वृणा और प्रेम दोनों के ऊपर मात्र नारी, समस्त प्रश्नों से परे, स्वयं में अपूर्ण एवं अनुत्तरा—किन्तु इससे क्या ?

जो अन्यदा नहीं, जो विपथगा नहीं, वह आज के यथार्थ के अशिवत्व का मात्र द्रष्टा भले ही हो—उसे शंकर की तरह सती के शिव की भाँति कंधे पर धारण नहीं कर सकता स्वामीनाथन ! नारी, शिव है। हम स्वयं को ही जब नहीं समझ पातीं तब तुम या शेष, उस शिव को समझ सकोगे ?

आज मेरे लिए भी रंजना का कोई अर्थ, प्रयोजन, मूल्य कुछ भी तो नहीं रह गया और इन सबमे 'हीन' शेष का कोई उपयोग क्या है ?

चलती बेला मैं तुम्हारा कुछ भी आतिथ्य न कर सकी हूँ, क्षमा कर देना। मेरे चलने की भी बेला आ पहुँची है। तुम जब तक स्टेशन पर पहुँचोगे मैं अपने वान के पास हूँगी। मैं जानती हूँ तुम लौटोगे—अच्छा, आमार अंतिम मित्र ! नमस्कार !!

किसी की भी नहीं,

.... रंजना ..

हमारा कथा साहित्य--

विसर्जन	: प्रतापनारायण श्रीवास्तव	६)
चोर की प्रेमिका	: आर. कृष्णमूर्ति	४)
परेड प्राउंड	: हंसराज 'रहबर'	१॥)
अपराजिता	: आचार्य चतुरसेन शास्त्री	२)
विद्रूप	: पृथ्वीनाथ शर्मा	३)
हृदय-मंथन	: सीताचरण दीक्षित	५)
तीस दिन	: सन्तोषनारायण नौटियाल	३॥)
हरिजन	: सन्तोषनारायण नौटियाल	४)
बारक छाया	: लक्ष्मण त्रिपाठी	२)
आत्मदान	: विजयकुमार गुजारी	३)
चुनौती	: तक्षी शिवशंकर पिल्लै	२॥)
पुनरुद्धार	: कंचनलता रुब्रवाल	३)
घरती के लाल	: डी मठ. हटड्वेलर्म (अनुवादक)	२)
मानव की परख	: देवीदयाल सेन	३॥)
नरक का :या :	: मोह सिंह सेगर	२॥)
जीवन के मोड़	: महावीर अधिकारी	३॥)
सिद्धार्थ	: मूल लेखक हरमन हेम, अनु० महावीर अधिकारी	२)
कारावास	: यश, बी. ए.	२)
चवन्नी वाले	: सन्तोषनारायण नौटियाल	१॥)
अमृत और विष	: अरुण बी. ए.	२॥)
मृत्यु में जीवन	: अरुण बी. ए.	१)
स्वप्न भंग	: होमवती	२)
बेल-पत्र	: कमला देवी चौधरी	१)
प्रायश्चित्त	: मूल लेखक मोपासा, अनुवादक सन्तोष गार्गी	१॥॥)
जर्जर हथौड़े	: वरुआ	६)
डूबते मस्तूल	: नरेश मेहता	४॥)
जल समाधि	: गोविन्दवल्लभ पंत	४)
शराबी	: पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'	३॥)
इन्सान	: यज्ञदत्त शर्मा	४)
महल और मकान	: यज्ञदत्त शर्मा	३)
बबलती राहें	: यज्ञदत्त शर्मा	३)
मधु	: यज्ञदत्त शर्मा	३)
झुनिया की शादी	: यज्ञदत्त शर्मा	३)
इन्साफ	: यज्ञदत्त शर्मा	३)
राधा और राजन	: बलभद्र ठाकुर	४॥)

